ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

गृहस्थ धर्म।

[जिनेन्द्रमतदर्पण–तृतीय भाग]

रचयिता—
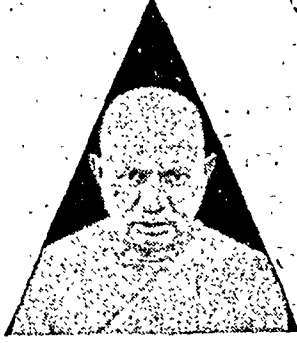
स्व० ब्रह्मचारीजी शीतलप्रसादजी।

प्रकाशक:—मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक–सूरत।

चतुर्थावृत्ति] वीर सं० २४८० [प्रति १०००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस–सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—तीन रुपये।

5654/05

निवेदन।

दिगम्बर जैन समाजमें गत ५० वर्षोंमें स्व० जैनधर्मभूषण ध० दि० श्री ब्र० सीतलप्रसादजी एक ऐसे कर्मण्य विद्वान् ब्रह्मचारी होगये हैं, जिनकी तुलनामें एक गृहस्थ पंडित या ब्रह्मचारी दृष्टिगत नहीं होते। स्वर्गीय ब्रह्मचारीजीने दि० जैन साहित्यका आधुनिक पद्धति पर स्वतन्त्र रचनाओं द्वारा जो नवनिर्माण किया था तथा अनेक संस्कृत प्राकृत व पुरानी भाषाका सान्वयार्थ अनुवाद किया व उसको प्रगट भी करवाया, वह तो ब्रह्मचारीजीकी एक अमूल्य निधि होगई है।

इन नवनिर्मित ग्रन्थोंमें एक ग्रन्थ—गृहस्थ धर्म भी है, जिसका निर्माण आपने सर्वसाधारण गृहस्थियोंके हितार्थ बम्बईमें रहते हुए किया था और उसे करीब ५१ वर्ष हुए प्रकट कराके 'जैनमित्र' के चौथे या पांचवें वर्षके ग्राहकोंको भेट बंटवाया था, उसे जैनसमाजने खूब पसन्द किया था तब इसकी दूसरी आवृत्ति हमने ३१ वर्ष पहले अर्थात् वीर संवत् २४४९ में सूरतसे प्रकट की थी, वह खत्म हो जानेसे इसकी तीसरी आवृत्ति ११ वर्ष हुये हमने प्रकट की थी, वह भी खत्म हो जानेसे और इसकी कायमकी मांग आती है अतः यह चौथी अवृत्ति प्रकट की जाती है। प्रत्येक गृहस्थको उपयोगी इस ग्रंथमें ऐसी२ बातोंका व विधियोंका निर्माण ब्रह्मचारीजीने किया है कि जिसके जाननेकी हरएक गृहस्थको आवश्यकता है। अतः प्रत्येक गृहस्थ—स्त्री या पुरुष इसे मँगाकर आद्यंत पढ़कर उस माफिक चलेंगे तो वह गृहस्थावस्थामें भी अपना बहुत कल्याण कर सकेगा।

सूरत—वीर सं. २४८०
श्रुतपञ्चमी
ता. ५-५-५४.

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

भूमिका।

विदित हो कि इस पवित्र जैनधर्मके सिद्धान्त आत्माकी उन्नतिमें सर्वोत्तम और परम आदरणीय हैं, जिनको ठीकर समझकर चलनेवाला जीव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि सुगमतासे कर सकता है और इस सिद्धिके साधनको करते हुए किसी प्रकारका कष्ट नहीं उठा सकता। हमारी वर्षोंसे यह कामना हो रही थी कि सर्वसाधारण जैनी तथा अजैनी महाशयगण किस प्रकारसे जैनधर्मके सिद्धांतोंको सुगमतासे जानकर अपना हित कर सके इसका कुछ उद्योग किया जाय।

जैनधर्मकी प्राचीनताके विषयमें कुछ मिथ्या आक्षेपोंको ठीकर समझाते हुए और यह दिखलाते हुए कि, न जैनधर्म नास्तिक है, न बौद्ध धर्मकी शाखा है, न हिन्दू धर्मसे निकला है; किन्तु एक प्राचीन स्वतन्त्र धर्म है, जिसके प्रगटकर्त्ता इस कल्पकालके आदिमें श्री ऋषभदेवजी हुए हैं, एक पुस्तक ' 'जिनेन्द्रमत दर्पण ' प्रथम भाग प्रकाशित की गई। उसके पीछे जिन सात तत्त्वोंके श्रद्धान्त करनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए ' जिनेन्द्रमतदर्पण ' द्वितीय भाग अर्थात् ' तत्त्वमाला ' प्रगट की गई।

श्रद्धान और ज्ञानके पश्चात् आचरण करना आवश्यक है। यह आचरण दो प्रकारका है:—पहला मुनीश्वरोंके लिये और दूसरा गृहस्थ श्रावकोंके लिये। प्रथम इस बातको लिखना आवश्यक समझकर कि

गृहस्थियोंको अपने गृहस्थके कार्य बहुत ही सहजमें मालूम होजाय, यह पुस्तक " जिनेन्द्रमतदर्पण " तृतीय भाग अर्थात् '**गृहस्थधर्म**' लिखी गई है। इस पुस्तकके विषयको संग्रह करनेके लिये हमने कई वर्षोंसे ग्रन्थोंका अवलोकन किया व विद्वानोंसे चर्चा वार्ता की तो इसमें निम्नलिखित ग्रन्थोंकी सहायता मुख्यता करके ली गई है:—

(१) श्री तत्त्वार्थसूत्र—श्री उमास्वामीकृत।
(२) श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार—श्री समंतभद्राचार्यकृत।
(३) श्री सर्वार्थसिद्धि—श्री पूज्यपादस्वामीकृत।
(४) श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा प्राकृतसंस्कृतटीका—श्रीशुभचंद्रकृत
(५) श्री श्रावकाचार—श्रीवसुनंदि आचार्यकृत।
(६) श्री महापुराण—श्री जिनसेनाचार्यकृत।
(७) श्री गोमट्टसार सं० टीका—अभयचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तीकृत।
(८) श्री यशस्तिलक चम्पू—श्री सोमदेव आचार्यकृत।
(९) श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—श्री अमृतचंद्राचार्यकृत।
(१०) सुभाषितरत्नसंदोह—श्री अमितगति आचार्यकृत।
(११) श्री सागारधर्मामृत, सं० टीका पं० आशाधरजी कृत।
(१२) श्री धर्मसंग्रह श्रावकाचार—पं० मेधावीकृत।
(१३) त्रिवर्णाचार—सोमसेन भट्टारकजी कृत।
(१४) ज्ञानानन्द निजरस—निर्भर श्रावकाचार भाषा।

हमने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार जो अर्थ समझा है उसीका भाव इस पुस्तकमें स्वतंत्र रीतिसे प्रगट किया गया है। बहुधा प्रमाणोंके लिये मूल ग्रन्थके श्लोक व संस्कृत टीकाके गद्य दे भी दिये गये हैं, जिसमेंसे विचारशील पाठकगण भलेप्रकार अर्थको विचार लेवें।

इस पुस्तकके द्वारा गर्भसे मरण पर्यंतकी क्रियाएँ जो गृहस्थियोंको करनी होती हैं बहुत संक्षेपसे वर्णन की गई हैं, ताकि एक मामूली गृहस्थ भी विना किसी विशेष खर्चके व पंडितोंके आलम्बनके अपने पुत्रोंके जन्म, मुंडन, विद्यालाभ, जनेऊ और विवाह आदि संस्कारोंको कर सके तथा एक गृहस्थ किस प्रकार धीरे २ अपनी इच्छानुसार धन कमाता हुआ व गृहमें रहकर सबका उपकार करता हुआ अपने चारित्रको बढ़ाकर ऐलक पदवी तक पहुंच सक्ता है, इसका संक्षेपमें वर्णन किया गया है।

बहुतसे लोगोंको मरणकी क्रिया व सुतक पातकके विचारमें बहुधा कठिनाइयां उठानी पड़ती थीं, उनको दूर करनेके अभिप्रायसे जहांतक इन विषयोंमें हाल विदित हुआ है प्रकाशित किया गया है।

ऐसी पुस्तकके रचनेके लिये विद्यार्थी अवस्थाहीमें हमारे इस शरीरके निज भ्राता लाला सन्तलालजीकी प्रेरणा रहा करती थी उस प्रेरणारूपी बीजका कुछ स्फुटन इस पुस्तकमें किया गया है।......

हमारी यह इच्छा है कि इस पुस्तकका प्रचार जैन और अजैन सर्व पठनशील पाठकोंमें किया जाय, जिससे सर्व ही गृहस्थ अपने आचरणको इस पुस्तकके अनुसार ठीक कर सकें और परम उपादेय जो आत्मानुभवरूपी अमृतरसायन है उसका स्वाद ले सकें।

बम्बई—
वीर सं. २४४९
पौष वदी १४
ता. १७-१२-२२

प्रार्थी—
सीतलप्रसाद ब्रह्मचारी।

[प्रथम आवृत्तिकी प्रस्तावना]

विषय-सूची।

विषय

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

यह सिद्धयंत्र तांबेका बनवा लेना चाहिये अथवा न बन सके तो थालमें बनाना चाहिये।

॥ ॐ नमः श्रीवीतरागाय ॥

स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी रचित—

गृहस्थ धर्म।

अध्याय पहला।

पुरुषार्थ।
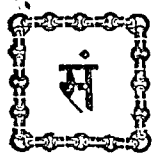
संसारमें इस अमूल्य मनुष्य-जन्मको पाकर जीवोंको अपने आप अपने ही पुरुषार्थके द्वारा अपनी उन्नति करनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न और अपने पुरुषार्थके उपयोगके बलसे ही यह जीव अनादि कालसे अपने साथ चला आया जो मिथ्यात्व नामा वैरी उसको चूर २ कर सकता है और सम्यक्त रत्न पाकर उसके द्वारा स्वस्वरूपमें आचरण करता हुआ और आत्माकी शुद्धि करता हुआ एक दिन कर्म-मैलसे मुक्त हो सकता है। परन्तु यह उसी वक्त सम्भव है जब आत्मा प्रयत्नशील हो और पुरुषार्थको अपना इष्ट समझता हो।

वास्तवमें विचारकर देखिये तो उद्यम सब ही हर समय किया करते हैं, परन्तु कोई चढ़ती और कोई गिरती अवस्थाकी तरफ। विद्वानोंका कथन है कि अगर तुम उन्नति न करोगे तो अवनति

करोगे; एकसी समान अवस्थामें नहीं रह सकते। पदार्थोंमें नव-जीर्णपना हरएक समयमें होता है। जो व्यक्ति अपने बलको बाह्य निमित्तोंके साथ संयोगमें लाकर उन्नतिके लिये साहस और उत्साहसे पुरुषार्थ करता है वह उन्नति, और जो आलसी रहता है वह अपनी वर्तमान अवस्थासे भी अवनति कर बैठता है।

यदि हम दशहजार रुपये रखते हुए भी खर्चें तो बराबर, क्योंकि खर्च बिना जीवन नहीं रह सकता; परन्तु पैदा करके उसमें कुछ भी हानिकी पूर्ति व उसकी वृद्धि न करें तो धीरे २ दश हजारके धनीसे एक हजारके धनी रहकर एक दिन सब खोकर कंगाल हो जावेंगे। इसीप्रकार यदि हम प्राचीन कालमें बांधे हुए शुभ कर्मोंका फल तो भुगतते चले जावें, परन्तु नवीन शुभ कर्मोंको पैदा न करें तो एक दिन हमारे पुण्यका अंत आकर हम पुण्यके दरिद्री ही नहीं, बल्कि पापकी गठरीको सिरपर लादकर, भारी बोझल होकर अधोगतिके पात्र हो जावेंगे। पुरुषार्थ बिना मनुष्यका मनुष्यत्व ही प्रगट नहीं हो सकता। जो २ शक्तियां मनुष्यके भीतर हैं वे सब राखके नीचे दबी हुई अग्निकी तरह छिपी ही रह जाती हैं, यदि उनको काममें न लाया जावे।

पुरुषार्थ ऐसी वस्तु है कि जिसके बलसे हम अशुभ कर्मोंकी प्रकृतिको शुभ कर्मरूप कर सकते हैं, उनका तीव्र बल घटाकर मंद कर सकते हैं, उनकी स्थिति जो बहुत कालकी हो उसको थोड़ी कर सकते हैं अर्थात् पापका फल भुगतनेके पहले पापको पुण्यमें पलटा सकते हैं।

साधारण बात है कि यदि ईंट, चूना, मिट्टी सब तैयार हो और बनानेवाला शिल्पी भी हो, परन्तु जबतक शिल्पी हाथ पैर हिलाकर उन ईंट, चूने, मिट्टीको न जोड़े तबतक मकान नहीं बन सकता और न शिल्पता ही प्रगट हो सकती है। उसी तरह हम संसारी जीवोंको अपना साधारण ज्ञानदर्शन ज्ञानावरणी

और दर्शनावरणी कर्मके क्षयोपशमसे, अपने चित्तका बिलकुल पागलपन न होना मोहनीय कर्मके मंद उदयसे, अपनेमें साधारण शक्ति होना अन्तरायके क्षयोपशमसे, शरीर और उसके अंग, हाथ, पैर आदि बनाना नामकर्मके उदयसे, ऊंच व नीच कुलमें जन्म पाना गोत्रकर्मके उदयसे, अच्छे व बुरे देश तथा कुटुंबियोंके मध्यमें पैदा होना वेदनीय कर्मके उदयसे-ऐसा सब सामान प्राप्त हुआ है।

इन सर्व सामग्रियोंको पाकर जबतक हम इनसे तरह तरहका काम लेनेका उद्यम न करें तबतक कदापि संभव नहीं है कि हम दुनियांका कोई काम कर सकें। यहांतक कि यदि हम अपने मुंहमें ग्रास न रखें तो अपना पेट कदापि नहीं भर सकते हैं और न हम पुरुष कहलाकर अपना पुरुषपना प्रगट कर सकते हैं। जैसे उद्यमके विना शिल्पी और उसका सब सामान बेकाम होता है वैसे ही यह पुरुष और उसके मुंहके आगे रक्खी हुई सर्व सामग्री यदि वह उनसे काम न ले तो बेकाम होगी।

उद्यम करना मनुष्यका कर्तव्य है। इसी बातको ध्यानमें रखकर प्राचीन आचार्योंने चार तरहके पुरुषार्थ नियत किये हैं-धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। हमारा मुख्य प्रयोजन धर्मरूप पुरुषार्थसे है, जो कि सर्व अन्य पुरुषार्थोंका बीज है। उसी प्रथम पुरुषार्थमें लीन होना हमारे परम कल्याणका कारण है।

अध्याय दूसरा।

सम्यक्चारित्रकी आवश्यकता।

जिस मनुष्यने सात तत्त्वोंका स्वरूप भलीभांति समझ कर निश्चय कर लिया है उसको अपने उस निश्चय किये हुए मन्तव्यके अनुसार आचरण करना बड़ा भारी कर्तव्य हो जाता है। हमारा तो यह विश्वास है कि उस सम्यग्दृष्टी पुरुषसे आचरणके मैदानमें चले विना रहा ही नहीं जायगा, वह अपनी शक्ति अनुसार चलेगा; चाहे धीरे धीरे चले चाहे जल्दी। वह जितनी शक्ति अपने पैरोंमें चलनेकी ज्यादा पायगा उतनी जल्दी जरूर चलेगा। क्योंकि सम्यग्दृष्टीको यह निश्चय होता है कि अपने आत्माको सच्चे व अनुपम सुखका पूर्ण लाभ विना मोक्ष-महलमें पहुंचे कदापि संभव नहीं है। यदि संसारमें यह सुख मिल भी जाय तो बहुत समयतक स्थिर नहीं रहता है। तब उस सुखमें आशक्त चित्त सम्यग्दृष्टी क्यों न मोक्ष-महलमें जल्दी पहुंचनेकी कोशिश करेगा और अपनेमें शक्ति रखता हुआ क्यों न चलेगा? अवश्य चलेगा।

सिर्फ जान लेने और विश्वास कर लेनेसे हम किसी भी कार्यका फल नहीं निकाल सकते, जबतक कि हम उस कार्यके साधनोंका व्यवहार न करें। जो किसीकी ऐसी सम्मति पाई जाय कि श्रद्धा मात्रसे ही अथवा ज्ञान मात्रसे ही अथवा चारित्र मात्रसे ही भव-सागर पार हो जांयगे, सो कदापि संभव नहीं है।

जो सिर्फ इतनी ही श्रद्धा मात्र रखता हो कि व्यापार करनेसे लाभ होगा वह कभी द्रव्य प्राप्त नहीं कर सकता, न उसको द्रव्यका लाभ हो सकता है। जो केवल व्यापार करनेके योग्य उपायोंका ही ज्ञान मात्र रखता हो और न उस पुरुषको धनका

आगम होगा जो विना श्रद्धा और ज्ञानके योग्य उपायोंसे व्यापार करने लग जायगा। द्रव्यका लाभ तो वही कर सकता है जो ठीक ठीक श्रद्धा और ज्ञानके साथ उपाय करें।

श्री समन्तभद्राचार्य अपने रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहते हैं—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥

अर्थात्—साधु पुरुष मोहांधकारके दूर होनेसे सम्यग्दर्शनको पाकर सम्यग्ज्ञानी होता हुआ राग और द्वेषको नाश करनेके लिये आचरणकी तरफ झुकता है।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखते हैं:—

विगलितदर्शनमोहैः समंजसज्ञानविदिततत्त्वार्थैः ।
नित्यमपि निःप्रकम्पैः सम्यक्चारित्रमालम्ब्यम् ॥ ३७ ॥
न हि सम्यग्व्यपदेशं चारित्रमज्ञानपूर्वकं लभते ।
ज्ञानानन्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात् ॥ ३८ ॥

अर्थात् जिनका दर्शनमोह नामा कर्म गल गया है, जो यथार्थ ज्ञानसे तत्त्वोंके अर्थको जानते हैं और सदा ही निर्भय हैं उनको सम्यक्चारित्रका आश्रय लेना चाहिये। अज्ञान सहित आचरणको ठीक आचरण नहीं कह सकते, इसीलिये चारित्रका सेवन ज्ञानके पीछे कहा गया है।

श्रीगुणभद्राचार्यजी अपने आत्मानुशासनमें चारित्रके लिये इस भांति प्रेरणा करते हैं:—

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे ।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात् ॥
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं ।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥२१३॥

अर्थात् अत्यन्त अगाध और निर्मल हृदयरूपी तलावके होते हुए भी जबतक उसमें कपायरूपी मगर-मच्छ चारों ओर बस रहे हैं उसवक्त तक गुणोंके समूह उसमें रह नहीं सक्ते। इसलिये सबसे पहिले शंका त्याग उन कपायोंको जीतनेके लिये सम, दम, यम आदिकसे यत्न करना योग्य है।

सम्यक्चारित्रका पालना बहुत ही जरूरी समझकर, जिनको निराकुल सुख पानेकी कामना है उनको यह नर भव सफल करना चाहिये। पाठकगण यह बात अच्छी तरह जानते होंगे कि यह सम्यक्चारित्र देव गति और नरक गतिमें तो किसी जीवको प्राप्त ही नहीं होती। पशुगतिमें अन्धेके हाथ बटेरके समान कभी किसी मनसहित पंचेन्द्री पशुको किसी महात्माकी संगतिसे प्राप्त हो जाय तो हो सकता है। परन्तु साधारण रूपसे कह सकते हैं कि पशुगतिमें भी सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि है तो यह एक मनुष्य-जन्म ही है कि जिसमें जीव सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंको यह शक्ति है कि यदि वे उद्यम करें तो नीचीसे नीची दशामें ऊँचीसे ऊँची दशातक प्राप्त कर सकते हैं। जिन मनुष्योंने जन्मका बहुतसा समय कुआचरणमें गमाया, वे ही जब सम्यग्दृष्टी हुए तब सम्यक्-चारित्र पर चलकर ऐसे महात्मा मुनि होगये कि जिनके चरणोंको राजा महाराजा देवादि तक नमस्कार करने लगे। विद्युत्चोर उत्तम कुली होने पर भी चोरी आदि व्यसनोंमें पूर्ण रूपसे रत था, परन्तु श्री जम्बूस्वामी महाराजकी संगति पाकर मुनि हो गया, उसने अत्यन्त कठिन चारित्र पाला तथा मथुराके वनमें उपसर्ग सहकर धर्मध्यानके बलसे परम पुण्यको बांध सर्वार्थसिद्धिमें अह-मिन्द्र हो गया।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित जो आचरण होता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं।

पाठकोंको विदित है कि जैनधर्ममें निश्चय और व्यवहार दो

नय बतलाये गये हैं। निश्चय नय किसी चीजकी असली हालतको बतलाता है और व्यवहारनय उस चीजमें दूसरी चीजोंके मिलने व छूटनेसे जो २ हालतें होती हैं उनको बतलाता है तथा निश्चय नयकी हालतको पानेका रास्ता बताता है। निश्चय नयकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शनसे अपने आत्म-स्वरूपको दृढ़ श्रद्धारूप रुचि होनेका, सम्यग्ज्ञानसे आत्माके गुणोंको अच्छी तरह जाननेका और सम्यक्-चारित्रसे अपने आत्मस्वरूपमें लीन होनेका मतलब है। अर्थात् जिस वक्त यह आत्मा श्रद्धा और ज्ञानसहित वीतरागी हो अपने आत्मस्वरूपमें तन्मय होकर एकमेक हो जाता है, तब तीनोंकी एकता होनेसे निश्चय मोक्षमार्ग होता है और यही ध्यान कहलाता है।

इसी सीधे रास्ते पर चलनेसे अर्थात् अपने आत्मस्वरूपमें अपने मनको निश्चल रखनेसे कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है और इस आत्मानुभवरूप आचरणको हमेशा बारबार जारी रखनेसे किसी न किसी वक्त सर्व आत्माको घात करनेवाले कर्म झड़ जाते हैं और यह आत्मा अपने निज आनन्दमय स्वरूपमें ऐसा मगन याने लवलीन हो जाता है कि उस रसका स्वाद लेते हुए कभी दूसरी तरफ नहीं झुकता और उस वक्त निराकुल सुखको पाकर मुक्त जीव कहलाता है। इस निश्चय सम्यक्चारित्रको स्वरूपाचरण कहते हैं। जैसा कि पंडित दौलतरामजी अपने मनोहर छन्दोंमें कहते हैं:—

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डार अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादित, निज भावको न्यारा किया॥
निज मांहि निजके हेत निज, कर आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो॥
जहं ध्यान ध्याता ध्येयको, न विकल्प वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्त्ता, चेतना किरिया तहां॥

तीनों अभिन्न अखिन्न शुध-उपयोगकी निश्चल दशा ।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये, तीनधा एकै लशा ॥
परमाण नय निक्षेपको न, उद्योत अनुभवमें दिखैं ।
दृग ज्ञान सुख बलमय सदा नहिं, आन भाव जो मो विखै ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अर तसु फलनितैं ।
चित्त पिंड चंड अखंड सुगुन, करंड च्युत पुनि कलनितैं ॥
यों चिन्त्य निजमें थिर भए, तिन अकथ जो आनंद लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रके नाहीं कह्यो ॥

असलमें सम्यक्चारित्र अपने आत्मा परमात्माको अनुभव कर उसमें एकाग्रचित्त होनेका ही नाम है और यही रास्ता हर तरहसे पकड़नेके लायक है। परन्तु संसारी लोग संसारकी वासनाओंमें अनादि कालसे पड़े हुए हैं और अपने मनमें आत्मस्वरूपसे सर्वथा जुदी ऐसी चीजोंको वारम्वार विठा चुके हैं और अब भी विठाए हुए हैं। क्या ऐसे लोगोंके लिए यह बात सम्भव है कि वे एकदमसे अपना मन सबसे हटाके आत्माकी तरफ ले जा सकें और उसमें उसे बराबर स्थित रख सकें ? कदापि नहीं। इसीलिये श्री तीर्थंकर भगवानने व्यवहार-मोक्षमार्गको बतलाया है कि जिसके सहारेसे ये संसाराशक्त आत्माएँ अपना राग, द्वेष व क्रोधादि कषायोंको धीरे२ कम करते हुए किसी समय पूर्ण वीतरागी होजावें और अपने ज्ञानानन्द स्वरूपका लाभ करें।

व्यवहार सम्यग्दर्शनमें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे ७ तत्त्वोंकी श्रद्धा करनी होती है, जिसका वर्णन दूसरे भाग अर्थात् तत्त्वमालामें किया जा चुका है। इन सात तत्त्वोंके ज्ञान और श्रद्धानसे ही यह सम्भव है कि संसारी जीवको अपने आत्मस्वरूपका निश्चय प्राप्त हो जावे।

व्यवहार सम्यग्ज्ञानमें सात तत्त्वोंका विशेष ज्ञान तथा आत्मा और कर्मोंका पूर्ण वर्णन जाननेके लिये जैन शास्त्रोंका खूब अभ्यास करना योग्य है। प्रथमानुयोग जिसमें महान् पुरुषोंके जीवनचरित्र हैं; करणानुयोग जिसमें तीन लोक व गणित ज्योतिषादि विद्याका वर्णन है; चरणानुयोग जिसमें मुनि और श्रावकोंके आचरण विस्तारसे दिखाए हैं, द्रव्यानुयोग जिसमें जीवादि षट्द्रव्यका कथन पूर्ण रूपसे कथित है; ऐसे चारों अनुयोगोंके शास्त्र और महापुराण, हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार, गोम्मटसार, मूलाचार, श्रावकाचार, बृहद्द्रव्यसंग्रह, पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार आदि शास्त्रोंको भलेप्रकार समझना चाहिये। ज्यों २ अधिक शास्त्रज्ञान होगा त्यों त्यों अधिक आत्मस्वरूपके पहचाननेकी योग्यता प्राप्त होगी।

व्यवहार सम्यक्चारित्रके दो मार्ग हैं-एक मुनि, दूसरा श्रावक। मुनिमार्ग निरन्तर स्वरूपाचरणकी ओर ले जानेवाला है और इसीलिये उत्तम और श्रेय है। श्रावक-मार्ग गृहस्थियोंका है। जो मुनिमार्गपर चलनेमें अशक्त हैं वे घरमें रहकर कभी कभी ध्यानका तथा राग और द्वेष छुड़ानेका अभ्यास कर सकते हैं। यह श्रावकका मार्ग मुनिमार्गके ग्रहण करानेमें सहायक है। जिसने श्रावक अवस्थामें श्रावक मार्गका अभ्यास किया है वह मुनि होनेपर सहजमें ही उस मार्ग पर चल सकता है। श्रावककी ग्यारह श्रेणियां हैं जो एक दूसरेसे अधिक२ व्यवहार चारित्र पलवाती हैं और इस तरह श्रावकको अधिक अवसर आत्मानुभवके लिये प्रदान करती हैं। इन श्रेणियोंका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय तीसरा ।

श्रावकका पात्रता ।

श्रावक धर्मके पालनेके अधिकारी दो तरहके होते हैं—एक तो जब बालक श्राविकाके गर्भमें आवे तबहीसे उसपर श्रावक धर्म पालनेका असर पड़ता चला जावे। दूसरे जो अजैन हैं वे श्रावक धर्मका श्रद्धान कर श्रावकके आचरणको करें। इन दो रीतियोंके द्वारा श्रावकधर्म पालनेकी पात्रता होती है। प्रथम हम उसी पात्रताका वर्णन करेंगे जो मनुष्य अवतारके धारण करनेके अवसरमें आ सकती है।

जब बालक माताके गर्भमें आता है तब उसकी शक्तियोंकी मजबूती और कमजोरीका पहुंचाना माताके ऊपर है। माता उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको कुण्ठित रखने व तेज करनेके लिये एक अद्भुत बलको धारनेवाली है। माताके मन, वचन, कायकी क्रियाका असर बालकके ऊपर पड़ता है। इसलिये माताको सच्ची श्राविका होना जरूरी है। यदि माता विवेकवती, सुशीला, धर्मात्मा और विदुषी होगी तो उसके मन, वचन, कायोंकी योग्य क्रिया बालककी शक्तियों पर अपनी वैसी ही छाप बैठानेके लिये निमित्त कारण हो जायगी। यदि माता अज्ञान, कुशीला, अधर्मी और मूर्खा होगी तो उसकी क्रियाओंका बहुत बुरा असर बालकके ऊपर पड़ेगा। यद्यपि मनुष्यके पूर्वोपार्जित कर्म भी मनुष्यकी शक्तियोंके खिलानेमें निमित्त कारण हैं तथापि बाह्य निमित्त भी सहायक होते हैं इसलिये हमको अपने उद्यमकी अपेक्षा बाह्य निमित्तोंकी पूर्ति अवश्य करनी चाहिये। इसलिये गर्भस्थित बालकोंकी शिक्षाके लिये भी माता धर्मात्मा और विदुषी होनी चाहिये।

यदि सच्चे श्रावक उत्पन्न करना है तो जैन समाजको चाहिये

कि, योग्य माताओंको तैयार करे। अपनी कन्याओंको धर्म, नीति, गृह-प्रबन्ध, कारीगिरी आदिकी ऐसी शिक्षा देवे जिससे वे योग्य माता हो सकें। माता जो आहारपान करती है उसीका अंश गर्भस्थित बालकको प्राप्त होता है। यदि माता शुद्ध आहारपान करेगी तो बालकका शरीर भी उसीसे पोषित होगा, जिससे उसके शरीरमें निरोगता रहेगी, और रुधिर शुद्ध होगा। माताके मनमें यदि अच्छे विचार होंगे तो उनके संसर्गसे बालकोंकी भी मानसिक वृत्तिपर अच्छा असर होगा।

अकसर देखा जाता है कि यदि कोई महान् तेजस्वी पुण्यात्मा जीव माताके गर्भमें आता है तो उसके ज्ञान और धर्मबलके निमित्तसे माताके मनके विचारमें भी फर्क आ जाता है; उसी प्रकारके नाना प्रकारके दोहले उत्पन्न होते हैं। यदि तेजस्वी पुत्र हो तो माता दर्पणमें मुँह देखती है। यदि अत्यन्त धर्मात्मा पुत्र हो तो माताके मनमें तीर्थयात्रा करनेके भाव होते हैं। यदि दरिद्री पुत्र हो तो माता चने अथवा मिट्टीके टुकड़े खाना चाहती है। ऐसे ही माताके सुविचारोंका असर भी बालक पर पड़ता है। द्रव्य पर भावका और भावपर द्रव्यका असर पड़ता है। इसलिये माता जैसी योग्य होगी वैसा ही बालकके विचारोंमें भी उसका असर अवश्य पड़ेगा। अतएव कन्याओंको योग्य, धर्मात्मा, सुशील और सुआचारणी बनाना मनुष्य समाजके सुधारके लिये अत्यन्त जरूरी है।

जैसे गर्भमें रहते हुए बालकोंके मन, वचन, कायपर माताके मन, वचन और कायका असर पड़ता है वैसे ही जब तक शिशु माताकी गोदमें रहता है और दूध पीता है उस समय भी माता-द्वारा बालकोंके मन, वचन, कार्योंपर असर पड़ता है। माता बालकोंकी बुरी और भली आदतोंकी जिम्मेदार है। माता बालकोंके बुरे व भले भावोंकी जिम्मेदार है, क्योंकि बच्चोंकी सर्व क्रियाएँ, सर्व रहन

सहन माताओंके द्वारा होता है, इसलिये माताओंको खास तौरसे बच्चोंके विगाड़ और सुधारका जिम्मेदार कहना पड़ता है।

बच्चोंके योग्य होनेके वास्ते जैसे योग्य माताओंकी आवश्यकता है वैसे ही शास्त्रमें कहे हुए कुछ अन्य संस्कारोंके किये जानेकी भी जरूरत है। इन संस्कारोंका वर्णन श्री जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराणजी अध्याय ३८, ३९ और ४० में दिया हुआ है। ये गर्भाधानादि संस्कार कहलाते हैं। हरएक गृहस्थी श्रावकको अपने बालकोंके कल्याणके लिये इन संस्कारोंका किया जाना आवश्यक है। ये संस्कार भी द्रव्य परमाणुओंकी शक्तिकी अपेक्षासे बालकोंके मन, वचन और तनके अन्दर अपने असरको पैदा करते हैं। आजकल जैन समाजमें इन गर्भाधानादि संस्कारोंका अभाव होगया है। कोई जैनी भाई इनकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। प्राचीन कालमें इनका यथार्थ व्यवहार होता था।

आगे हम संक्षेपमें इनकी विधि और मंत्र इस रीतिसे बयान करेंगे जिससे एक मामूली गृहस्थ भी विना किसी विशेष खर्च और दिक्कतके इन संस्कारोंको कर सके। जिनको बड़ी विधिसे करना हो वे अन्य ग्रन्थोंसे जानकर इनको प्रचारमें लावें।

अध्याय चौथा।

गर्भाधानादि संस्कार।

गर्भाधान-पहला संस्कार।

पुरुषको स्त्रीका सम्भोग विषयोंकी इच्छासे नहीं करना चाहिये, किन्तु सिर्फ पुत्रकी उत्पत्तिकी इच्छासे ही करना योग्य है। स्त्री मासके अन्तमें जब ऋतुवन्ती हो, तब वह ४ दिन तक एकान्त स्थानमें बैठे, शृङ्गार न करे, नियमसे जो सादा भोजन मिले उसे करे, बारह भावनाका विचार करे तथा न घरका कोई काम करे, न किसी पुरुषको देखे। ऐसी स्त्री पांचवें दिन अथवा किसी २ की सम्मतिसे छठे दिन स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पतिके साथ श्री मंदिरजीमें जाकर श्री अरहंतकी पूजा करे। फिर वह घरमें जाकर श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमा जो सिंहासन पर तीन छत्र सहित विराजमान हो उसके दाहिने बाएं ३ चक्र स्थापे, तथा वेदीके आगे अग्निके तीन कुण्ड बनावे। बहुधा गृहस्थियोंके यहां चैत्यालय होते हैं। यदि प्रतिमाका सम्बन्ध न हो सके तो सिद्धयंत्रको विराजमान करे। यदि उसका भी प्रबन्ध न हो सके तो जिनशास्त्रको विराजमान करके उसके आगे ३ कुण्ड बनावें।

एक कुण्डका नाम गार्हपत्य, इसको चौखूंटा □ बनावे। दूसरे कुण्डका नाम आह्वनीय, इसको त्रिखूंटा △ बनावे। तीसरे कुण्डका नाम दक्षिणावर्त्त, इसको अर्द्ध चन्द्रके आकार (◡) बनावे। इन तीनोंमें अग्नि जलावे। पहले कुण्डकी अग्निको तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्नि, दूसरे कुण्डकी अग्निको गणधरके निर्वाणकी अग्नि तथा तीसरे कुण्डकी अग्निको सामान्य केवलीके निर्वाणकी अग्नि कहते हैं। इन

तीनोंकी प्रणीताग्नि संज्ञा है। यदि तीन कुण्ड बनानेका न कर सके तो १ चौखूंटा कुण्ड अवश्य बनावे।

प्रतिमा या यन्त्र या शास्त्रको सिंहासन वा ऊँचे आसनपर विराजमान करनेके पहिले जो क्रिया करनी चाहिये वह इस भांति है:-

शुद्ध प्राशुक जल लेकर 'नीरजसे नमः' यह मन्त्र पढ़कर जहां पूजा करनी है उस भूमिको छींटा दे शुद्ध करे। फिर 'दर्पमथनाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर डाभका आसन ठीक मौकेपर अपने बैठनेको बिछावे। फिर आसनपर बैठ कर आगेकी जमीनको 'सीलगंधाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर प्राशुक जलसे छींटे। फिर 'विमलाय नमः, यह मन्त्र पढ़कर प्राशुक जलसे छींटे। फिर 'अक्षताय नमः' यह मन्त्र पढ़कर अक्षत चढ़ावे। फिर 'श्रुतधूपाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर धूप देवे। फिर 'ज्ञानोद्योताय नमः' यह मन्त्र पढ़कर दीप चढ़ावे। फिर 'परमसिद्धाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर नैवेद्य चढ़ावे। इस प्रकार जमीनको शुद्ध करके फिर सिंहासन या ऊंचे आसनपर प्रतिमा या यंत्र या शास्त्र विराजमान करे।

फिर आगे चौकीपर सामग्री रख थालमें देव, गुरु, शास्त्रकी नित्यपूजा स्थापनापूर्वक करे। पूजा संस्कृत हो चाहे भाषा, नित्यनियमपूजा बहुधा सबको कन्ठ आती है, नहीं तो उसको बतलानेवाली पुस्तकें हर स्थानमें मिलती हैं। इसलिये वह यहां नहीं लिखी जाती है। तथापि पुस्तकके अन्तमें नित्यनियमपूजा भाषा दी गई है। सो यदि पुस्तक न हो तो उसीको सूचीपत्र परसे निकालकर पूजन करें। यदि समयकी आकुलता न हो तो सिद्धपूजा भी की जाय। इस प्रकार नित्यनियमपूजा हो चुकनेके पश्चात् अग्निके उन कुण्डोंमें व १ कुण्डमें होम करे।

होमकी विधि।

कुंडमें ॐ वा साथिया 卐 बनावे। तथा लाल चन्दन, कपूर, सफेद चन्दन, पीपलकी लकड़ी, अगुरु (अगर) और छिली हुई

आककी लकडी शुद्ध प्राशुक होम करने योग्य कुण्डमें रक्खे और अग्नि जलावे। फिर नीचे लिखा श्लोक पढ़कर अर्घ चढावे—

श्री तीर्थनाथपरिनिर्वृत्तिपूज्यकाले।
आगत्य वह्निसुरपा मुकुटोल्लसाद्भिः॥
वह्निव्रजैर्जिनपदेहमुदारभक्त्या।
देहस्तदग्निमहमर्चयितुं दधामि॥

ॐ ह्रीं प्रणीताग्नये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा बोलकर अर्घ चढ़ावे। यदि कुण्ड तीन हों तो तीन दफे ॐ ह्रीं आदि बोलकर तीन अर्घ चढ़ावे। फिर होमकी सामग्री लेकर इस प्रकार होम करे।

होमकी सामग्री।

चंदन, अगुरु, बदामकी गिरी, पिस्ताकी गिरी, छुहारा तोड़ा हुआ, खोपरा, किसमिस, शक्कर, लवंग, कपूर, छोटी इलायचीके दाने आदि सुगन्धित द्रव्य लेवे। इन सबके बराबर घी लेवे और नीचे लिखे एक २ मन्त्र पर घी और सुगन्धित द्रव्य अग्निकुण्डमें होमे।

पीठिकाके मन्त्र।

ॐ सत्यजाताय नमः॥ १॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः॥ २॥
ॐ परमजाताय नमः॥ ३॥ ॐ अनुपमजाताय नमः॥ ४॥
ॐ स्वप्रधानाय नमः॥ ५॥ ॐ अचलाय नमः॥ ६॥
ॐ अक्षताय नमः॥ ७॥ ॐ अव्याबाधाय नमः॥ ८॥
ॐ अनन्तज्ञानाय नमः॥ ९॥ ॐ अनंतदर्शनाय नमः॥ १०॥
ॐ अनंतवीर्याय नमः॥ ११। ॐ अनंतसुखाय नमः॥ १२॥
ॐ नीरजसे नमः॥ १३॥ ॐ निर्मलाय नमः॥ १४॥
ॐ अछेद्याय नमः॥ १५॥ ॐ अभेद्याय नमः। १६॥
ॐ अजराय नमः॥ १७॥ ॐ अमराय नमः॥ १८॥
ॐ अप्रमेयाय नमः॥ १९॥ ॐ अगर्भवासाय नमः॥ २०॥

ॐ अक्षोभाय नमः ॥ २१ ॥ ॐ अविलीनाय नमः ॥ २२ ॥ ॐ परमघनाय नमः ॥ २३ ॥ ॐ परमकाष्ठायोगरूपाय नमः ॥ २४ ॥ ॐ लोकाग्रवासिने नमोनमः ॥ २५ ॥ ॐ परमसिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ २६ ॥ ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ २७ ॥ ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ २८ ॥ ॐ अन्तःकृत्सिद्धेभ्यो ॐ नमोनमः ॥ २९ ॥ ॐ परम्परासिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ ३० ॥ ॐ अनादिपरंपरासिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ ३१ ॥ ॐ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमोनमः ॥ ३२ ॥ ॐ सम्यग्दृष्ट्यासन्नभव्यनिर्वाणपूजार्हाग्नीन्द्राय स्वाहा ॥ ३३ ॥

इस तरह ३३ मंत्र पढ़ आहुति देकर फिर नीचे लिखा आशीर्वादसूचक मंत्र पढ़ आहुति देवे और पुष्प ले अपने व सर्व पास बैठनेवालोंके ऊपर डाले।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु ॥

अथ जातिमन्त्र।

ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्य ॥ ४ ॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥ ॐ अनुपजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति सरस्वति स्वाहा ॥ ८ ॥

इस तरह जातिमन्त्र पढ़ आठ आहुतियां देकर आशीर्वादसूचक नीचे लिखा मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे—

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु ॥

अथ निस्तारक मन्त्र।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥ २ ॥
ॐ षट्कर्मणे स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ग्रामपतये स्वाहा ॥ ४ ॥
ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥५॥ ॐ स्नातकाय स्वाहा ॥ ६ ॥
ॐ श्रावकाय स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ८ ॥
ॐ सुब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ।१०॥
ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा ॥ ११ ॥

इस तरह ११ आहुतियां दे फिर वही "सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु। मंत्र पढ़कर आहूति दे पुष्प क्षेपे।

अथ ऋषिमन्त्र।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥ २ ॥
ॐ निर्ग्रन्थाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ वीतरागाय नमः ॥ ४ ॥
ॐ महाव्रताय नमः ॥ ५ ॥ ॐ त्रिगुप्ताय नमः ॥ ६ ॥
ॐ महायोगाय नमः ॥ ७ ॥ ॐ विविधयोगाय नमः ॥ ८ ॥
ॐ विविधर्द्धये नमः ॥ ९ ॥ ॐ अंगधराय नमः ॥ १० ॥
ॐ पूर्वधराय नमः ॥ ११ । ॐ गणधराय नमः ॥ १२ ॥
ॐ परमर्षिभ्यो नमोनमः ॥१३॥ ॐ अनुपमजाताय नमोनमः ॥१४॥

ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा ॥ १५ ॥

ऐसी १५ आहुतियां देकर वही निम्नलिखित आशीर्वादसूचक मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे—

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु॥

अथ सुरेन्द्रमन्त्र ।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥ २ ॥
ॐ दिव्यजाताय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ दिव्यार्चिजाताय स्वाहा ॥४॥
ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ सौधर्माय स्वाहा ॥ ६ ॥
ॐ कल्पाधिपतये स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ अनुचराय स्वाहा ॥ ८ ॥
ॐ परंपरेन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अहमिन्द्राय स्वाहा ॥१०॥
ॐ परमार्हताय स्वाहा ॥ ११ ॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥ १२॥

ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्त्ते दिव्यमूर्त्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा ॥ १३ ॥

इस तरह १३ आहुतियां देकर वही पहिले लिखित आशीर्वादसूचक मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे ।

अथ परमराजादि मन्त्र ।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥ २ ॥
ॐ अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ विजयार्च्यजाताय स्वाहा ॥४॥
ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ परमजाताय स्वाहा ॥ ६ ॥
ॐ परमार्हताय स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥ ८ ॥

ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेजः उग्रतेजः दिशांजन दिशांजन नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा ॥ ९ ॥

इस तरह ९ आहुतियां दे वही आशीर्वाद सूचक मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे ।

अथ परमेष्ठि मन्त्र ।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥ २ ॥
ॐ परमजाताय नमः ॥ ३ ॥ ॐ परमार्हताय नमः ॥ ४ ॥
ॐ परमरूपाय नमः ॥ ५ ॥ ॐ परमतेजसे नमः ॥ ६ ॥
ॐ परमगुणाय नमः ॥ ७ ॥ ॐ परमस्थानाय नमः ॥ ८ ॥

ॐ परमयोगिने नमः ॥ ९ ॥ ॐ परमभाग्याय नमः ॥१०॥
ॐ परमर्द्धये नमः ॥११॥ ॐ परमप्रसादाय नमः ॥१२॥
ॐ परमकांक्षिताय नमः ॥१३॥ ॐ परमविजयाय नमः ॥१४॥
ॐ परमविज्ञानाय नमः ॥१५॥ ॐ परमदर्शनाय नमः ॥१६॥
ॐ परमवीर्याय नमः ॥१७॥ ॐ परमसुखाय नमः ॥१८॥
ॐ परमसर्वज्ञाय नमः ॥१९॥ ॐ अर्हते नमः ॥२०॥
ॐ परमेष्ठिने नमः ॥२१॥ ॐ परमनेत्रे नमो नमः ॥२२॥

ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजये त्रैलोक्यविजये धर्म-मूर्ते धर्ममूर्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा ॥ २३ ॥

इसप्रकार २३ आहुतियां देकर वही आशीर्वादसूचक मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे।

इसतरह (३३+८+११+१५+१३+९+२३) ११२ आहुतियां और ७ आहुतियां आशीर्वादकी ऐसी १२० आहुतियां दे होम पूर्ण करे।

ये सात प्रकार पीठिकाके मन्त्र हैं।

फिर गर्भाधान क्रियाके खास मन्त्रोंको पढ़ आहुति देवे और एक २ आहुतिके साथ पति पत्नीपर पुष्प क्षेपे; स्वयं डाले व पूजा करनेवाला डाले।

गर्भाधान क्रियाके खास मन्त्र।

सज्जातिभागी भव ॥ १ ॥ सद्गृहभागीभव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रभागी भव ॥ ४ ॥ परमराज्यभागी भव ॥ ५ ॥ आर्हन्त्यभागी भव ॥ ६ ॥ परमनिर्वाणभागी भव ॥ ७ ॥

इसप्रकार होम करके शांतिपाठ, विसर्जन जैसा मन्दिरोंमें करते हैं करे। बाद सर्व घरके पाहुनोंका यथायोग्य सत्कार कर व यथायोग्य दान दे। आप पति-पत्नी परम प्रीति सहित अपने २ पात्रमें भोजन करें। फिर दिनभर आनन्दमें बितावें, किसीसे कलह लड़ाई झगड़ा व शोक विषाद न करें और न पापोंके चितवनमें

समय बितावें। रात्रिको पत्नी सर्व शृंगार किये हुए पतिसे प्रेम प्रगट करे। विषयानुराग बिना, सच्चे प्रेमके साथ पुत्रोत्पत्तिकी कांक्षासे पति पत्नी संभोग करें।

यह गर्भाधान क्रियाकी रीति है। इस संस्कार द्वारा जो गर्भ रहेगा उसी समय गर्भ स्थित आत्माको पुद्गल परमाणुओं द्वारा असर पहुंचेगा।

२. प्रीति क्रिया—दूसरा संस्कार।

गर्भके दिनसे तीसरे महीने यह दूसरी क्रिया की जाती है। इस दिन भी पहलेकी ही तरह दम्पति सुगंधित पदार्थोंसे स्नान कर, मंदिर जा, घर आ पूजाका विधान करें। जैसा कि गर्भाधान क्रियामें किया था। वैसी ही पूजा तथा होम करे। पीठिकाके सात प्रकारके मन्त्रों तक होम करे। फिर इस क्रियाके नीचे लिखे खास मन्त्र पढ़ आहुति देवे और पति पत्नी पर तथा पत्नी पति पर पुष्प क्षेपे।

त्रैलोक्यनाथो भव ॥ १ ॥ त्रैकालज्ञानी भव ॥ २ ॥ त्रिरत्न-स्वामी भव ॥ ३ ॥

फिर शांति विसर्जन करके दान देवे, भोजन करे, करावे।

इस क्रियासे धार्मिक प्रीति पैदा करनेका अभिप्राय है और बालक पर इसीका असर डालना है। इस दिन याने प्रीति क्रिया करनेके दिनमें मकानके द्वार पर तोरण बांधे तथा दो पूर्ण कुम्भ स्थापित करे और यदि योग्यता या सामर्थ्य हो तो नित्य बाजे बजवावे, उत्सव करे।

३. सुप्रीतिक्रिया—तीसरा संस्कार।

गर्भाधानसे ५ वें महीने सुप्रीति क्रिया करे। इस क्रियामें भी पहिलेकी भांति पूजापाठ होमादि करे। सात प्रकारके पीठिकाके मन्त्रों तक वही विधि है। फिर इस क्रियाके निम्नलिखित खास मन्त्र पढ़ होम करे और पुष्प क्षेपे।

अवतारकल्याणभागी भव ॥ १ ॥ मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव ॥ २ ॥ निष्क्रांतिकल्याणभागी भव ॥ ३ ॥ आर्हन्त्यकल्याणभागी भव ॥ ४ ॥ परमनिर्वाणकल्याणभागी भव ॥ ५ ॥

इस भांति पूजा करके प्रेमपूर्वक दान देकर आहार करे। यह क्रिया परम प्रीति बढ़ानेवाली है।

४. धृतिक्रिया—चौथा संस्कार।

यह क्रिया गर्भसे ७ वें महीने की जाती है। इसमें भी पहिलेकी तरह पूजापाठ होमादि करे। सात पीठिकाके मन्त्रों तक वही बिधि है। फिर इस क्रियाके नीचे लिखे मन्त्र पढ़ आहुति दे पुष्प क्षेपे।

सज्जातिदातृभागी भव ॥ १ ॥ सद्गृहदातृभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रदातृभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रदातृभागी भव ॥ ४ ॥ परमराज्यदातृभागी भव ॥५॥ आर्हन्त्यदातृभागी भव ॥ ६ ॥ परमनिर्वाणदातृभागी भव ॥ ७ ॥

फिर शांतिपाठ विसर्जन करके दान दे आहार करे, करावे। यह क्रिया धैर्य प्रदान करनेवाली है।

५. मोदक्रिया-पांचवा संस्कार।

यह क्रिया गर्भके दिनसे ९ वें मास करनी होती है। इसमें भी पहिलेकी तरह सात पीठिकाके मन्त्रों तक होम करके फिर इस क्रियाके नीचे लिखे खास मन्त्र पढ़के आहुति देवे और पुष्प क्षेपे।

सज्जातिकल्याणभागी भव ॥ १ ॥ सद्गृहकल्याणभागी भव ॥ २ ॥ वैवाहकल्याणभागी भव ॥ ३ ॥ मुनीन्द्रकल्याणभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकल्याणभागी भव ॥ ५ ॥ मंदराभिषेककल्याणभागी भव ॥६॥ यौवराज्यकल्याणभागी भव ॥ ७ ॥ महाराज्यकल्याणभागी भव ॥८॥ परमराज्यकल्याणभागी भव ॥९॥

पश्चात् शांति वसर्जन करे।

फिर पत्नीके हाथमें णमोकार मन्त्र पढ़ रक्षाका सूत्र बांधे।

इस दिन घरमें मङ्गलाचार करे, दान दे, आहार करे, करावे तथा गीत गावें, वादित्र बजवावें।

गर्भिणी स्त्रीके कर्तव्य।

५ वें महीनेसे गर्भिणी स्त्री बहुत ऊँची जमीन पर चढ़े उतरे नहीं, नदी तैरके न जावे, गाड़ी पर न बैठे, कठिन दवाई न खावे, खार पदार्थ न खावे, मैथुन सेवन न करे, बोझा न ढोवे।

पतिका कर्तव्य।

गर्भिणी स्त्रीके पतिको उचित है कि देशांतर न जावे। ऐसा किसी नये मकान आदिका काम शुरू न करे, जिससे छुट्टी न पा सके। गर्भिणीकी सदा रक्षा करनी उचित है।

६. प्रियोद्भवक्रिया–छठा संस्कार।

यह क्रिया जब बालक जन्मे तब करनी होती है। इस दिन घरमें पहिलेकी तरह पूजन होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य अथवा कोई द्विज पूजन करे। पिता व कुटुम्बीजन सामने रहें। जब सात पीठिकाके मन्त्रों तक होम हो चुके तब नीचे लिखे मन्त्रोंको पढ़ आहुति देवे।

दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा, परमनेमिविजयाय स्वाहा। आर्हन्त्य-नेमिविजयाय स्वाहा॥

फिर भगवानके गन्धोदकसे बालकके अंगको छींटे देवे। यदि घरमें प्रतिमाजी व यन्त्र न हो तो श्री मंदिरजीसे गन्धोदक मँगा लेवे। फिर पिता बालकके सिरको स्पर्श करे और आशीर्वाद देवे। आशीस देते समय पिता इस तरह कहे:—

कुलजातिवयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयैः।
भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता॥

सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेयमस्त्वमपि पुत्रकः।
सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि प्राप्त चक्राण्यनुक्रमात्॥ १११-१२॥

यदि संस्कृतमें कहते न बने तो भाषामें इस तरह कहेः—

"तेरी माता कुल शुद्धि, जाति कुल शुद्धि, वय, रूप, शील इत्यादि गुणनिकर मण्डित, उत्तम सन्तानकी उपजावनहारी, भाग्य-वती, सौभाग्यवती, विधिमार्गकी प्रवृत्ति करनहारी, महा सौम्यमूर्ति, सम्यग्दर्शनकी धारक, अणुव्रतको पालनहारी महा योग्य। अरे! हे पुत्र! तू हूं दिव्यचक्र जो इन्द्रपद अर विजयचक्र जो चक्रवर्ती पद अर जो तीर्थेश्वर पद इन तीन चक्रनिका अनुक्रमसे धारक हूज्यो।" पुत्रके अङ्गको छूकर पुत्रके रूपमें अपना साक्षात् रूप देख स्नेह धारि यह कहेः—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादपि जायसे।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम्॥

अथवा भाषामें इस तरह कहेः-हे पुत्र! तू मेरे अङ्गतैं उपज्या है, हृदयथकी उपज्या है, मानूं मेरा आत्मा ही है, सो घने वर्ष जीव।

फिर दूध घीसे बना हुआ अमृत लेकर उससे बालककी नाभिको सींचे और नाभि-नाल काटे, उस समय यह आशीस देवे।

"घातिजयो भव, श्रीदेव्यः ते जातक्रिया कुर्वन्तु।"

इसका भावार्थ यह है कि 'घातिया कर्म जीते तथा श्रीदेवी तेरी जन्म-क्रिया करें।"

फिर बहुत यत्नके साथ बालकके शरीरमें सुगन्धित चूर्ण याने उबटना लगाकर शोभित करे। फिर सुगन्धित जलसे बालकको स्नान करावे। उस समय यह मन्त्र पढ़े "मन्दिराभिषेकार्हो भव।" फिर पिता बालकके सिरपर अक्षत डाले और आशीस कहे "चिरं जियात्"

फिर औषधियोंसे मिले हुए घीको बालकके मुंहमें माता तथा अन्य कुटुम्बीसहित पिता लगावे। उस समय यह मंत्र पढ़े "नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नं।"

फिर बालकका मुंह माताके आंचल (स्तन) में लगावे, तब यह मंत्र पढ़े "विश्वेश्वरा स्तन्यभागी भूयात्।"

इस दिन जन्मका उत्सव करे, दान देवे। बालकका जरापटल नाभि-नालिसहित ले जाकर किसी पवित्र धान्य उपजने योग्य भूमिकाको खोदकर गाडे। भूमि खोदनेसे पहिले यह मंत्र पढ़े "सम्यग्दृष्टे सर्वमात् वसुंधरे स्वाहा।" यह मंत्र पढ़कर पहिले अक्षत और जल गड्ढेमें डाले। फिर जरापटल और नाभि-नाल गाडे। इनके रखनेके पहिले पांचों रंगके रत्न नीचे रक्खे। फिर जरापटलादि रक्खे तब यह मंत्र पढ़ेः—

"त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयात्सुचिरजीविनः।"

फिर क्षीरवृक्ष बड़ पीपल आदिकी शाखा उसी जमीनमें रक्खे। और गड्ढा बन्द करे।

इधर माताको उष्ण याने गर्म जलसे स्नान करावे, तब यह मन्त्र पढ़ेः—

"सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये आसन्नभव्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमाता जिनमाता स्वाहा॥"

इस प्रकार जन्मके दिन क्रिया की जावे।

पूजा करानेवाला द्विज पितासे सब काम करावे। जहां अर्हत आदिकी पूजाका विधान हो उसे द्विज आप करे।*

* नोट—आदिपुराणमें सर्व क्रिया पिताहीको करनी लिखा है। चूंकि बालकके जन्मसे वर्तमान प्रवृत्तिके अनुसार पिताको सूतक लग जाता है, इसलिये पूजा सम्बन्धी क्रिया गृहस्थाचार्य करे। —सम्पादक।

जन्मसे तीसरे दिन पिता इस बालकको रात्रिके विषैं हाथमें लेकर ऊँचा करके नक्षत्रोंकर मंडित आकाश दिखावे, तब यह मन्त्र पढ़े " अनंतज्ञानदर्शी भव।"

७. नामकर्म-सातवां संस्कार।

जन्मके दिनसे १२ वें दिन बालकका नाम रक्खे। नाम बहुत सुन्दर रक्खे, इस दिन भी ऊपर कहे प्रमाण पूजा व होम सात प्रकार पीठिकाके मन्त्रों तक करे। फिर नीचे लिखे मन्त्र पढ़कर बालकके सामने आहुति देवे:—

" दिव्याष्टसहस्रनामभागी भव। विजयनामाष्टसहस्रभागी भव। परमनामाष्टसहस्रभागी भव।"

फिर गृहस्थाचार्य व द्विज १००८ नाम जो सहस्रनाममें आते हैं अथवा अन्य शुभ नाम कागजके अलग २ टुकड़ोंपर लिखकर रख दे और किसी सदाचारी मनुष्य व बालक द्वारा उनमेंसे १ पत्र उठवा ले। उसमें जो नाम निकले वही नाम पुत्रका रक्खे। नाम सुन्दर हो, जैसे जिनदास, शुभचन्द्र, ज्ञानचन्द्र, रत्नज्योति आदि।

इस दिन भी सबको दान देय सन्तोषित कर पिता आहार पान करे।

८. बहिर्यानक्रिया-आठवां संस्कार।

दूसरे, तीसरे अथवा चौथे महीने ठीक मुहूर्त और अनुकूल दिनमें प्रसूति-घरसे बालकको बाहर लाया जावे। आजकल लोग एक मास भी नहीं बीतता है कि बालकको प्रसूतिघरसे बाहर कर लिया करते हैं, ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि प्रसूतिघरके बाहर आ जानेसे माताका ध्यान दूसरी बातों पर चला जाता है। प्रसूतिघरमें माताका यह फर्ज है कि पुत्रको पालना भले प्रकार

करे और आप भी आराम पाती हुई शरीरकी निर्बलताको दूर करे। प्रसूतिघरमें हवा व रोशनीके जानेका मार्ग जरूर होना चाहिये।

इस दिन भी पहिलेकी तरह पूजा होम करे। फिर माता अथवा धाय बालकको स्नानादि कराय योग्य वस्त्र पहिराय प्रसूतिघरसे बाहर लावें और होमकुण्डके समीप माता बालक सहित सविनय बैठे। उस समय नीचे लिखे मन्त्र पढ़ आहूति देवे:—
उपनयनिष्क्रांतिभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्क्रांतिभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव ॥ ४ ॥ मंदराभिषेकनिष्क्रांतिभागी भव ॥५॥ यौवराज्यनिष्क्रांतिभागी भव ॥६॥ महाराज्यनिष्क्रांतिभागी भव ॥ ७ ॥ आर्हन्त्यनिष्क्रांतिभागी भव ॥८॥

फिर सर्व बन्धुजन कुटुम्बी हर्षसे बालकको देखें और उसके हाथमें द्रव्य देवें। इसका अभिप्राय यह है कि आगामी कालमें यह पिताका धन पावे।

फिर सर्व कुटुम्बीजन मिलके माता सहित बालकको धूमधामके साथ श्री जिनमन्दिरमें ले जांय व दर्शन करावें। यदि यह न बन सके तो घरमें जो चैत्यालय हो उसीमें दर्शन करावें दर्शन कराते समय यह मंत्र पढ़ें:—

ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा।

फिर लौटकर दानपूर्वक बंधुजनोंका सन्मान करके आहारपान करे।

७. निषधक्रिया—नवां संस्कार।

पांचवें महीने अथवा जब बालक बैठने योग्य हो जावे तब यह क्रिया करनी चाहिये। इस क्रियाका यह मतलब है कि यह बालक विद्याके सिंहासनमें बैठने योग्य होवे। इसकी विधि यह है कि पहलेकी तरह पूजन होम पीठिकाके मंत्रों तक करके फिर नीचे लिखे मन्त्रोंसे होम करे।

दिव्यसिंहासनभागी भव ॥ १ ॥ विजयसिंहासनभागी भव ॥ २ ॥ परमसिंहासनभागी भव ॥ ३ ॥

फिर अक्षत बालकके मस्तकपर डाल, उस बालकको पलंगपर बैठावे जिसपर कि रुईके कोमल बिछौने बिछे होवें। इस दिन घरमें मंगल गीत गाये जायें।

१०. अन्नप्राशनक्रिया-दशवां संस्कार।

जब बालक जन्मसे ७, ८ व ९ महीनेका हो जाय तब उसको अन्नके आहारका प्रारम्भ कराना चाहिये। जबतक यह क्रिया न हो जाय तबतक अन्न नहीं खिलाना चाहिये।

इस दिन भी पहिलेकी भांति पूजा व होम पीठिकाके मंत्रों-तक करके फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम पूजा करके बालकके ऊपर अक्षत डाल उसको सुवर्णोंसे सुशोभित कर अन्न शुरू करावें। दिव्यामृतभागी भव ॥ १ ॥ विजयामृतभागी भव ॥ २ ॥ अक्षीरामृतभागी भव ॥ ३ ॥

इस दिन भी घरमें मंगलाचार करे।

११. व्युष्टिक्रिया अथवा वर्षवर्धन क्रिया-ग्यारहवां संस्कार।

जब बालक जन्म-दिनसे १ वर्षका हो जाय तब यह क्रिया करनी चाहिये। आजके दिन इष्टबन्धु व मित्रजनोंको बुलाना चाहिये। पहिलेकी तरह पूजन होम करके नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करके आशीर्वाद-सूचक अक्षत, वस्त्रोंसे सज्जित बालकके ऊपर क्षेपे।

उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्टवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रजन्म-वर्षवर्धनभागी भव ॥ ४ ॥ मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव ॥ ५ ॥ यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ६ ॥ महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव

॥ ७ ॥ परमराज्यवर्पवर्द्धनभागी भव ॥ ८ ॥ आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ९ ॥

इसप्रकार पूजन विसर्जन करके यथाशक्ति दान देवे, वन्धुजनोंका सन्मान करे, उन्हें आहार कराय आप भोजन करे और घरमें मंगल गीत गवावे।

१२. चौलक्रिया और केशवापकर्म (मुंडनक्रिया) बारहवां संस्कार।

जब बालकके केश बढ़ जावें तब यह मुंडनक्रिया कराई जावे इसके लिये कोई खास समय नियत नहीं है, किंतु तेरहवां संस्कार बालकके पांचवें वर्ष पूर्ण होनेपर होता है। इसलिये उसके पहिले २ जब बालक दो तीन व ४ वर्षका होय तब यह क्रिया यथायोग्य की जावे। शुभ दिन देखकर मुंडन कराना योग्य है। पहिलेकी तरह पूजा होमादि करे। पीठिकाके मन्त्रोंके बाद नीचे लिखे मन्त्रोंसे होम करे। बालक व बन्धुजन वस्त्रोंसे सज्जित निकट बैठे।

उपनयनमुण्डभागी भव ॥ १ ॥ निर्ग्रन्थमुण्डभागी भव ॥ २ ॥ निष्क्रान्तिमुण्डभागी भव ॥ ३ ॥ परमनिस्तारककेशभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकेशभागी भव ॥ ५ ॥ परमराज्यकेशभागी भव ॥ ६ ॥ आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव ॥ ७ ॥

फिर भगवानके गन्धोदकसे बालकके केश गीले करके आशिकाके अक्षत बालकके सिर पर डाले जावें फिर बालक दूसरे स्थान पर जावे और उस समय चोटी सहित बिलकुल सिर मुण्डन कराया जावे। इधर विसर्जन हो जाय। फिर बालकको गन्ध-जलसे स्नान कराके चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य बालकके मस्तकादि अंगोंपर लगावे, तथा योग्य आभूषण पहिरावे, सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित कर सर्व बंधुजन मिलके उस बालकको श्रीमुनिमहाराजके निकट ले जावें।

यदि मुनि महाराज न हों तो श्रीजिनमन्दिरजीमें गाजे बाजेके साथ ले जावें और वहां दर्शन व प्रणाम तथा सामग्रीकी भेंट

करावे फिर गृहस्थाचार्य या द्विज बालकके मस्तकपर चोटीके स्थानपर चन्दनसे साथिया कर दे, जिसका प्रयोजन यह है कि अब इसको चोटी रखनी होगी। फिर श्री मन्दिरजीसे सर्व घर लौट आवें और दानादि करें, बन्धुजनोंको आहार कराय आप भोजन करें। घरमें मङ्गल गीत गाये जाऐं।

इस क्रियामें आभूषण पहिरानेका वर्णन लिखा है, सो आभूषण ऐसे मुलायम होने चाहिये, जिससे बालकको कष्ट न हो। आभूषणोंमें आजकल कुण्डल व बाले कानोंमें पहने जाते हैं, परंतु आदिपुराणमें कानोंके बींधे जानेकी कोई विधि नहीं है, इससे यह प्रगट होता है कि प्राचीनकालमें बिना कानोंको बींधे ही कानों पर ऊपरसे ही कुण्डल पहनाते होंगे। परंतु 'सोमसेन त्रिवर्णाचार' में कानोंके व नाक (कन्याके सम्बन्धमें) के बींधे जानेकी विधि व मन्त्र लिखा है।

मालूम होता है कि उस समय यह रीति प्रचलित होगी। हमारी सम्मतिमें यदि बींधनेकी प्रथा बंद की जावे तो बालकोंको कानोंके विधानेका कष्ट न हो। तथापि सोमसेनजीके लिखे अनुसार हम उस मन्त्रको लिख देते हैं। जब तक यह प्रथा न छोड़ी जाय तब तक जैन-मन्त्रके अनुसार ही कार्य किया जाय। कर्ण वेध क्रियाको सोमसेनजीने नामक्रियाके साथ ही करना कहा है तथा नामक्रियाको जन्मसे ३२ वें दिन भी कर सकते हैं, ऐसा कहा है। चूँकि मुण्डन क्रियाके साथ ही यह क्रिया होनेकी प्रथा है इसलिये यहींपर मन्त्र लिखा जाता है। जिस समय मूण्डन कराया जाय उसी समय कर्णवेध भी हो सकता है।

कर्णवेध मन्त्र।

ॐ ह्रीं श्री अर्हं बालकस्य हः कर्णनासावेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

१३. लिपि संख्यान क्रिया-तेरहवां संस्कार।

जब बालक पांच वर्षका हो जाय तब यह क्रिया किसी शुभ दिन विषें की जाती है। यदि अध्यापक घरमें ही आकर पढ़ावें तब तो यह क्रिया घर हीमें की जाय, किंतु जो किसी जैनशालामें पढ़ने जावे तो वहीं यह क्रिया की जाय। तब सर्व बन्धुजनोंको एकत्र कर बालकको वस्त्राभूषणोंसे सज्जित कर गाजे बाजेके साथ शालामें ले जावें। वहीं पूजन और होमकी विधि की जाय। जैसा होमादि पीठिकाके मन्त्रों तक इसकी पूर्वकी क्रियाओंमें हुआ है वैसा ही यहां किया जाय। फिर नीचे लिखे मन्त्रोंसे होम करके बालकके ऊपर अक्षत डाले जावें।

शब्दपारगामी भव ॥ १ ॥ अर्थपारगामी भव ॥ २ ॥ शब्दार्थ-सम्बन्धपारगामी भव ॥ ३ ॥

फिर उपाध्याय बालकके हाथसे पहले 'ॐ' लिखवावे। लिखानेका विधान यह है कि अक्षतोंको कलमसे जोड़कर अक्षर बनवावे व केशरसे कलम द्वारा अक्षर, सोने, चांदी व धातु पाषाणकी पाटे पर लिखवावें। ॐ के पीछे 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' लिखवावे तथा बंचवावे। फिर अन्य अक्षर भी लिखा व बंचा सकता है। बालकको अक्षरोंकी लिपि पुस्तक दी जाय और उसके रखनेकी विधि बताई जावे। जिस समय बालकको गुरु अक्षराभ्यास करावे उस समय बालक गुरुके सामने वस्त्रादि द्रव्य भेंट रक्खे और हाथ जोड़ प्रणाम करे, विनयसे गुरुके सामने बैठे। उस समय बालकका पिता यथायोग्य दान करे, सब बंधुजनोंको व गुरुके अन्य शिष्योंको मिष्टान्नादिसे सम्मानित करे, याचकोंको तृप्त करे, फिर गाजे बाजे सहित घरको लौटे, यथायोग्य बन्धुओंका सत्कार कर भोजन किया जाय।

आजके दिनसे प्रतिदिन बालक अक्षर व अंक आदिका अभ्यास करे अर्थात् इसके आगे करीब ३ वर्षसे होनेवाली जो उपनीति

क्रिया है, उसके पहिले२ अपनी (Primary Education) प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करले; याने अक्षर, शब्द वाक्योंका ठीक ज्ञान, लिखना, वांचना, अर्थ समझना, जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित सीखे। यदि एकके सिवाय अन्य लिपिके शास्त्रोंका भी आगे अभ्यास करनेका इरादा हो तो उन लिपियोंको इस कालमें सीख लेवे तथा साधारण धर्मकी शिक्षा भी लेता रहे, जिससे अपने जैनपनेको पहचानता जाय। नित्य दर्शन, जप आदि व खानपान क्रियाऐं ठीक २ वरते।

इस कालमें बालक माता पिताके पास ही रहता है, परन्तु विद्याका अभ्यास अध्यापक द्वारा घरमें व उसके स्थान पर लेता है। प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) में इस बालकको उपनीति क्रियाके पहिले२ चतुर हो जाना चाहिये। इसीलिये ३ वर्षका काल नियत किया गया है।

१४. उपनीति क्रिया (जनेऊ क्रिया)-चौदहवां संस्कार।

गर्भके दिनसे जब बालक ८ वर्षका हो जाय तब शुभ नक्षत्रमें यह यज्ञोपवीत क्रिया करनी योग्य है। त्रिवर्णाचारमें यह भी विधि है कि ब्राह्मण ८ वें वर्षमें, क्षत्री ११ वें वर्षमें तथा वैश्य गर्भसे १२ वें वर्षमें यज्ञोपवीत करावे। तथा अन्तको हद ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके लिये क्रमसे १६, २२, और २४ वर्ष है, परन्तु आदिपुराणके अनुसार तीनोंके लिये सामान्य काल ८ वर्ष है।

इस दिन श्रीजिनमन्दिरजीमें व किसी खास मण्डपमें जहां श्री जिनबिम्ब विराजमान हों, और बंधुजनादि बैठें सकें वहां यह क्रिया होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य वा प्रवीण द्विज या श्रावक यज्ञोपवीतकी सर्व क्रिया करावे। पहली क्रियाओंकी तरह पूजा व होम सात पीठिकाके मंत्र तक किया जाय। जिसका यज्ञोपवित हो वह बालक चोटी सिवाय अन्य अपने सब केशोंका मुंडन करा स्नान कर गृहस्थाचार्यके निकट जावे, तब द्विज नीचे लिखे मंत्रोंसे

आहूति देता हुआ उसके ऊपर अक्षत डाले और फिर विकार रहित सफेद वस्त्रादि पहिरावे, आदिकी क्रिया करे।

परमनिस्तारकलिंगभागी भव ॥ १ ॥ परमर्षिलिंगभागी भव ॥ २ ॥ परमेंद्रलिंगभागी भव ॥ ३ ॥ परमराज्यलिंगभागी भव ॥ ४ ॥ परमार्हत्यलिंगभागी भव ॥ ५ ॥ परमनिर्वाणलिंगभागी भव ॥ ६ ॥

पहले कमरमें मूंजका डोरा तीन तारका बटा हुआ (लाल हो तो शुभ है) नीचे लिखा मंत्र पढ़ तीन गांठ देकर बांधे। तीन गांठ देनेका यह मतलब है कि यह रत्नत्रयका चिह्न है।

ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे मौंजीबन्धनं प्रकल्पयामि स्वाहा।

फिर सफेद कपड़ेकी कोपीन मौंजीको पकड़के नीचे लिखा मन्त्र पढ़के अक्षत डालते हुए बांधे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीन-सहितं मौंजीबन्धनं करोमि पुण्यं बन्धो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा।

फिर गलेमें यज्ञोपवीत नीचे लिखा मन्त्र पढ़के डाले। यज्ञोपवीत कच्चे सूतका हो, जो पीला रङ्गा जाय और सात तारका बनाया जाय जिसका प्रयोजन यह है कि यह बालक ७ परम स्थानका भागी हो।

"ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि, मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।"

फिर मुण्डे हुए सिरमें चोटीकी गांठ लगावे, मस्तक पर नीचे लिखा मन्त्र पढ़ पुष्पमाला रक्खे वा पुष्प डाले। मस्तक पर तिलक करे और १ सफेद धोती और सफेद डुपट्टा पहरावे। मूण्डनेका मतलब यह है, कि यह मन वचन कायको मुण्डने अर्थात् वशमें रखनेकी इच्छाकी वृद्धि करे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रं परमेष्ठिने ललाटे शेखरशिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा।

उज्वल धोई धोती दुपट्टा देनेका मतलब यह है कि यह अरहन्तके पवित्र कुलका धारी है। फिर वह बालक एक अर्घ भगवानको चढ़ावे और अक्षतादि सहित हाथ जोड़कर गृहस्थाचार्यसे व्रत मांगे, तब द्विज नीचे लिखा मन्त्र तीनबार पढ़कर णमोकार मन्त्र देवे, तथा पांच स्थूल पापोंके त्यागका उपदेश दे और स्थूलपने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील और तृष्णाका घटाव ये पांच व्रत भले प्रकार समझाकर ग्रहण करावे।* विद्याभ्यास करने तक पूरा ब्रह्मचर्य ग्रहण करावे।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा।

तथा नीचे लिखी बातोंके न करनेका उपदेश देवे और उसका दूसरा शुभ नाम रक्खे।

१-हरे काष्ठसे दन्त धावन न करे। २-ताम्बूल न खावे। ३-सुरमा न लगावे। ४-हल्दी आदि पदार्थोंको लगाकर स्नान न करे, केवल शुद्ध जलसे प्रतिदिन नहावे। ५-खाटपर न सोवे, तखत चटाई या भूमिपर अकेले सोवे। ६-दूसरेके अङ्गसे अपना अङ्ग अकेलेमें न छुवावे।

फिर वह बालक अग्निके उत्तरकी ओर खड़ा होकर एक अर्घ चढ़ावे और अपने आसनपर बैठे। फिर पूजा विसर्जन की जाय और तब वह बालक द्विजकी आज्ञा ले भिक्षाका पात्र ले भिक्षा मांगनेको जावे। क्षत्रीका पुत्र अपने माता पितादिसे ही भिक्षा मांगे। ब्राह्मण व वैश्यका पुत्र तीन वर्णोंके गृहस्थियोंसे भिक्षा ले, गुरुके आश्रममें जावे। वहीं पहिले श्रावककी क्रियाका ग्रन्थ उपासकाध्ययन पढ़े। फिर व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, गणित अपनेर वर्णके योग्य पारमार्थिक और लौकिक विद्याका अभ्यास करे।

* यहां जैसे गृहस्थ श्रावक प्रतिज्ञा रूप व्रत लेते हैं वैसे नहीं हैं, किन्तु अभ्यास रूप है ऐसा समझमें आता है।

शिष्य जिसके घर भिक्षा लेने जाय उसके आंगनमें जा "भिक्षां देहि" ऐसा शब्द कहे। तब दातार अत्यन्त सम्मानपूर्वक तंदुलादि जो दे सो ले ले। इस तरह सन्तोषवृत्तिके साथ भिक्षासे उदर भरता हुआ और दिन रात गुरुके पास ब्रह्मचारीके रूपमें रहता हुआ विद्याभ्यास करे।

यज्ञोपवीत धारनेका विचार–जनेऊ अपने तालूके छेदसे नाभि-तक लम्बा लटकता रहना चाहिये, नाभिके नीचे न जावे, न इससे छोटा हो। लघुशंका करते समयमें दाहिने कानमें तथा दीर्घशंका समय बांयें कानमें तथा सिरमें भी लपेट सकता है, ताकि अशुद्ध न होने पावे। शौच करनेके बाद व सूतक पातक होनेपर व अङ्गमें तेल लगाकर स्नान करने पर जनेऊको गलेसे उतारकर अच्छी तरह धोवे, फिर पहिने। यदि जनेऊ तथा मौंजीसूत्र टूट जावे तो दूसरा बदल ले और पुरानेको नदीमें व दूसरे बहते पानमें डाल दे।

१५. व्रतचर्या– पन्द्रहवां संस्कार।

इस क्रियाका कोई खास दिन व मन्त्र नियत नहीं है। इस क्रियाके कहनेका यह अभिप्राय है कि वह विद्यार्थी ब्रह्मचारी कटिचिह्न (मौंजीबन्धन), उरुचिह्न (जंघ चिह्न), गलेका चिह्न (जनेऊ) तथा सिरका चिह्न (सिर मुण्डा शिखा–सहित) ऐसे चार चिह्नों सहित गुरुके पास विद्याध्ययन करे। दृढ़तासे ब्रह्मचर्यव्रत पाले। अपने वीर्यकी भले प्रकार रक्षा करे। वीर्यका कभी भी खोटा उपयोग न करे। गरिष्ट भोजन न खावे। भूखसे कुछ कम भोजन करे। अपने कर्तव्यमें पूरा तल्लीन रहे। नाटक, खेल, नाच, कूद, न देखे, जिससे परिणामोंमें विकार पैदा हों।

इस तरह कमसे कम ८ वर्ष तक गुरुके पास खूब विद्याभ्यास करे। यदि अधिक कालतक विद्याभ्यास करता रहे तो कोई हर्जकी बात नहीं है। विद्याके लाभमें खूब प्रवीण हो जावे। विद्याभ्यास

करनेकी तो यही पद्धति है; परन्तु यदि गुरुके आश्रममें पढ़नेका साधन न हो तो यज्ञोपवीत कराकर रक्षकोंको योग्य है कि अपने पुत्रोंको कमसे कम ८ वर्षतक विद्याभ्यास करावें, यदि पढ़नेमें शौक बढ़ता जा रहा हो तो और अधिक पढ़ने देवें, और घरमें भी उनको ब्रह्मचारीकी रीतिसे ही रखनेकी पूरी २ चेष्टा करें।

विद्यार्थियोंको धार्मिक विद्याके साथ २ लौकिक विद्याका पूर्ण विद्वान, विद्यार्थीकी रुचिके अनुसार विद्याके विभागमें बनाना चाहिये, और जबतक विद्याके लाभमें विद्यार्थी लवलीन रहे तबतक भूल करके भी उसके सामने विवाहकी चरचा तक न करनी चाहिये, सगाई व विवाह करना तो दूर ही रहा। विद्याभ्यास करनेवाले विद्यार्थीको मांस, मदिरा, मधु आदि अभक्ष्य पदार्थोंके खानेका त्याग होता है।

१६. व्रतावरण क्रिया-सोलहवां संस्कार।

विद्याभ्यास कर लेनेके बाद विद्यार्थी गुरुकी आज्ञा लेकर माता पिताके निकट आता है। यदि उसके परिणाम होते हैं कि मैं अब ब्रह्मचारी ही रहूं अथवा उत्कृष्ट श्रावक व मुनिके व्रत पालूं तो वह अपने माता पितासे आज्ञा लेकर उनको संसारकी अनित्यता दिखाकर श्री आचार्यके निकट रह व्रतका पालन करता है। और यदि उसके परिणाम विरक्त नहीं होते तो वह विवाहकी इच्छा करके घरमें रहता है। जनेऊ-दाता गृहस्थाचार्यकी आज्ञासे पहिलेके व्रतोंको उतारता है, वस्त्राभरण व पुष्पमालादि अपने कुलके योग्य धारण करता है; परंतु मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलका त्याग इसके सदा रहता है तथा पंच अणुव्रतोंको सदा पालता है और देवपूजा दानादि कर्मको करते हुए अपने २ कुलके योग्य व्यापारादिमें प्रवर्तन करता है। इसके पश्चात् माता-पिता उसके योग्य कन्या तलाश करते हैं, जिसके साथ प्रसन्न होकर वह विवाह-संस्कार करता है।

१७. विवाह क्रिया-सत्रहवां संस्कार।

योग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह होना भी एक धर्म-कार्य है। जैसा श्रीआदिपुराण पर्व १५ में कहा है—

देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहम्।
सन्तानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनाम्॥

अर्थात् सन्तानके लिये ये विवाह-संस्कार गृहस्थियोंका धर्म है।

कन्याके लक्षण।

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम्।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः॥

अर्थात्-दूसरे गोत्रमें जन्मी हो, रोग रहित हो, सुलक्षणवान हो, दीर्घायु हो तथा गुणवती हो (विद्याभ्याससे गृह धर्म और आत्मीक धर्ममें चतुर हो) तथा पिता द्वारा दी गई हो।

वरके लक्षण।

वरोपि गुणवान् श्रेष्ठो, दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः।
सुकुली तु सदाचारो, गृह्यतेऽसौ सुरूपकः॥

अर्थात्-वर गुणवान (धर्मकार्य तथा लौकिक आजीविकादि कार्यमें चतुर हो), कन्यासे बड़ा, दीर्घायु, निरोगी सुकुली, सदाचारी तथा सुरूपवान हो।

विवाह योग्य आयु।

कन्याको १४ वर्षकी उमरमें विवाह देना चाहिये, उससे पहले नहीं। यदि रजस्वला धर्म होनेकी सम्भावना न हो तो १४ से अधिक अवस्थामें भी विवाह हो सकता है। रजस्वला धर्म होनेकी सम्भावना पर कन्याको अवश्य विवाह देना चाहिए। कन्याकी उमरसे वरकी उमर कमसे कम ४ वर्ष अधिक व अधिकसे अधिक ८ वर्ष हो तो ठीक है।

यद्यपि माता-पिता कन्या व पुत्रके विवाहके अधिकारी हैं। तथापि कन्या व वरको भी अपने २ आगामी सम्बन्धीका हाल वाग्दानके पहले ही मालूम हो जाना चाहिये; क्योंकि विवाह होनेपर दोनोंमें एकता रहने हीसे गृह-धर्मकी शोभा होगी। यदि किसी वर व कन्याका मन परस्पर न मिले तो माता पिताको उनसे पूछकर उनका वाग्दान नहीं करना चाहिये, किंतु अन्य सम्बन्ध खोजना चाहिए।

वाग्दान क्रिया।

जिस मासमें लग्न होना हो उसके पहले पहले वाग्दान हो जाना चाहिये। सर्व सम्बन्धियोंके सन्मुख कन्या और वरके पिता किसी स्थानपर अपने २ इष्ट देवकी पूजा करके एकत्र हों, वहाँ गृहस्थाचार्य भी हो। तथा पहले कन्याका पिता यह वचन कहे कि "आप सबके सामने मैं अपनी इस कन्याको सद्धर्मकी वृद्धिके लिए अपने मन, वचन, कायसे आपके पुत्रको देना चाहता हूँ।" यह वचन सुन वरका पिता ऐसा कहे-" मैं सब मण्डलीके सन्मुख आपकी कन्याको अपने पुत्रके अर्थ वंश-वृद्धिके हेतुसे स्वीकार करता हूँ।" फिर कन्याका पिता अपने इस वचनके संकल्पको दिखलानेके लिये वरके पिताके हाथमें फल और अक्षत तथा तांबूल देवे। फिर वरका पिता भी उसे फल अक्षत व ताम्बूल देवे।

सगाई (गोद लेना।)

कन्याका पिता किसी शुभ दिनमें वरको अपने घर बुलावे। उस दिन कन्याका पिता वरको वस्त्रादि देवे व टीका करे। घरमें पहलेकी भांति देव पूजा तथा सप्तपीठिकाके मन्त्रोंतक होम करना चाहिये।

इसीप्रकार वरका पिता भी किसी शुभ दिन कन्याको बुलाये और ऊपरके समान कार्य किया जाय।

लग्न विधि।

किसी शुभ दिनमें कन्याका पिता पञ्चोंके सम्मुख विवाह करनेकी मिति निश्चय करके पत्रमें लिख सेवकके हाथ वरके पिताके घर भेजे। वरका पिता पञ्चोंके सामने इस लग्नपत्रको बांचकर सुनावे और सेवकको वस्त्रादि देवे।

सिद्धयंत्रका स्थापन।

जैसा पहली क्रियाओंमें कहा गया है कि इस यंत्रका स्थापन हरएक गृहस्थीके यहां होता ही है। यदि न हो तो विवाहके पहले यह सिद्धयंत्र वर तथा कन्याके पिताके घरमें श्रीमन्दिरजीसे यथायोग्य उत्सवके साथ लाया जाय अथवा यदि नवीन स्थापना करनी हो तो स्थापित किया जाय, और देव, गुरु, शास्त्रकी पूजा नित्य की जाय।

कंकन-बन्धन विधि।

विवाहके तीन दिन पहले गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मन्त्र पढ़ वर और कन्याको हरएकके घरमें रक्षाबन्धनके लिये कंकन बांधे। इस दिन भी पहलेकी भांति सप्तपीठिकाके मन्त्रोंतक पूजा व होम किया जाय।

जिनेन्द्रगुरुपूजनं, श्रुतवचः सदा धारणं।
स्वशीलयमरक्षणं, ददत् सत्तपो बृंहणम्॥

इति प्रथितषट्क्रियानिरतिचारमास्तां तवेत्यथ प्रथनकर्मणं विहितरक्षिकाबंधनम्।

मण्डप तथा वेदीकी रचना।

कन्याका पिता ४ काष्ठके थम्भोंसे युक्त सुन्दर चौकोर वेदी बनावे। उसे लाल वस्त्र और सूतसे वेष्टित करे। बीचमें वेदी (चबूतरा) च्यार हाथ लम्बी चौड़ी बनावे। जिसमें तीन कटनी कन्याके हाथसे

एक२ हाथ ऊंची बनवावे। सबसे ऊपरकी कटनी पर सिद्धयंत्र स्थापित करे। बीचकी कटनी पर शास्त्र तथा नीचेकी कटनी पर आठ मङ्गल द्रव्य अर्थात् झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, चमर, ठोणा, छत्र और दर्पण रक्खे। यदि ये मंगल द्रव्य चांदी व धातुके बने न हों तो आठ मंगल द्रव्योंका तोरण बांध दे तथा एक रकाबीमें केशरसे चौसठ ऋद्धियोंके नाम लिखे अथवा नीचे लिखा वाक्य लिखे—

बुद्धिचारणविक्रियातपः बलौषधरसाक्षीणचतुः षष्ठि ऋद्धिधारकेभ्यो गुरुभ्यो नमः।

तीसरी कटनीके आगे वेदीपर ही होमके लिये चौकोर तीर्थकुंड बनवावे। पूजा तथा होमकी सामग्री तैयार रक्खे।

विवाह विधि।

पाणिग्रहणके समय कन्या तथा वर और दोनोंके पिता माता और गृहस्थाचार्य ऐसे सात व्यक्ति रहने योग्य हैं। गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मन्त्र पढ़के प्राशुक जलसे भरे हुए यथासम्भव नवरत्न तथा पुष्प गंधाक्षत व बिजौरा फलसे शोभित कलशको बीचकी कटनी पर शास्त्रकी उत्तर ओर स्थापित करे।

ॐ अद्य भगवतो महापुरुष श्रीमदादिब्रह्मणोमतेऽस्मिन् विधीयमानविवाहकर्मणि होममण्डपभूमिशुद्धयर्थं पात्रशुद्धयर्थं क्रियाशुद्धयर्थं शांत्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतादिबीजपूरशोभितशुद्धप्राशुकतीर्थजलपूरितं मंगलकलशस्थापनं करोम्यहं झ्वीं क्ष्वीं हंसः स्वाहा।

अब शुभ घडीमें बरात लेकर वर श्वसुरके घरपर जावे। वर बरातके दिन स्नानादिकर वस्त्रादिसे सुसज्जित हो चैत्यबिंब व सिद्धयन्त्रकी तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके सर्व बरातियोंके साथ योद्धाकी भांति यथासंभव उत्सवके साथमें श्वसुरके द्वारपर जावे और द्वारपर जो तोरण (बन्दनमाल बंधा हो उसको स्पर्श करे) फिर स्त्रियोंके साथ कन्याकी माता आवे। वरके मुखको

देखकर वरके मस्तक ऊपर अक्षतादिकी अञ्जलि फेंके और सरसों, पुष्प, मोती, दूध, अक्षत और दीपकोंके समूह सहित थाल लेकर आरती उतारे तथा मुद्रिका आदि कुछ भी आभूषण देवे। उसी समय वरका पिता कन्याके लिये लाये हुए वस्त्राभूषण कन्याकी माताको अर्पण करे। उसी समय कन्याको स्नान कराकर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किया जावे।

फिर कन्याका मामा वरको लाकर वेदीके दक्षिण ओर पूर्व मुखसे खड़ा कर दे फिर कन्याको भी लाकर वरके सम्मुख खड़ा कर दे। गृहस्थाचार्य कोई भी मंगलपाठ व स्तोत्र पढ़े। तब कन्या सेहरा उठाकर वरका मुख देखे और वर कन्याका मुख देखे। फिर कन्या वरके गलेमें सुगंधित पुष्पोंकी माला पहिरावे।

फिर पहले कन्याका मामा वरसे कहे "मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवाके लिये यह कन्या देना चाहता हूं।" फिर ऐसा ही कन्याका पिता भी कहे, फिर कन्याके कुटुम्बके अन्य लोग भी ऐसा ही कहें। फिर कन्याका पिता अपने वंशको अपने परदादेसे गिनाता हुआ वरके परदादेसे बाप तक नाम लेता हुआ कहता है कि, "अमुककी यह कन्या सो अमुकके पुत्र जो तुमको देना चाहता हूं, सो तुम इसे वरो।"

वर सिद्धमहाराजको नमस्कार करके कहता है-"वृणेऽहम्" अर्थात् मैं वरी। फिर कन्याका पिता कहता है, "इसे धर्मसे पालन करना।" वर कहता है, "मैं धर्मसे अर्थसे और कामसे इसका पालन करूंगा" फिर कन्याका पिता जलकी भरी झारी हाथमें उठावे। तब दोनों पक्षके स्त्री पुरुष कहें 'वृणीध्वं वृणीध्वं वृणीध्वं' अर्थात् वरो, वरो, वरो। फिर गृहस्थाचार्य पिताकी ओरसे कहे, अमुक वर्षकी तिथि वारमें अमुक गोत्र नामवाला मैं अपनी कन्याको प्रदान करता हूं; तब यह नीचे लिखा मंत्र पढ़कर झारीमेंसे जलकी धारा वरके हाथमें डाले। सर्व स्त्री पुरुष वर कन्याके मस्तकपर अक्षत क्षेपण करे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्द्धमानाय श्रीबलायुरारोग्यसंतानाभिवर्द्धनं भवतु, इमां कन्यामस्मै कुमाराय ददामि, झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

फिर गृहस्थाचार्य्य नित्यनियमपूजा, देव-शास्त्र-गुरुकी पूजा तथा सिद्धपूजा करे। पूजा हो चुकने तक वर और कन्या खड़े रहें अथवा शक्ति न हो तो बैठ जावें। सिद्धपूजाके बाद सात पीठिकाके मन्त्रोंतक जैसा पहले लिखा है होम किया जावे। फिर कोई सुहागन स्त्री वर और कन्याका गठजोड़ा करे अर्थात् दोनोंका वस्त्र बांधे तथा कन्याका पिता हल्दी व मेंहदी अपनी कन्याके बाएं और वरके दक्षिण हाथमें लगावे। फिर गृहस्थाचार्य्य णमोकार मन्त्र पढ़ता हुआ कन्याका बांया हाथ नीचे और दाहना हाथ ऊपर रखकर जोड़ दे। उस समय कन्याका पिता अपनी योग्यतानुसार दहेज देवे। फिर सात परमस्थानकी प्राप्तिके लिये वर कन्या वेदीकी सात प्रदक्षिणा देवें। सातवीं प्रदक्षिणा हो चुकने पर कन्याकी संज्ञा छूटकर वधूकी संज्ञा हो जाती है। फिर वर वधू वेदीके सामने खड़े हो जावे; तब गृहस्थाचार्य्य हाथमें कलश ले जल-धारा देता हुआ नीचेका मंत्र पढ़कर शांति-धारा करे।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं। लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाता निर्वाणसागरमहासाधुविमलप्रभशुद्धाभश्रीधरसुदत्तामलप्रभोद्धराग्निसन्मतिशिवकुसुमांजलिशिवगणोत्साहज्ञानेश्वरपरमेश्वरविमलेश्वरयशोधरकृष्णज्ञानमतिशुद्धमतिश्रीभद्रशांताश्चेत्यतीतचतुर्विंशतिभूतपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां। धारा॥ १॥

ॐ सम्प्रतिकालश्रेयस्करस्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणकेवलज्ञाननिर्वाणकल्याणविभूतिविभूषितमहाभ्युदयाः श्रीवृषभाजितसम्भवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभपुष्पदन्तशीतलश्रेयांसवासुपूज्यविमलानंतधर्मशान्तिकुन्थ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमिपार्श्ववर्धमानाश्चेति चतुर्विंशतिवर्तमानपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां॥ धारा॥ २॥

ॐ भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभवाः महापद्मदेवसुप्रभस्वयंप्रभसर्वायुधजयदेवोदयदेवप्रभादेवोदंकदेवप्रश्नकीर्तिजयकीर्तिपूर्णबुद्धनिष्कपायविमलप्रभवहलनिर्मलचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्वयंभूकन्दर्पजयनाथविमलनाथदिव्यवागनन्तवीर्याश्चेति चतुर्विंशतिभविष्यत्परमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ३ ॥

ॐ त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदयाः सीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातकस्वयंप्रभऋषभेश्वरानन्तवीर्यविशालप्रभवज्रधरचन्द्राननचद्रबाहुभुजंगेश्वरनेमप्रभुवीरसेनमहाभद्रयशोभद्रजयदेवाजितवीर्याश्चेति पंचविदेहक्षेत्रविहरमाणा विंशतिपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां २ ॥ धारा ॥४॥

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवा वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥५॥

ॐ कोष्ठबीजपादानुसारिबुद्धिसंभिन्नश्रोत्रप्रज्ञाश्रवणाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ६ ॥

ॐ आमर्षक्ष्वेडजल्लविड्रुत्सर्गसर्वौषधयश्च वः प्रीयंता प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ७ ॥

ॐ जलफलजङ्घातंतुपुष्पश्रेणिपत्राग्निशिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ८ ॥

ॐ आहाररसवदक्षीणमहानसालयाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ९ ॥

ॐ उग्रदीप्ततप्तमहाघोरानुपमतपश्च वः प्रीयंतां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥१०॥

ॐ मनोवाक्कायबलिनश्च वः प्रीयतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ११ ॥

ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ १२ ॥

ॐ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १३ ॥

ॐ अंगांगबाह्यज्ञानदिवाकराः कुन्दकुन्दाद्यनेकदिगम्बरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १४ ॥

ॐ इहवान्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताजिनधर्मपरायणाः भवन्तु ॥ धारा ॥ १५ ॥

दानतपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु ॥ धारा ॥ १६ ॥

मातृपितृभ्रातृपुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्वसंबन्धिबन्धुसहितस्यामुकस्य (वरका नाम बोले) ते धनधान्यैश्वर्यबलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्द्धतां ॥ धारा ॥ १७ ॥

शान्तिधारा ।

तुष्टिरस्तु । पुष्टिरस्तु । वृद्धिरस्तु । कल्याणमस्तु । अविघ्नमस्तु । आयुष्यमस्तु । आरोग्यमस्तु । कर्मसिद्धिरस्तु । इष्टसम्पत्तिरस्तु । काममांगल्योत्सवाः सन्तु । पापानि शाम्यंतु । घोराणि शाम्यंतु । पुण्यं वर्द्धतां । धर्मो वर्द्धतां । श्रीर्वर्द्धतां कुलं गोत्रं चाभिवर्धताम् । स्वस्ति भद्रं चास्तु । क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा ॥ श्रीमज्जिनेन्द्रचरणारविंदेष्वानंदभक्तिः सदाऽस्तु ॥ धारा ॥ १८ ।

इस प्रकार पढ़ता हुआ मंगल कलशसे धारा छोड़ता जाय ।

इति शांतिधारा ।

फिर नीचे लिखी स्तुति पढ़कर गृहस्थाचार्य्य जलधारा देवे व शांतिके लिये पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ।

चिद्रूपभावमनवद्यमिमं त्वदीयं, ध्यायंति ये सदुपधिव्यतिहारमुक्तं ।
नित्यं निरंजनमनादिमनंतरूपं, तेषां महांसि भुवनत्रितये लसंति ॥१॥
ध्येयस्त्वमेव भवपंचतयप्रसार-निर्णाशिकारणविधौ निपुणत्वयोगात् ।
आत्मप्रकाशकृतलोकतदन्यभाव पर्यायविस्फुरणकृत्परमोऽसि योगी ॥२॥

त्वन्नाम मन्त्रधनमुद्धसजन्मजातम्-
दुष्कर्मदावमभिशम्य शुभांकुराणि ।
व्यापादयत्यतुलभक्तिसमृद्धिभाजि
स्वामिन्यतोऽसि शुभदः शुभकृत्त्वमेव ॥ ३ ॥
त्वत्पादतामरसकोशनिवासमास्ते
चित्तद्विरेफसुकृती मम यावदीश ।
तावत्त्व संसृतिजकिल्विषतापशापः
स्थानं मयि क्षणमपि प्रतियाति कश्चित ॥ ४ ॥

त्वन्नाममंत्रमनिशं रसनाग्रवर्ति
यस्यास्ति मोहमदघूर्णननाशहेतु
प्रत्यूहराजिलगणोद्भवकालकूट—
भीतिर्हि तस्य किमु संनिधिमेति देव ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वमेव शरणं तरणं भवाब्धौ
शांतिप्रदः सकलदोषनिवारणेन।
जागर्ति शुद्धमनसा स्मरतो यतो मे
शांतिः स्वयं वरतले रभसाभ्युपैति ॥ ६ ॥

फिर "उदकचन्दन आदि" बोलकर वर वधूसे अर्घ चढ़वाना चाहिये। फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर गृहस्थाचार्य वर वधूसे पुष्प क्षेपण करावे—

जगति शांतिविवर्धनमंहसां, प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन मे।
सुकृतबुद्धिरलं क्षमया युतो, जिनवृषो हृदये मम वर्त्ततां ॥ १ ॥

फिर गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मन्त्र पढ़ पुष्पांजलि क्षेपकर पूजा विसर्जन करे तथा जलधारा देवे।

ॐ ह्रीं अस्मिन् विवाहमांगल्यकर्मणि आहूयमानदेवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु, अपराधक्षमापनं भवतु।

फिर सासू और अन्य स्त्रियां वर और कन्याकी अक्षत सहित आरती करें।

गृहस्थाचार्य नीचे लिखे मन्त्रसे आशीर्वाद देवे, वर वधू विनय करें।

आरोग्यमस्तु चिरमायुरथो शचीव।
शक्रस्य शीतकिरणस्य च रोहिणीव॥
मेघेश्वरस्य च सुलोचनका यथैषा।
भूयात्तवेप्सितसुखानुभवोग्य धात्री॥

इसके पीछे वर सासू आदिको प्रणाम करे। वरका पिता सेवकोंको दान देवे, तथा श्री जैन मन्दिर व विद्या-वृद्धिके कामोंमें

वर और कन्याके पिता यथायोग्य दान देवें। यदि विवाहमें १००००) लगावें तो दसवां भाग धर्मार्थ अवश्य देवें। इसी हिसावसे दान करना उचित है।

पश्चात् वर वधूको लेकर व दहेजको लेकर वरके सम्बन्धी अपने घर आवे। घरमें सात दिनतक वर वधू ब्रह्मचर्यसे रहें, परन्तु दोनों परस्पर प्रेमसे वचनालाप कर सकते हैं। यदि दूसरे ग्राममें बरात गई हो तो डेरेपर आकर दूसरे दिन उस ग्रामके मन्दिरोंके दर्शन वींद वींदनी (वर वधू) करें, फिर घरमें पधारें। इसी प्रकार ७ दिनतक सर्व मन्दिरोंके बराबर दर्शन करें। आठवें दिन श्री मन्दिरजीके दर्शन करके उच्छवसहित घरमें आवें और कंकण-डोरा खोला जावे। उस दिन रात्रिको दूसरे तीसरे प्रहर केवल सन्तानके अर्थ कामसेवन करें।

पश्चात् ऋतु समय हीमें अर्थात् रजस्वला होनेके बाद ही काम सेवन करना उचित है।

इस तरह विवाह-संस्कार तक १७ संस्कारोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। विवाह सम्बंधी सप्तपदी वर कन्याके सात वचन आदि विशेष विधि "जैन विवाहविधि" नामकी पुस्तकसे मालूम हो सकती है, जो "दिगम्बर जैन पुस्तकालय, "सूरत" से प्राप्त होती है। अन्य आवश्यक संस्कार यथा अवसर कथन किये जांयगे।

अध्याय पांचवां।

अजैनको श्रावककी पात्रता।

श्री आदिपुराण ३९ वें पर्वमें अजैनको जैनी बनानेका जो विधान लिखा है उसका संक्षेपमें भावार्थ हम यहां इसलिये देते हैं कि हमारे पाठकोंको इसकी रीति मालूम हो जाय। अजैनको शुद्ध करनेकी जो क्रियाएं हैं वे दीक्षान्वय क्रियायें कहलाती हैं। इनकी संख्या ४८ है, परन्तु जो मुख्य २ क्रियाएं हैं वे यहां लिखी जाती हैं–

१. अवतार क्रिया।

तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ ७ ॥
स तु संयस्य योगीन्द्रं युक्ताचारं महाधियम्।
गृहस्थाचार्यमथवा प्रच्छतीति विचक्षणः ॥ ८ ॥

ये श्लोक प्रमाणके लिये दे दिये गये हैं। इस क्रियाका मतलब यह है कि जो भव्य पहले अविधि याने मिथ्या मार्गसे दूषित है, वह सन्मार्गके ग्रहणकी इच्छा करके किसी मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके पास जाकर प्रार्थना करे कि मुझे निर्दोष धर्मका स्वरूप कहिये; विषय कषायके प्ररूपनहारे मार्ग मुझे दोषरूप भास रहे हैं। तब आचार्य देव, गुरु और धर्मका उसे सच्चा स्वरूप समझावें जो सुनकर वह भव्य दुर्भाग्यसे बुद्धि हटाकर सच्चे मार्गमें अपना प्रेम प्रगट करता है और आचार्य्यको धर्मरूप जन्मका माता पिता समझता है।

२. व्रतलाभ क्रिया।

पश्चात् यह शिष्य अपनी श्रद्धा करके व्रतको ग्रहण करे और अपने गुरुका उपकार माने। यद्यपि आदिपुराणमें व्रतोंका नाम

नहीं लिखा है, परन्तु प्रारम्भमें पांच अणुव्रतका ग्रहण और तीन मकारका त्याग कराया जाता है अर्थात् संकल्प करके १. त्रस हिंसाका (आरम्भका नहीं), २. स्थूल असत्यका त्याग, ३ स्थूल चोरीका त्याग, ४. परस्त्रीका त्याग, ५. परिग्रहका प्रमाण तथा तथा मदिरा (शराब), मांस और मधु याने शहद-इन तीन मकारोंका त्याग-इस प्रकार व्रतोंको पाले। इसका अभ्यास हो जानेके पीछे शिष्य तीसरी क्रियाका प्रारम्भ करता है।

३. स्थान-लाभ क्रिया।

किसी शुभ नक्षत्रमें यह क्रिया की जावे। जिस दिन यह क्रिया हो उस दिनके पहले शिष्य उपवास करे। पारणाके दिन गृहस्थाचार्य्य श्री जिनमन्दिरजीमें महा सूक्ष्म पिसे चूनसे वा चन्दनादि सुगन्ध द्रव्योंसे आठ दल कमलका व समवशरणका मांडला मंडवावे और विस्तार सहित श्री अर्हन्त और सिद्धकी पूजा करे, पञ्च-परमेष्ठीका पाठ व समयके अनुसार अन्य किसी पाठकी पूजा करे। शिष्य भगवानकी प्रतिमाके सन्मुख बैठे, सर्व पूजा भावसे सुने। पूजाके पीछे गृहस्थाचार्य पंचमुष्टि विधान अथवा पंचगुरुमुद्राके विधान कर शिष्यके मस्तकको हाथसे छुए अर्थात् उसके सिरपर अपना हाथ रक्खे और कहे 'पूतोसि दीक्षया' अर्थात् तू इस

नोट—इस व्रत-लाभ क्रियाकी प्राप्तिमें यह भव्य मोटे रूपसे अन्यायोंको छोड़ता है। जैसे मांस न खाना, शराब न पीना, शहद न खाना, जान बूझकर इच्छासे किसी जानवरको नहीं मारना, दूसरेको ठगनेवाली झूठको न कहना, किसीका माल न उठाना, वेश्या व परस्त्रीसे काम-सेवन न करना, और तृष्णाको घटानेके लिये द्रव्यका प्रमाण कर लेना कि अमुक रकम हो जाने पर व्यापार न करूंगा, जैसे १ लाख या २ लाख जैसी अपनी इच्छा हो।

दीक्षाद्वारा पवित्र हुआ। ऐसा कहकर पूजनसे शेष रहे आशिका रूप अक्षतोंको उसके मस्तक पर डाले और फिर पञ्चणमोकार मंत्रका उसको उपदेश करे और कहे:—

"मंत्रोऽयमखिलात् पापात् त्वां पुनीतात्"

अर्थात् यह मन्त्र सर्व पापसे छुड़ाकर तुझे पवित्र करे। फिर गृहस्थाचार्य उसको पारणा करनेके लिये भेजे। वह शिष्य गुरुकी कृपासे सन्तोष मानता हुआ अपने घर जाकर पारणा करे। इसके पीछे चौथी क्रिया करे।

४. गणगृह क्रिया।

इस क्रियाका मतलब यह है कि वह भव्य अपनी मिथ्यात्वी अवस्थामें श्री अरहंत सिवाय और देवताओंकी मूर्तियोंको, जिनको कि वह पूजता था, अपने घरसे विदा करे, याने किसी गुप्त स्थानमें जहां उनको बाधा न हो और उनकी पूजा भी न हो ऐसी जगहमें रख आवे। जिस समय इन मूर्तियोंको अपने घरसे हटावे उस समय यह वचन कहे:—

इयन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्वकृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत् समयदेवताः॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम्॥

अर्थात्—अबतक मैंने अज्ञानसे तुम्हारी आदर पूर्वक पूजा की, मुझे अपने आगममें कहे देवताओंकी पूजा करना चाहिये, इसलिये हे मिथ्या देवताओं! तुम मेरेपर कोप न करके अन्यत्र जहां इच्छा हो वहां वसो। फिर शान्त स्वरूप जिनेन्द्रदेवकी पूजा करे। संस्कृतमें शब्द हैं—

विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः।

भाषा आदिपुराणमें यह वाक्य है—

यह क्रिया जो रागी देवनिकूं अपने घरतें विदा करि वीतराग देवको पधरावे।

इससे यह प्रगट है कि इस दिनसे वह भव्य श्री जिनेन्द्रकी पूजा करे। इसके पश्चात् पांचवीं क्रिया करे।

५. पूजाराध्य क्रिया।

इस क्रियामें यह भव्य भगवानकी पूजा करके तथा उपवास करके द्वादशांगके संक्षेप अर्थ सुनें, जिनवाणीको धारण करे। इसके पीछे छठवीं क्रिया करे।

६. पुण्य-यज्ञ क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव साधर्मियोंके साथमें १४ पूर्वका अर्थ सुने।

७. दृढ़चर्या क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव अपने शास्त्रोंको जानकर अन्य शास्त्रोंको सुने व जाने।

नोट—ये क्रियाएं किसी खास शुभ दिनमें प्रारंभ की जाती हैं। इसके पीछे ८ वीं क्रिया करे।

८. उपयोगिता क्रिया।

इस क्रियाको धारते हुए हरएक अष्टमी और चौदसको उपवास करे, रात्रिको कायोत्सर्ग करे व धर्मध्यानमें समय बितावे। इसके पीछे नवमी जनेऊ लेनेकी क्रिया करे।

९. उपनीति क्रिया।

जब यह भव्य जिन भाषित क्रियाओंमें पक्का हो जाय और जैनागमके ज्ञानको प्राप्त कर ले तब गृहस्थाचार्य्य उसको चिह्नोंका धारण करावे। इस क्रियामें इस भव्यको वेष, वृत्त व समय इन तीन बातोंको देवगुरुके समक्ष यथाविधि पालन करनेकी प्रतिज्ञा लेनी होती है। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीतका धारण कराना सो तो वेष है। जनेऊ लेनेकी जो विधि पहले लिखी जा चुकी है उसी तरह यह क्रिया भी होनी चाहिये। आर्योंके योग्य जो षट्कर्म

करके आजीविका करना सो ही इसके व्रत हैं (आर्यषट्कर्मजीवित्वं व्रतमस्य प्रचक्षते ॥१५॥) षट्कर्म ये हैं-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या। जैनोपासककी दीक्षाका होना सो ही इसके समय है। इस समय उसका गोत्र, नाम और जाति आदि नियत करे (दधतो गोत्रजात्यादिनामान्तरमतः परम् ॥ ५६ ॥)

नोट—इस लेखसे ऐसा विदित होता है कि अब इसका जैन-धर्मका नाम रक्खा जावे और किस जाति व गोत्रसे इसके गृहस्थीका व्यवहार चले सो ठीक कर दिया जावे। क्योंकि अब उपासकोंकी संज्ञामें आ जाता है।

भाषा आदिपुराणमें लिखा है कि "जब यह जिनमार्गी होय तब गोत्र जात्यादि नाम धारण करे।"

इस उपनीति संस्कारके होनेके पश्चात् कुछ दिनतक यह उपासक ब्रह्मचारीके रूपमें रहे और फिर दसवीं व्रतचर्या क्रिया करे।

१०. व्रतचर्या क्रिया।

गुरु मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके निकट उपासकाध्ययन भली-प्रकार पढ़नेके लिये रहे। संस्कृतमें तो इस क्रियाके सम्बन्धमें एक यही श्लोक है—

ततोऽयमुपनीतः सन् व्रतचर्य्यां समाश्रयेत्।
सूत्रमौपासकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोऽर्थतः ॥ ५७ ॥

अर्थ—तब यह उपनीत होकर व्रतचर्य्याका आश्रय करे और ग्रन्थसे उपासकाध्ययन सूत्रको भली प्रकार पढ़े।

भाषामें इस भांति और है:-"जबतक उपासकाध्ययन पाठ करे, ब्रह्मचारीके रूपमें रहे। चोटीकी गांठ, सिर नंगे, गलेमें जनेऊ, कमरमें त्रिगुणरूप मूँजके डोरेका बन्धन तथा पवित्र उज्वल धोती पहरे, पैरोंमें पादत्राण नहीं अर्थात् नंगे पैर रहे और धोती दुपट्टे सिवाय अन्य वस्त्र आभूषण नहीं पहरे।"

नोट—प्रयोजन यह है कि यह नवीन जैनी कुछ दिन गुरुकी

संगतिमें ब्रह्मचारी होकर रहे और श्रावकाचार भली प्रकार सीख लेवे। जब पढ़ चुके तब गुरुकी आज्ञासे ग्यारहवीं क्रियाको धारण करें।

११. व्रतावतरण क्रिया।

जब उपासकाध्ययन पढ़ चुके तब गृहस्थाचार्यके निकट ब्रह्मचारीका भेष उतार आभूषणादि अंगीकार करे, पीछे बारहवीं विवाह क्रिया करे।

१२. विवाह क्रिया।

जैनधर्मके अंगीकार करनेके पहले जो स्त्री विवाही थी उसको गृहस्थाचार्यके निकट ले जाय और श्राविकाके व्रत ग्रहण करावे। फिर किसी शुभ दिनमें सिद्धयन्त्रकी पूजन, होम पहिले लिखी विधिके अनुसार करके उस स्त्रीको पुनः स्वीकार करे।

इसके पीछे तेरहवीं वर्णलाभ क्रिया है, जिसका प्रयोजन यह है कि वह भव्य अपने समान आजीविका करनेवाले उपासकोंके साथ वर्णपनेके व्यवहारको कर सके अर्थात् कन्या-प्रदानादि काम कर सके। यदि किसी अजैनके पहले विवाहिता स्त्री न हो तो उसके लिये यहां ऐसा भाव प्रतीत होता है कि वह भव्य पहले वर्णलाभ क्रिया करके फिर अपना विवाह पञ्चोंकी सम्मतिके अनुसार नियत किये हुए वर्णमें करे।

१३. वर्णलाभ क्रिया।

इस क्रियाके प्रारम्भमें श्री जिनसेनजी यह श्लोक कहते हैं—

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात्सम्बन्धं संविधित्सतः।
समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः ॥ ६१॥

इसका भावार्थ ऊपर आगया है। इस क्रियाके लिये शुभ दिनमें श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करके वह भव्य चार बड़े मुख्य श्रावकोंको बुलाकर कहे—"जो मोहि तुम आप समान किया।

तुम संसारके तारक देव ब्राह्मण हो, लोक विषैं पूज्य अर मैं श्रावकके व्रतका धारक भया, अंगीकार करी है अणुव्रत दीक्षा मैं। जो श्रावकका आचार था सो मैं आचर्या, देव गुरुकी पूजा की, दान दिये; गुरुके अनुग्रह करि अयोनीसंभव जन्म मैंने पाया। चिरकालके अज्ञानरूपी अव्रतको तजकर जे पूर्वं नहीं अंगीकार किये थे सम्यक्त सहित श्रावकके व्रत ते आदरे। व्रतकी शुद्धताके अर्थ मैं जनेऊका धारण किया, और उपासकाध्ययन सूत्र मैंने भलीभांति पढ़ा। पढ़नेके समय ब्रह्मचारीके रूपमें रहा। बहुरि व्रतावरणके अन्त आभरणादि अंगीकार किये और मेरी पहली अव्रत अवस्थाकी स्त्री ताहि श्राविकाके व्रत दिलाये ताका ग्रहण किया। या भांति किया है श्रावकके व्रतका अंगीकार मैं, सो अब तुम सारिखे साधर्मीनिकी कृपासे मोहि वर्णलाभ किया योग्य है।"

इसतरह उन पञ्चोंसे कहे। तब वे श्रावक उत्तरमें कहैं, 'तुम सत्य हो, तुम्हारे कोई क्रिया जिनधर्मसे विपरीत नहीं. तिहारे वचन प्रशंसा योग्य हैं, तुम सारिखा और उत्तम द्विज कौन, तुम सारिखे सम्यग्दृष्टिनिके अलाभ विषैं मिथ्यादृष्टिनिसों सम्बन्ध होय है इस तरह कहे। और फिर वे श्रावक इसको वर्णलाभ क्रियासे युक्त करें अर्थात् णमोकारमन्त्र पढ़कर आज्ञा करें कि पुत्र पुत्रीनिका सम्बन्ध यासूं किया जाय। उनकी आज्ञातें वर्णलाभ क्रियाको पाकर उनके समान होय।

संस्कृतमें श्लोक है—

इत्युक्त्वैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्यते।
विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षताम् ॥ ७१ ॥

नोटः—इस क्रियासे यह विदित होता है कि जब अजैनका संस्कार हो जाय तब उसको अपनी जातिमें मिलाकर उसके साथ सम्बन्ध करनेका नियम जैनधर्ममें पाया जाता है। यह भी प्रगट होता है कि वह जैसी आजीविका करता हो, उस

प्रमाण वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीन प्रकारके द्विजोंमेंसे एकमें शामिल हो सकता है। इसके पीछे कुलचर्य्या और गृहीसिता आदि क्रियाएँ हैं, जिनसे प्रगट है कि वह अपने कुलके योग्य वृत्ति करे, गृहस्थधर्म पाले फिर क्रमसे गृह त्यागे, क्षुल्लक हो तथा फिर दिगम्बर मुनि हो जावे।

(यदि वह स्पर्श शूद्र है तो जैनी हो क्षुल्लक तक हो सकता है, इसको यज्ञोपवीत संस्कार नहीं है।)

इस प्रकार अजैनको श्रावककी पात्रता कैसे हो और वह कैसे वर्णमें शामिल हो इसका विधान कहा गया है।

अध्याय छठा।

श्रावक-श्रेणीमें प्रवेशार्थ प्रारंभिक श्रेणी।

यज्ञोपवीत आदि संस्कारसे संस्कृत किया हुआ गृहस्थ गृहमें रहता हुआ परम्परा मोक्षरूपी सर्वोत्तम पुरुपार्थकी सिद्धिको अपने अन्तरङ्गसे चाहता हुआ धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थको यथा-सम्भव पालन करता है। चूँकि मोक्षकी सिद्धि साक्षात् मुनिलिङ्गके धारने हीसे हो सकती है। इसलिये उस अवस्थाके धारनेका अनुरागी होकर पहले उसके नीचेके जो श्रावकके दरजे हैं उनमें प्रवीण होनेका यत्न सोचता है। श्रावकके दरजे क्रमसे ग्यारह हैं। जो इन श्रेणियोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है, वह मुनिधर्म सुगमतासे पाल सकता है। हरएक कार्य नियमानुसार किये जानेपर ही यथार्थ फलकी सिद्धि होती है।

जैसे किसीको हाईकोर्टकी सॉलिसीटरी प्राप्त करनी है तो वह पहले अंग्रेजी भाषाके प्रथम दरजेसे योग्यता प्राप्त करना शुरू करता है और क्रम क्रमसे आगे बढ़ता हुआ एन्ट्रेन्स क्लासको तयकर फिर कालेजकी क्लासोंको पास कर सालिसीटरीमें प्रवेश करता है, इसी प्रकार मुनि-मार्गका इच्छुक पहले श्रावकके दरजे तय करता है, तब सुगमतासे मुनिधर्मको पाल सकता है-राजमार्ग यही है, परन्तु कोई शक्तिशाली साहसी पुरुष यदि साधारण गृहस्थसे एकदम मुनि होजाय तो उसके लिये निपेध नहीं है, क्योंकि पुराणोंमें प्रायः ऐसे बहुतसे दृष्टांत मिलते हैं। किसी किसीकी ऐसी धारणा है कि इस कालमें मुनिधर्म पाला नहीं जा सक्ता-य[illegible]त ठीक नहीं है। श्रीसर्वज्ञ भगवानकी आज्ञानुसार पंचम काल[illegible]न तक मुनिधर्म रहेगा तथा सप्तम गुणस्थानके धारी होंगे। [illegible] मुनिलिंगका अभाव नहीं हो सकता, किन्तु जो श्रावककी ११ श्रेणियोंको क्रमशः तय करता जायगा उसको मुनि--

धर्म धारनेमें कुछ भी कठिनता नहीं हो सकती है। इस कालमें मुनिधर्मका निर्वाह कैसे हो, इसका हम दूसरे अध्यायमें वर्णन करेंगे।

इस अध्यायमें हमको यह कहना है कि गृहस्थी श्रावककी श्रेणियोंमें प्रवेश होने योग्य किस तरह होवे।

पहली प्रतिमाका नाम दर्शन प्रतिमा है। इस प्रतिमामें भरती होनेके लिये तैयारी करनेवाले गृहस्थको पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

पाक्षिक श्रावक-सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्रकी दृढ़ श्रद्धा रखता है तथा सात तत्त्वोंका स्वरूप जानकर उसका श्रद्धान करता है। (इन सात तत्त्वोंका स्वरूप इस दर्पणके द्वितीय भाग अर्थात् तत्त्वमालामें भले प्रकार बतलाया गया है।) वह पाक्षिक श्रावक व्यवहार सम्यक्तको पालता है, परन्तु सम्यक्तके २५ दोषोंको बिलकुल बचा नहीं सकता है। पाक्षिक श्रावकका आचरण श्री समंतभद्राचार्यजीके कथनानुसार नीचे लिखे आठ मूल गुणोंको पाले।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

अर्थात्—मद्य याने शराब, मांस और मधु याने शहद इन तीनोंको त्यागे और स्थूलपने पांच अणुव्रतोंके पालनेका अभ्यास करे। जैसे संकल्प अर्थात् इरादा करके त्रस-हिंसा न करे, स्थूल असत्य न बोले, स्थूल चोरी न करे, स्थूल अब्रह्म त्यागे अर्थात् परस्त्री व वेश्याका सेवन न करे और स्थूलपने तृष्णाको घटावे।

स्थूलका अर्थ यह समझना चाहिये कि जिस कार्यमें राजा दण्ड देवे और पंच भण्डे (दण्ड देवे), उस कार्यको न करे। पाक्षिक श्रावक इन आठ मूलगुणोंमें अतीचार नहीं बचा सकता है, मूल २ धारता है। श्रीजिनसेनाचार्यजीने आठ मूलगुण इस भांति कहे हैं—

हिंसाऽसत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात्।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥

अर्थात् स्थूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, जूआ, मांस और मदिरा इन आठको छोड़े।

सागारधर्मामृतमें पंडित आशाधरजीने आठ मूलगुण किसी अन्य आचार्यके प्रमाणसे इस भांति कहे हैं—

मद्यपलमधुनिशासनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुती।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः॥

अर्थात् १-शराब, २-मांस, ३-शहद, ४-रात्रिभोजन, ५-पांच उदम्बरफल (याने बड़फल, पीपलफल, पाकरफल, गूलर और अंजीर) इनको त्यागे; ६-पंचपरमेष्ठीकी भक्ति करे, ७-जीवदया पाले और ८-जल छानकर वर्ते।

अन्य कई ग्रन्थकर्ताओंने पाक्षिकके लिये कहा है कि सात व्यसन त्यागे और ८ मूलगुण धारे। व्यसन नाम शौक करनेका है। इन सात बातोंका शौक छोड़े। १-जुआ (बदके खेलना), २-मांस खाना, ३-शराब पीना, ४-वेश्यासेवन, ५-शिकार करना, ६-चोरी करना और ७-परस्त्री सेवन करना। जिस किसीको इनके करनेका शौक होता है वह इनसे रुक नहीं सकता है। इन सातोंका शौक छोड़े तथा ८ मूलगुणोंको धारे। अर्थात् मदिरा, मांस और मधु तथा ५ उदम्बर फल इनको नियम रूपसे कभी न खावे।

ऊपर लिखे हुएका सारांश यह है कि पाक्षिक श्रावकको नीचे लिखे अनुसार आचरण करनेका अभ्यास रखना चाहिये।

१. मांसकी डलीको हरगिज न खावे, न दवाईमें लेवे; क्योंकि मांस जीव-बधसे प्राप्त होता है तथा मरे हुए जीवके मांसमें भी हरवक्त त्रस जीव होते हैं और मरते हैं।

२. शराबको हरगिज न पीवे, न दवाईके वास्ते लेवे; क्योंकि इसके बननेमें अनगिनते त्रस जीव मरते हैं।

३. मधु याने मधुमक्खियोंसे इकट्ठा किया हुआ शहद न खावे; क्योंकि इसके लिये मधुमक्खियोंको कष्ट दिया जाता है

तथा उनके प्राणघात किये जाते हैं और उसमें अनेक मांसका सत भी मिल जाता है।

४. पांच उदम्बरका फल या ऐसे अन्य फल जिनमें त्रस जीव चलते, उड़ते हों हर्गिज न खावे।

५. बद करके जुआ न खेले, क्योंकि इसकी हार और जीत दोनों मनुष्योंको नीचमार्गी बनाती है।

६. चोरी, डाकाजनी, लूट न करे, जिससे राज्यमें दंडित हो।

७. शिकार न खेले, क्योंकि केवल अपने मजेके वास्ते पशुओंको कष्ट देना उचित नहीं। क्षत्रियोंको भी शिकार खेलना कर्तव्य नहीं है। वे धनुष-विद्याका अभ्यास वृक्ष आदिकोंपर व अचित्त द्रव्योंपर करते थे, हिरण आदि पशुओंपर नहीं।

८. वेश्याका सेवन न करे; क्योंकि वेश्या-धर्म, धन, बल, कुटुंब प्रेमको लूटनेवाली और रोगी बनाकर जीवनको निर्फल करानेवाली है।

९. परस्त्रीका सेवन न करे; क्योंकि पर-स्त्री दूसरेकी स्त्री है, उसपर इसका कोई हक नहीं। झूठनको खाना नीच अधम पुरुषोंका काम है। क्या कोई किसीकी झूठनको खाता है?

पाक्षिक श्रावक इन ऊपर लिखी बातोंके अतीचारोंको नहीं बचा सकता है तथापि अतीचारोंको चलाकर व्यर्थ करता भी नहीं है। जीवदयाके पालनेके अभिप्रायसे तथा रोगादिकसे बचनेकी इच्छासे तथा अन्यायसे बचनेके लिये नीचे लिखा आचरण भी पालता है:—

१—रात्रिको रसोई नहीं जीमता है।

२—विना छना पानी, दूध, घी व कोई पतली चीज नहीं ग्रहण करता है।

इन दोनोंके विषयमें पंडित आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें यह श्लोक कहा है—

रागजीववधापायभूयस्त्वात् तद्वदुत्सृजेत् ।
रात्रिभुक्तं तथा युंज्यान्न पानीयगालितम् ॥ १४ ॥

टीकामें 'रात्रिभुक्तं' का अर्थ—रात्रौ अन्नप्रासनं याने रात्रिको अन्न खाना ऐसा किया है। तथापि फलाहार आदि खाना भी नहीं चाहिये; क्योंकि दोनोंमें समानता है।

३—अन्यायसे विश्वासघात करके द्रव्य नहीं पैदा करता अर्थात् झूठ बोलकर दूसरेको नहीं ठगता है।

४—षट्कर्मका अभ्यास करता है-जैसे देवपूजा, गुरुकी भक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

५—जीवदया पालनेमें उत्साही रहता है। इरादा करके किसी त्रस जीवके प्राण नहीं लेना है। जैसे खटमलोंको मारना आदि, ऐसी हिंसा नहीं करता है।

६—अपने आधीन स्त्री पुत्रोंको विद्याभ्यास कराता है।

७—संघमें वात्सल्यभावके अर्थ जैनसंघको जिमाता, तीर्थयात्रा करता, प्रभावनार्थ मंदिर, धर्मशाला, पाठशाला बनवाता है।

८—अपने२ वर्णके अनुसार ६ प्रकारकी आजीविका करता है।

क्षत्रीके लिये असिकर्म याने देश-रक्षार्थ शस्त्रकर्म, वैश्यके लिये मसि याने हिसाबादी लिखना, कृषि याने खेती, व्यापार याने एक देशकी चीज दूसरेमें ले जाकर बेचना। शूद्रके लिये शिल्प याने कारीगरीकी मिहनत तथा विद्याकर्म याने गाना बजाना आदि। ब्राह्मणके लिये आजीविका नहीं-जो तीन वर्णवाले सन्मानसे देवें उसपर बसर करता है।

पाक्षिक श्रावककी दिनचर्या।

प्रातःकाल सूर्योदयके पहले उठे, शैयापर बैठे हुए णमोकार-मन्त्रका स्मरण करे, तथा विचारे कि मैं वास्तवमें औदारिक, तैजस, कार्मण-इन तीन शरीरोंके भीतर बन्द-स्वभावसे परम शुद्धताका धारी चैतन्यात्मा हूँ, मेरे जन्म-मरणका दुःख-कष्ट दूर होवें।

आज दिनमें मैं श्री जिनेन्द्रदेवकी कृपासे अन्यायसे बचूँ और धर्ममें प्रवर्तूं- ऐसा विचार कर दाहना पग पहले रखकर उठे। यदि रात्रिको स्त्री-संसर्गसे मलीन नहीं हुआ है और दीर्घबाधा (पाखाने) की इच्छा नहीं है तो लघुशंका (पेशाब) कर हाथ, पैर धो अंगोछेसे बदन पोंछ दूसरी धोती पहन एकांत स्थानमें जाकर बैठे और पञ्चपरमेष्ठीके मन्त्रकी जाप देवे तथा बारहभावना आदि वैराग्यके पाठ व स्तोत्र पढ़े। कमसे कम १५ व २० मिनट तो अवश्य ही यह धर्म-ध्यान करे, और २४ घण्टेके लिये कुछ संयम धारण कर ले, याने आज इतनी दफे भोजन तथा पान करूँगा, इतनी तरकारी खाऊँगा, इतनी सवारीपर चढूंगा, कामसेवन करूँगा या नहीं. गाना बजाना सुनूंगा या नहीं। आज इतनी दूर जाऊँगा, आदि बातोंका नियम अपने मनको रोकनेके लिये, जिसमें अपने परिणाम निराकुल रहें, उस प्रमाणसे करे।

यदि बिस्तरसे उठते वक्त दीर्घशंकाकी बाधा हो या स्त्री संसर्गसे अशुद्ध हो तो स्नान करके जाप करे। फिर बहिर्भूमिमें पाखानेके लिये जावे। गांवके बाहर मैदानमें दीर्घशंका करनेसे एक तो तबियत बहुत साफ होती है, दूसरे घरमें जो मलके ऊपर मल पड़के जीवोंकी अधिक उत्पत्ति होती है वह न होगी। यदि गांवके बाहर जगह बहुत दूर हो तो ऐसा किया जावे कि पाखानेके लिए एक किनारे कई टट्टियां हों, जिनमें अलग २ पक्के कूण्डे व टीनके कूण्डे रहें, उनमें एक एकका ही मल पड़े अथवा जहां जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल मिले वैसा वर्ता जावे। दीर्घशंका करके छने पानीसे स्नान करे। स्नान जहां तक सम्भव हो परिमित जलसे करे, क्योंकि स्नान केवल शरीरके ऊपरसे मैले परमाणुओंको हटानेके लिये किया जाता है। शरीरको गाढ़े अङ्गोछेसे अच्छी तरह पोंछे। यदि नदी व जलाशयमें स्नान करना चाहे तो केवल स्नान मात्रमें उसके जलको व्यवहार कर सकता है।

जैसा कि यशस्तिलकचम्पूमें कहा है—

वातातपादिसंस्पृष्टे भूरितोये जलाशये।
अवगाह्याचरेत्स्नानमतोऽन्यद्गलितं भजेत्॥

अर्थात्—हवा और धूपसे छुए हुए तथा बहुत पानीसे भरे हुए तालावमें डुबकी लगाकर स्नान कर सकता है, परन्तु इसके सिवाय हर मौकेपर पानीको छान करके काममें लेवे। यद्यपि यहां ऐसी आज्ञा है, परन्तु अन्य स्थानमें यह भी कथन है कि इस प्रकार डुबकी लगाकर नहानेकी रस्मको जारी नहीं करना चाहिये, नदी किनारे लोटे आदिसे पानी ले नहाना अच्छा है, कम हिंसाका कारण है।

पाक्षिक श्रावकको नित्य देवपूजा भी करनी चाहिये। यदि अपने घरमें चैत्यालय हो तब तो स्नान करके शुद्ध धोए वस्त्र याने धोती दुपट्टा पहन श्री जिनेन्द्रभगवानकी प्रक्षाल पूजन, भाव सहित करे, नहीं तो अपने नगरके मंदिरजीमें मंदिरके वास्ते अलग रक्खे हुए कपड़े पहन नंगे पैर अथवा कपड़ेका जूता पहनकर जावे। मंदिरजीके लिये कपड़े अलग ही रखने चाहिये। रेशम, ऊन व चमड़ेके वस्त्र व हड्डीके संसर्गके वस्त्र व हड्डीके बटन आदि मंदिरजीमें कभी न लेजावे। यदि मंदिरजीमें अष्टद्रव्यसे पूजन करनी हो तो घरके तैयार किये हुए आठ द्रव्य ले जावे और मंदिरजीमें थोड़े प्रासुक जलसे स्नान करके पूजाके वस्त्र पहन प्रासुक जलसे सामग्री तैयार करे और प्रक्षाल पूजन करे। यदि विशेष कारणवश अष्ट द्रव्यसे पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो कोई भी एक द्रव्य याने अक्षत या फल लेकर श्री मंदिरजीमें जावे। रास्तेमें दूसरा कोई विचार न करे, भगवत्की भक्ति करूँ यही भावना मनमें रक्खे।

दर्शनविधि।

श्री जिनमन्दिरजीको दूरसे देखते ही तीन आवर्त करके दोनों हाथ जोड़ मस्तकको लगाकर नमस्कार करे।

आवर्त दोनों हाथ जोड़ अपने मुखके सामने बांई तरफसे दाहनी तरफको घुमाकर लानेको कहते हैं। तीन आवर्तका अर्थ मन, वचन, कायसे नमन करना है। फिर मन्दिरके द्वारपर आते ही कपड़ेका जूता निकाले। द्वारपर जो पग धोनेके लिये प्रासुक जल रक्खा हो उससे पग धोवे। बहुत पानी न ढोले। फिर झुकता हुआ भीतर जावे। भीतर जाते २ ऐसा कहे, "जय जय जय, निःसहि निःसही निःसही।" इसका मतलब यह मालूम होता है कि यदि कोई देव आदि दर्शन करता हो तो वह आगेसे हटकर किनारे होजावे। यह बात जैसी सुनी है वैसी लिखी गई है। इसके पश्चात् श्री जिनेन्द्रके बिम्बके सामने जाकर आंख भरके प्रभूको देख ले। देखनेका प्रयोजन यह है कि श्री जिनेन्द्रकी मुद्रा श्री अरहन्तके समान वीतराग भावको प्रगट करनेवाली है कि नहीं, कोई अन्य चिह्न तो नहीं है, क्योंकि स्थापना तदाकार तिस ही वीतराग रूपकी दिखलानेवाली होनी चाहिये। फिर जो द्रव्य हाथमें लाया है उसको उसका श्लोक व मन्त्र बोलकर चढ़ावे। जैसे यदि अक्षत लाया है तो यह कहकर चढ़ावे।

क्षण क्षण जनम जो धारते, भया बहुत अपमान।
उज्वल अक्षत तुम चरण, पूज लहों शिव-थान॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो नमः अक्षयगुणप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। अर्थात् आत्माके अविनाशी गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं अक्षतोंको चढ़ाता हूँ। द्रव्य चढ़ानेके बाद दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त कर नमस्कार करे। जहां वेदीके चारों ओर परिक्रमा हो वहां हाथ जोड़े हुए तीन प्रदक्षिणा देवे। प्रदक्षिणा देते समय हर दिशामें तीन आवर्तके साथ हाथोंको मस्तक पर लगाकर नमस्कार करता जावे। ऐसा करनेमें १२ आवर्त और चार नमस्कार होवेंगे। प्रदक्षिणा देता हुआ णमोकार मन्त्र पढ़े, भगवानके स्वरूपको विचारे। फिर भगवानके सन्मुख आके संस्कृत व भाषामें कोई दर्शन पढ़े। तदनंतर कायोत्सर्ग करे अर्थात्

खड़ा हो तीन व नौवार णमोकारके साथ श्री जिनेन्द्रके ध्यानमई रूपका ध्यान करे। फिर दंडवत् करे। बाद गन्धोदक अर्थात् भगवानके चरणोंके प्रक्षालका जल अपने मस्तक और नेत्रोंको लगावे। उस समय यह कहे:—

निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनं।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकं॥

फिर शास्त्र-भंडार-गृहमें जाकर विनयपूर्वक रोजके नियत किये हुए किसी शास्त्रको थिरताके साथ बांचे। यदि सभाका शास्त्र होता हो तो आप स्वाध्याय करके उसको सुने अथवा सभाका शास्त्र सुननेके बाद आप स्वाध्याय करे। बाद घरमें आके श्रीमंदिरजीके कपड़े अलग रख देवे, दूसरे कपड़े पहने। फिर जलपानकी इच्छा हो तो जलपान करे, चिट्ठीपत्री आदिका काम देखे। १० बजेके पहले पहले घरमें रसोई तैयार कराके पहले किसी पात्रको या किसी भूखेको जीमने अथवा एक दो रोटी किसी गरीबको व पशुको देनेके लिये अलग निकालके भोजन करे। दानके लिये यह भी अच्छी प्रथा है जो प्रत्येक जीमनेवाला एक ग्रास अवश्य अलग करदे, फिर जीमें। यदि घरमें छोटे बच्चे व बुड्ढे व बुड्ढी हों तो उनको अपने साथ व अपनेसे पहले जिमावे; क्योंकि उनको भूखकी बाधा शीघ्र सताती है। यदि अभाग्यवश अपने गांवमें श्री जिनमन्दिरजी न हो व इतनी दूर हो कि आप जा नहीं सकता हो तो अपने घरमें स्नान करके किसी एकांत स्थानपर जाकर आसन बिछाकर बैठे और किसी मन्दिरजी व प्रतिमाका परोक्ष विचार कर हाथ जोड़ तीन आवर्त सहित नमस्कार करे और वहां उसी तरह विचार करके कोई द्रव्य चढ़ावे और उसी तरह स्तुति पढ़के दण्डवत् करे, जिस तरह कि मन्दिरजीमें किया जाता है। फिर स्वाध्याय करके उपर्युक्त प्रकार जलपानादि करे।

१० बजेसे ४ बजे तकका समय न्यायपूर्वक आजीविकाके लिये बितावे। ४ बजे लौटकर शुचि हो भोजन करे। संध्याके

पहले २ सुन्दर ताजी हवामें टहल आवे। संध्याको श्रीजिन-मंदिरजीमें जा एकान्तमें थोडी देरके लिये तप करें याने जाप जपे, पाठ पढ़े व विचार करे। फिर स्वाध्याय करे। यह काम घरपर भी कर सकता है। स्वाध्याय सर्व कुटुम्बियोंको सुनावे। फिर अपने पुत्र पुत्रियोंका विद्याभ्यास देखे। पश्चात् उपयोगी पुस्तकोंको देखता व वार्तालाप करता १० बजेके पहलेर शयन कर जावे। ६ व ७ घंटेके करीब सोकर सूर्योदयके पहले २ उठे। यदि आजीविकाका कार्य अधिक हो तो उसे संध्याके पीछे भी कर सकता है, परन्तु १० बजेसे अधिक जागना उचित नहीं है। पाक्षिक श्रावकको उचित है कि हरएक कार्य ठीक समयपर करे। ठीक समयपर आहार करे, ठीक समयपर विहार करे और ठीक समयपर निद्रा लेवे। समयकी पाबन्दीका अवश्य खयाल रखे।

पाक्षिक श्रावकके लिये लौकिक उन्नतिका यत्न।

पाक्षिक श्रावक नीतिका उलंघन न करता हुआ अपने २ वर्णके अनुसार अपने २ व्यापारमें कुशलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। राजा हो तो राज्य-कार्य व प्रजाकी रक्षामें, वैश्य हो तो अधिक धन-धान्यके लाभमें व परदेशोंमें जाकर विद्याभ्यास करने आदिमें। समुद्रोंकी यात्रा करनेकी मनाही जैन-शास्त्रोंमें कहीं नहीं है। अनेक राजपुत्र व सेठपुत्र व्यापारार्थ जहाजोंपर चढ़ कर परदेश जाया करते थे, किंतु यहां तक भी प्रचार था कि जब राजपुत्र व सेठपुत्र अपने विद्याभ्यासमें प्रवीण हो जाता था तो उसका विवाह करनेके पहले उसके माता-पिता इस बातको देखते थे कि हमारा पुत्र परदेशमें जाकर धनकी उन्नति करके आता है कि अवनति, इसके परीक्षार्थ अपने देशका माल जहाजों पर विक्रयार्थ दिया जाता था। चतुर सन्तान बड़े २ द्वीपोंमें जाकर उस मालको बेचते थे और अपने देशमें बिक्री होनेके लायक माल खरीद कर लाते थे। शास्त्रकारोंका यह मत है कि अपने न्याययुक्त कार्यके लिये गृहस्थी हर जगह जा सकता

है। केवल उसको यह अवश्य देखना चाहिये कि मेरा श्रद्धान न बिगड़े और मेरे व्रतोंका खण्डन न हो, जैसा कि कहा है—

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्तहानिर्न यत्र न व्रतदूषणं॥

अर्थात् जैनियोंको वे सर्व ही लौकिक व्यवहार मान्य हैं जहां व जिनमें सम्यक्तकी हानि न हो और जहां व्रतको दूषण न लगे। समुद्र यात्रामें भी खानपानकी शुद्धताका विचार रक्खे, निरर्गल न हो जावे।

पाक्षिक श्रावक नीतिके ऊपर ध्यान देता हुआ चलता है तथा धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धि इस प्रकारसे करता है कि जिसमें एकके बदले दूसरेकी हानि न हो। द्रव्यका उपार्जन करके यह चाहता है कि इसको न्याय सम्बंधी भोगोंमें लगाऊं तथा धर्म कार्योंमें खर्च करूं। यद्यपि यह पाक्षिक बहुधन्धी होता है तथापि धर्मकी पूरी २ पक्ष रखता है और यही चाहता है कि मैं धार्मिक उन्नतिमें तरक्की करता चला जाऊं। यह अन्यायसे बहुत डरता है और जीवदयाकी पक्ष रखकर यथासंभव दूसरोंको कष्ट नहीं होने देता है।

अध्याय सातवां।

दर्शनप्रतिमा–श्रावककी प्रथम श्रेणी।

पाक्षिक श्रावक अपने श्रद्धानसे दोषोंको बचानेके अभिप्रायसे और अपने आचरणकी शुद्धताके प्रयोजनसे दर्शनप्रतिमाके नियमोंको पालने लगता है। जब वह इस श्रेणीमें भरती होता है तब अपने श्रद्धानमें नीचे लिखे २५ दोषोंको बचानेकी पूरी२ चेष्टा करता है। यदि कोई दोष हो जावे तो अपनी निन्दा गर्हा करता है तथा उसका दंड लेता है। यह दर्शन प्रतिमाधारी अपने श्रद्धानमें निश्चय सम्यक्त्वकी भावना रखता है, वह अपने आत्माको शुद्ध परमात्मा सिद्धके समान निश्चयसे मानता है, मोक्षके अतीन्द्रिय सुखको ही सुख मानता है और इन्द्रिय सुखोंको क्षणिक, आकुलताकारी तथा दुःखका बीज जानता है। दार्शनिक श्रावककी अवस्था 'श्री समन्तभद्राचार्यजी' के कथनानुसार इस भांति है:—

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पंचपरमगुरुशरणः दार्शनिकः तत्त्वपथगृह्यः॥

(रत्नकरंड श्रावकाचार)

अर्थात्—जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, जो संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्यवान है, जो पञ्च परमगुरुकी शरणमें रहता है तथा जो धार्मिक तात्विक मार्गको ग्रहण किये है वह दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक है। तथा श्री अमितिगतिजी इस भांति लिखते हैं:—

शङ्कादिदोषनिर्मुक्त संवेगादिगुणान्वितम्।
यो धत्ते दर्शनं सोऽत्र दर्शनी कथितो जिनैः॥८३३॥

(सु० र० सन्दोह)

अर्थ—जो शंका आदि दोषोंसे रहित हो तथा संवेगादि गुणोंसे

विभूषित हो सम्यग्दर्शनको धारण करता है वह दार्शनिक श्रावक है—ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है।

श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीका श्री शुभचन्द्र कृतमें इस भांति वर्णन है कि—"सम्यग्दृष्टि श्री वीतराग अरहन्त देवके सिवाय अन्य किसी रागी, द्वेषी देवकी आराधना नहीं करता है, क्षेत्रपालादिको व यक्षादिको व किसी ज्योतिषीदेवको लक्ष्मी आदि देनेमें सहाई व सुख दुख देनेमें उपकारी, श्रद्धान नहीं करता है।"

गाथा ३१९ में कथन है—

कोऽपि एवं वदन्ति हरिहरादयो देवाः।
लक्ष्मीं ददाति उपकारं च कुर्वते तदपि असत्॥

अर्थ—कोई ऐसा कहे कि हरहरादिक देव लक्ष्मी देते हैं व उपकार करते हैं सो असत् याने ठीक नहीं है।

"हरिहरादयः" की व्याख्या इस प्रकार है—

हरिहरहिरण्यगर्भगजसुंडमूषकवाहनगणपत्यादिलक्षणो देवः व्यन्तर-चण्डिकाशक्तिकालीशक्तियक्षक्षेत्रपालादिको वा ज्योतिष्कसूर्यचन्द्र-ग्रहादिको वा.........

स्वामिकार्तिकेय ३२६ सूत्रकी व्याख्याके अनुसार सम्यक्तके ४८ मूलगुण और १५ उत्तरगुण हैं।

मूलगुण—४८-२५ मलदोष रहितपना, ८ संवेगादि लक्षण, ५ अतीचार रहितपना, ७ भय रहितपना और ३ शल्य रहितपना।

उत्तरगुण—१५-५ उदुम्बरत्याग, ३ मकारत्याग और ७ व्यसनत्याग।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाके अनुसार दर्शनप्रतिमाके पहले पाक्षिक श्रावकका दरजा नहीं कहकर सम्यग्दर्शन शुद्ध ऐसा दरजा रक्खा है और उसका यह लक्षण है कि ४८ मूलगुण, १५ उत्तर गुणसहित सम्यक्त पाले।

पाक्षिक श्रावकमें और सम्यग्दर्शनशुद्धमें इतना ही फर्क है कि पाक्षिक श्रावक सम्यक्तके दोषोंको सर्वथा नहीं बचा सकता है और सम्यग्दर्शनशुद्धवाला उन्हें भी सर्वथा बचाता है। श्रीसमन्त-भद्रजीके अनुसार हमको यही निश्चय रखना चाहिये कि दर्शन प्रतिमाधारी ही शुद्ध सम्यग्दृष्टी होता है। यह १५ उत्तरगुणोंके अतीचारोंकी भी बचाता है।

२५ दोषोंके नाम और स्वरूप—

१. शंका—जैनधर्म व तत्वादिमें शंका करना। यदि कोई बात समझमें न आवे तो सम्यक्ती उसको सत्यरूपमें ही निश्चय रखता है, परन्तु निर्णय करनेका प्रयत्न करता है।

२. कांक्षा—सांसारिक सुखोंकी रुचि करना।

३. विचिकित्सा—धर्मात्मा पुरुषोंको रोगादि सहित व दीन अवस्थामें देखकर घृणा करनी अथवा मैले पुद्गलोंको देखकर उनका सच्चा स्वरूप न विचार ग्लानि करनी।

४. मूढ़दृष्टि—मूढ़ताईसे किसी चमत्कारको देख किसी कुदेव, कुगुरु व कुधर्मकी श्रद्धा कर लेना।

५. अनुपगूहन—धर्मात्माके दोषोंको इस इच्छासे प्रकाश करना कि उसकी निन्दा हो। परके दोषोंको छुड़ानेका उपाय करना सो दोष नहीं है। अथवा अपने आत्माकी शक्तिको मार्दव आदि भावोंके लिये नहीं बढ़ाना, प्रमाद रूप रखना।

६. अस्थितिकरण—अपने या दूसरेको धर्म-मार्गमें शिथिल होते हुए स्थिर न करना।

७. अवात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रतिभाव न रखना।

८. अप्रभावना—धर्मकी प्रभावना नहीं चाहना व धर्मवृद्धि करनेका यत्न न करना।

नोट—इन आठ दोषोंके उल्टे आठ गुण सम्यक्तरूप अंगोंके आठ अंग कहलाते हैं।

९. जातिका मद—अपने मामा नानाके बड़प्पनका घमंड करना।

१०. कुलका मद—अपने पिता दादा आदिके बड़प्पनका अभिमान करना।

११. लाभका मद—अपनेको धन ऐश्वर्यका अधिक लाभ देखकर मद करना।

१२. रूपका मद—अपने सुन्दर शरीरको देखकर घमंड करना।

१३. बलका मद—अपने शरीरमें ताकत देखकर उसका अभिमान करना।

१४. विद्याका मद—अपनेमें विद्वत्ताकी बड़ाई जानकर घमंड करना।

१५. अधिकारका मद—अपनी आज्ञा बहुत चलती है ऐसा जान मद करना।

१६. तपका मद—आप तप, व्रत, उपवास विशेष कर सकता है-इसका घमण्ड करना।

नोट-ये आठ मद कहलाते हैं। सम्यक्ती आत्माके सच्चे स्वरूपका श्रद्धान करता हुआ इन सांसारिक बातोंको तुच्छ समझता है।

१७. देव मूढ़ता—वीतराग देवके सिवाय लोगोंकी देखादेखी अन्य रागी, द्वेषी देवोंकी मानता करनी।

१८. गुरु मूढ़ता—लोगोंकी देखादेखी परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ गुरुके सिवाय अन्य परिग्रहधारी साधुओंको धर्मगुरु मान विनय करनी।

१९. लोक मूढ़ता—लोगोंकी देखादेखी जो धर्मकी क्रिया नहीं है उनको धर्मक्रिया मान प्रवर्तने लगना, जैसे-सूर्यग्रहणमें स्नान, संक्रांतिमें दान, कार्तिक पूनमको गंगास्नान, कागज़, कलम, दावात, मिट्टी, शास्त्र, जूता आदिकी पूजा।

नोट-ये तीन मूढ़ता हैं।

२०. कुदेव अनायतन संगति—जहां धर्म प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे रागी द्वेषी देवोंकी संगति करनी।

२१. कुगुरु अनायतन संगति—जिसमें धर्म प्राप्ति नहीं है, ऐसे कुगुरुओंकी संगति करनी।

२२. कुधर्म अनायतन संगति—धर्म जिसमें नहीं पाइये ऐसे कुधर्म व कुधर्म-प्रतिपादित शास्त्रोंकी संगति करना।

२३. कुदेव पूजक अनायतन संगति—कुदेवके पूजनेवालोंमें धर्मका स्थान नहीं ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२४. कुगुरु पूजक अनायतन संगति—कुगुरुके पूजनेवालोंमें धर्मका स्थान नहीं है, ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२५ कुधर्म पूजक अनायतन संगति—कुधर्मके पूजनेवाले जिनमें धर्म नहीं है ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

संगतिका अर्थ यह है कि मित्रके समान रात्रि दिन व्यवहार करते हुए सम्मति रखना। इसका प्रयोजन यह है कि जिसमें श्रद्धान विचलित हो जावे ऐसी संगति न करनी; व्यवहारमें व्यवहार सम्बन्धी कार्य्यादि रखनेमें कोई हर्ज नहीं है। जिस जीवको अभ्यास करना होता है उसकी सम्हालके लिये उपाय है। जो कोई अपने तत्वज्ञानमें परिपक्व होकर अन्य धर्मोंकी पुस्तकोंको उनके तत्वोंके ज्ञान करनेके हेतु देखता है उसके लिये यह बात हर्जकी नहीं है।

संवेगादि आठ गुण—इनको सम्यग्दृष्टिके बाह्य लक्षण कहते हैं। इन गुणोंके द्वारा सम्यक्तीकी पहिचान होती है।

संवेग—धर्मके कार्योंमें परम रुचि रखना।

निर्वेद—संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यका होना।

उपशम—क्रोधादि कषायोंकी मन्दता रखनी अर्थात् शांति भाव रूप रहना।

निन्दा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा दूसरेसे करते रहना।

गर्हा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा अपने मनमें करते रहना।

अनुकम्पा—जीवदयाके भावको प्रकट करना।

आस्तिक्य—नास्तिकपनेका भाव नहीं करना, धर्ममें पक्की श्रद्धा रखनी।

वात्सल्य—धर्मात्मा जीवोंमें प्रीति प्रगट करना ?

अब ५ अतीचार कहते हैं—

शंका—तत्त्वादिकोंमें शंका करनी।

कांक्षा—धर्मसेवासे भोगादिकी इच्छा करनी।

विचिकित्सा—धर्मात्माओंसे ग्लानिभाव रखना।

अन्यदृष्टि प्रशंसा—मनमें मिथ्यादर्शन व मिथ्यादृष्टिको अच्छा समझना।

अन्यदृष्टि संस्तव—वचनसे मिथ्यादर्शन व मिथ्यादृष्टिकी तारीफ करना।

ये पांच अतीचार २५ मलोंमें गर्भित हैं। श्री दशाध्याय सूत्रजीमें, ५ अतीचारको ही सम्यक्तके दोषोंमें गिनाया है।

७ भय इस प्रकार हैं—

इस लोकभय—सम्यदृष्टि लौकिकभय न रखकर न्यायपूर्वक योग्य आचरण व व्यवहार करता है।

परलोक भय—सम्यक्तीको यह भय नहीं होता कि मैं नरक आदिमें चला जाऊँगा तो क्या होगा ? वह निर्भर रहकर अपना कर्तव्य साहसके साथ पालन करता है।

वेदनाभय—सम्यक्ती रोगकी तकलीफका भय नहीं करता, किन्तु रोगोंसे बचनेका यत्न करता है। यदि रोग होवेगा तो योग्य उपचार करता है।

मरण भय—सम्यक्ती मरनेसे नहीं डरता, वह मरणको केवल मकान बदलना समझता है; परन्तु अपनी आत्माको बन्धनोंसे रक्षित रखनेका उद्यम करता है।

अनरक्षा भय-मेरा कोई रक्षक नहीं, मैं अकेला हूँ-ऐसा जान कर भय नहीं करता है, किंतु अपने पुरुषार्थमें दृढ़ रहता है।

अगुप्त भय-मेरा माल असबाब कहीं चोरी न चला जाय क्या करूँ, ऐसा समझकर सम्यक्ती कम्पित नहीं होता है; किंतु माल असबाबके सुरक्षित रहनेका योग्य यत्न करता है।

अकस्मात् भय-कहीं अकस्मात् न हो जाय, मकान न गिर पड़े आदि कारणोंकी शङ्का करके भयभीत नहीं होता है, किंतु अपनी व अपने परिवारादिकी रक्षा सदा बनी रहे ऐसा उचित यत्न करता है।

३ शल्य ये हैं—

मायाशल्य—मायाचारका कांटा दिलमें चुभा करना अर्थात् शुद्ध श्रद्धानमें मायाचारके कुछ विकल्प उठते रहना।

मिथ्याशल्य—शुद्ध श्रद्धानमें मिथ्याशल्यका कांटा चुभा करना।

निदान—आगामी भोगोंकी इच्छाका कांटा चुभा करना।

नोट—जो गृहस्थी सात तत्त्वोंको भलीप्रकार श्रद्धान करके आत्माके स्वरूपको पहचान कर भेदविज्ञानरूपी मन्त्रका स्मरण करता है तथा केवल निजस्वरूपकी शुद्धताको चाहता हुआ मोक्षकी इच्छा करके गृहस्थ-धर्मको पालता है तथा सांसारिक सुखोंको क्षणभंगुर समझता है परन्तु कषायकी जरजोरीसे छोड़ नहीं सकता है। उस विवेकी मनुष्यकी बुद्धि स्वयं इस तरहकी हो जाती है कि उसके ऊपर लिखे हुए कोई दोष नहीं लगते। जो सच्चा श्रद्धालु होता है वह शंका कांक्षा आदि और मद न करके अपने धर्मकी वृद्धि करता हुआ जैन धर्मकी उन्नति चाहता है और अपने आप धर्मात्माओंकी संगतिको ही पसन्द करता है।

सम्यक्तीका ज्ञान स्वयं ज्ञानमय हो जाता है तथा आचरण

भी मिथ्यारूप नहीं होता। उसकी बुद्धिकी आपसे आप ऐसी सफाई होती है कि उसके आचरणमें ऊपर लिखे हुए दोष नहीं लगते। दर्शन प्रतिमावाले श्रावकको उचित है कि अपने विश्वासको दर्पणके समान साफ और सुथरा रक्खे तथा उसमें मैल अथवा अन्य कोई दोष न लगने देवे। शुद्ध नयसे अपने आत्माको शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायक, वीतराग, आनन्दमयी, असंख्यात प्रदेशवान अपने परिणामका आप कर्त्ता और भोक्ता निरंजन, पुरुषाकार अनुभव करे। इस अनुभवके स्वाद लेनेका सदा उत्साही रहे। आत्माकी चर्चामें परम सुख माने। तत्त्वोंकी चर्चामें परम हर्ष माने। अनुभव जगानेवाली श्री जिनेन्द्रकी पूजामें बड़ी ही रुचि रक्खे। दूसरोंको उपकारके योग्य समझकर अपनी शक्तिके अनुसार उनका भला करनेका यत्न करें तथा आपत्ति पड़नेपर भी किसी शासन देवताको न पूजे जैसा कि आशाधरजीने कहा है—

आपदाकुलितोऽपि दर्शनिकस्तन्निवृत्यर्थं शासनदेवतान् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तु भजत्यपि।

अर्थात्—आपदासे आकुलित होनेपर भी दार्शनिक उससे छूटनेके लिये शासन देवताओंको कभी न भजे, पाक्षिक श्रावक कभी भज भी ले। ऐसी शुद्ध श्रद्धाका रखनेवाला श्रावक पाक्षिक श्रावकके धर्माचरणोंको तो करता ही है, किंतु अपने आचरणके दोषोंको भी बचाता है। पाक्षिक श्रावकका खास आचरण पांच उदंबर त्याग, मधु त्याग, सात व्यसन त्याग इस भांति कहा गया था। यह दार्शनिक क्रियाओंमें दोषोंको भी बचाता है। श्री स्वामीकार्तिकेयकी संस्कृत टीकाके अनुसार दार्शनिकको नीचे लिखी वातें भी छोड़नी चाहिये।

१—चर्मके पात्रमें रक्खा हुआ घी, तैल, जल, हींग अथवा ऐसी ही कोई और बहनेवाली चीज़ जिसके सम्बन्धसे चर्मकी दुर्गन्ध वस्तुमें हो जाय, २—मक्खन, ३—कांजीके वड़े आदि, ४—अचार,

(८ पहरके अन्दरका खाया जा सकता है, उसके आगेका नहीं।) ५-घुना हुआ अनाज, ६-कंदमूल (जिनमें अनन्तकाय जीव होते हैं) और ७-पत्ती शाखा (पत्र शाखासन)।

श्री पं० आशाधरकृत सागारधर्मामृतके अनुसार पांच उदम्बर, तीन मकार और सात व्यसनके अतीचारोंको नीचे लिखे भांति टालना चाहिये—

१-मांसके अतीचारः—

चर्मके वर्तनमें रक्खा घी, जल, तेल, हींग तथा चमड़ेसे ढका हुआ नमक, चमड़ेकी चलनीसे छाना हुआ आटा व चमड़ेके सूपसे फटका हुआ धान्यादि।

२-मद्यके अतीचारः—

आठ पहरसे बाहरका अचार (संधान) व मुरब्बा व दही छाछ न खावे, फूई लगी चीज व कांजी (सड़ा हुआ मांड) न लेवे तथा मदिरा पीनेवालेके हाथका भोजन पान करे न उसके वर्तनोंसे काम लेवे।

३-मधुके अतीचारः—

जिन फूलोंसे त्रसजीव अलग नहीं किये जा सकते उन फूलोंको न खावे, जैसे गोभी, कचनार तथा शहदको नेत्रांजनादिमें भी न लगावे।

४-पांच उदम्बरके अतीचारः—

अजाना याने जिसके गुण दोष हम नहीं जानते ऐसा कोई फल न खावे, बिना फोड़े याने भीतर बीचमें देखे बिना सुपारी आदि फल न ले और न ऐसे दूसरे फल खावे जिनमें त्रसजीव पैदा हों जैसे जीवसहित बेर, जामन, शेंगफल, वायविडिंग आदि।

५-द्यूतके अतीचारः—

जुआ देखना नहीं, परस्पर दौड़ करके व कराके व मनके विनोदके लिये ताश गंजफा आदि खेलके द्वारा हार जीत मानना नहीं।

६-वेश्याके अतीचारः—

वेश्याओंके गीत, वादित्र, नाच देखे सुने नहीं, उनके स्थानोंमें घूमे नहीं और न वेश्यासक्त पुरुषोंकी संगति करे।

७-चोरीके अतीचारः—

राजदरबारका जोर दिखाके अपने दावादारोंसे अन्याय करके हिस्सा न लेवे (न्यायसे लेनेमें दोष नहीं है) और न अपने भाई बहिनोंका हिस्सा छिपावे, जो कुछ उनका हक हो वह उनको दे देवे।

८-शिकारके अतीचारः—

कपडे, पुस्तक, कागज आदिपर जो मनुष्य व पशुओंकी तसवीर हों उनके मस्तक-छेदादि न करे, न आटा, पिट्ठी, शक्कर व मिट्टी आदिके पुतले व पशु बनाकर उनका बलिदान व घात करे। दीवालीमें शक्करके पशु आकृतिके खिलौने बनाना, लेना, खाना, व खिलाना पापबंधका कारण है।

९-परस्त्रीके अतीचारः—

कुमारीके साथ रमण न करे, हठसे किसी कन्याको न हरे, अपनी मरजीसे किसी स्त्रीके साथ गंधर्व विवाह न करे।

पं० आशाधरजीकी सम्मतिके अनुसार रात्रि होनेसे दो घड़ी पहले व सवेरे २ घडी दिन चढ़े भोजन करे, रात्रिको आम्र, घी, दूध आदि रसोंका सेवन न करे, तथा पानी घडीके अंदरका छना पीवे तथा पानी छाननेके बाद उसका बिलछन उसी पानीके स्थानमें पहुंचा देवे।

नोट—रात्रिभोजन व पानी सम्बन्धी चर्चा अलग अध्यायमें पढ़नी चाहिये।

दार्शनिक श्रावकको क्या क्या आचार पालना चाहिये

जो आचरण पाक्षिक श्रावकके लिये वर्णन किया गया है, दार्शनिक श्रावक उस सर्वको पाले तथा सम्यक्तसे आचरणमें ऊपर लिखित दोषोंको बचावे और ७ व्यसन, ३ मकार तथा ५ उदंबरके जो दोष ऊपर कहे हैं उनसे भी बचे। इसके सिवाय उसको नीचे लिखी बातें और भी छोड़ना तथा ग्रहण करना चाहिये।

१—मद्य, मांस, मधु और अचारका व्यापार न करे।

२—मद्य, मांसवाले स्त्री पुरुषोंके साथ शयन व भोजन न करे, न उनके वर्तनोंमें खावे।

३—किसी भी प्रकारका नशा न करे; जैसे गांजा, भांग, तम्बाकू, चुरुट आदि न पिये।

४—देह व मनके आताप-हरणके लिये व सत्पुत्रके लाभके लिये मर्यादारूप अपनी स्त्रीके साथ ही मैथुन सेवन करे।

५—अपनी स्त्री और पुत्रोंको धर्ममार्गमें दृढ़ करनेका पूरा उद्यम करे।

ज्ञानानन्द श्रावकाचारके अनुसार इस प्रतिमावालेको नीचे लिखे २२ अभक्ष्य नहीं खाना चाहिये। इनका बहुतसा वर्णन ऊपर आ गया है।

२२ अभक्ष्यके नाम।

१-ओरा, २-घोरवड़ा, ३-निशभोजन,
४-बहुबीजा, ५-बैंगन, ६-संधान।
७-वड़, ८-पीपल, ९-ऊंबर, १०-कठूम्बर,
११-पाकरफल, जो होय १२-अजान॥

१३-कंदमूल, १४-माटी, १५-विष, १६-आमिष,
१७-मधु, १८-माखन, अरु १९-मदिरापान।
२०-फल अति तुच्छ, २१-तुषार,
२२-चलितरस, जिनमत ये बाईस अखान ॥

ओरा—ओला या बर्फ नहीं खाना चाहिये; क्योंकि अनछना पानी जमाया हुआ बहुत देरका होनेसे भीतर त्रस जीवोंको पैदा करता है।

घोरवड़ा—कांजी व दहीके बड़े। यह भी हानिकारक वस्तु है। दही, उड़द, राई, नमक आदिके संबंधसे त्रसजीव पैदा होते हैं।

बहुबीजा—जिन फलोंके अन्दर बीज गूदेसे अलग २ हों, गूदेके अन्दर अपना घर न करें और फलोंके तोड़नेपर अलग २ गिर पड़ें—उन्हें बहुबीजा कहते हैं।

ऐसा ही कथन दिलारामविलासमें कहा है:—

अरंड काकड़ी, घीया तेल, अवर तिजारा दाना मेल।
इत्यादिक बहु बीजा नाम, खाय नहीं श्रावक अभिराम ॥

ऐसा ही श्री० किसनसिंहकृत क्रियाकोषमें है।

"बहु बीजा जामें कण घना, कहिये प्रगट तिजारा तना।
जिह फल बीजनके घर नाहिं, सो फल बहुबीजा कहवाय ॥"

ऐसे फल अरंडकाकड़ी, तीजारा आदि हैं। संस्कृतमें प्रमाण नहीं मिला।

तुषार—ओसका पनी नहीं पीना चाहिये।

चलित रस—जिन वस्तुओंका स्वाद बिगड़ जावे वे सब चीजें चलितरसमें ली जाती हैं। किस चीजका स्वाद कब बिगडता है इस बातकी चरचाका कोई संस्कृत ग्रन्थ देखनेमें नहीं आया, परन्तु दौलतरामजी कृत क्रियाकोष भाषाके अनुसार वस्तुओंकी मर्यादा इस भांति है:—

पक्की रसोई—लाडू, घेवर, बाबर, मर्मरी, बून्दी आदि, जिसमें जलका अंश कम हो उनकी ८ पहर याने २४ घंटेकी मर्यादा है। पुआ पूरी, भजिया वगैरह जिनमें जलका अंश अधिक हो उनकी मर्यादा ४ पहर याने १२ घंटेकी है, याने उसी दिन बनाकर खा लेने चाहिये।

जिस चीजमें पानी न पड़ा हो, जैसे घी, शक्कर, आटेका मगद व लड्डू-इनकी मर्यादा आटा या किसी भी पिसे हुए चूनके बराबर है। चूनकी मर्यादा शीतऋतुमें ७ दिन, गर्मीमें ५ दिन तथा वर्षामें ३ दिनकी है।

कढ़ी, खिचड़ी, दाल, भात आदिकी मर्यादा दो पहर याने ६ घण्टेकी है।

औटे हुए दूधकी मर्यादा ८ पहर याने २४ घण्टेकी है। गर्म जल डालकर तैयार की हुई छाछकी मर्यादा ४ पहर याने १२
घण्टे व
घड़ीकी
८ पहरकी
है। लौंग,
स्पर्श, रस
याने ६ घ
औटे हुए

नोट-
है। इस
अधिक हो
है कि या
करणानुयो
होते हैं।

सम्यग्दृष्टी। इनमें उपशम सम्यग्दृष्टीकी मर्यादा अन्तर्मुहूर्तकी है तथा क्षायककी ३३ सागरसे अधिक है, परन्तु क्षयोपशमकी सर्वसे अधिक ६६ सागरकी है।

इस पञ्चमकालमें यहां क्षायक-सम्यक्त तो होता नहीं, केवल उपशम और क्षयोपशम-सम्यक्त होता है सो जब उपशमकी मर्यादा केवल ४८ मिनटके भीतरकी है तो अधिक कालतक ठहरनेवाला केवल क्षयोपशम सम्यक्त ही है। इस सम्यक्तके होते हुए चल, मल, अगाढ़ ऐसे तीन प्रकारके दोष लगते हैं। मलके भीतर वे ही १५ मलदोष अथवा ५ अतीचार गर्भित हैं। परन्तु चरणानुयोगकी अपेक्षासे इस श्रेणिका श्रावक इस बातका पूरा यत्न करता है कि कोई दोष न लग जावे। यदि चारित्रमें कोई दोष लग जावे तो उस दोषको दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त याने दण्ड लेता रहता है तथा चारित्रकी उज्वलताके लिये श्रावक सात व्यसन, पांच उदुम्बर तथा मधु आदिके दोषोंको अवश्य बचाता है।

अध्याय आठवां।

व्रत प्रतिमा।

दर्शनप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास जब अच्छी तरह हो जावे तब मोक्षका इच्छुक श्रावक व्रतप्रतिमाके दरजेमें दाखल होकर इसके नियमोंको पालने लगता है, किन्तु पहलेके नियमोंको त्यागता नहीं है। वास्तवमें अंतरंगमें आत्माके परिणामोंकी उज्वलता और बाह्यमें चारित्रकी निर्मलता ये दोनों एक दूसरेके आश्रय हैं, इसलिये चारित्रकी अधिक उज्वलता इस दरजेमें की जाती है। स्वामी समंतभद्राचार्यके कथनानुसार इस प्रतिमाका यह स्वरूप है—

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थ—जो माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्य याने मनके कांटोंको छोड़कर पांच अणुव्रतोंको अतीचार रहित पालता है तथा सात प्रकार शीलको भी धारता है-वह व्रतियोंमें व्रत प्रतिमावाला श्रावक है।

शल्य—जैसे पैरमें कांटा लग जावे तो यद्यपि पैरमें घाव नहीं होता, परन्तु पीड़ा ऐसी होती है जिससे पैरको चैन नहीं पड़ती। इस तरह माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य हैं, इनमेंसे व्रतीके कोई भी होगी तो उसके परिणामोंको निराकुल सुखका लाभ अर्थात् आत्मानुभव बाहर चारित्र पालते हुए भी नहीं होगा। इसीलिये व्रतीको योग्य है कि खूब विचार करके ये तीन कांटे अपने मनसे निकालकर फेंक देवे।

माया—अपने परिणामोंकी विशुद्धता होवे इस अभिप्रायसे तो व्रत न करे, किन्तु किसी अंतरंग लज्जा-भावसे व किसी सांसारिक प्रयोजनसे मान बड़ाईकी इच्छासे बाहर ठीक चारित्र भी पाले तो

वह मायाका भाव है। इस भावको दूर किया जायगा तब ही व्रत पालनेके भावमें निर्मलता आयगी।

मिथ्या—व्रत पालते हुए चित्तमें पूरा श्रद्धान नहीं होता कि यह व्रत मेरे आत्मोद्धारके कारणभूत है। बाहर तो चारित्र ठीक पालना; परन्तु अन्तरङ्गमें यह संशय होना कि मालूम नहीं इससे अपना कल्याण होगा या नहीं अथवा अनध्यवसायका भाव करे कि हमें व्रत तो पालना ही चाहिये जो कुछ फल होगा सो होगा। इसमें यह दृढ़ निश्चय नहीं होता है कि ये व्रत मेरे मोक्ष-साधनमें उपायरूप हैं।

निदान—परलोकमें मैं नरक, निगोद व पशुगतिसे बचकर स्वर्गादिक व राजादिकोंके मनोहर सुख प्राप्त करूं अथवा इन्द्र हो जाऊं और अनेक देव देवियों पर अपनी आज्ञा चलाऊँ। इस तरहके भोगोंको इच्छा रखता हुआ बाहरमें ठीक २ व्रतोंको पाले सो निदान शल्य है।

जो शुद्ध आत्मीक आनन्दका रसिक है वह कभी भी इन तीन शल्यरूप भावोंको अपनेमें नहीं लाता और केवल वीतरागी भावकी वृद्धिके लिये ही व्रतादिकोंको आचरण करता है।

पांच अणुव्रत और उनके २५ अतीचार।

१–अहिंसा अणुव्रत।

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः॥ ५३॥

अर्थ—संकल्प करके (इरादा करके) जो त्रस जीवोंकी हिंसा मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे नहीं करनी सो स्थूल वधसे विरमणरूप अहिंसा अणुव्रत है। इस व्रतमें अपने भोजन औषधिके उपचार व पूजाके अर्थ किसी भी द्वीन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक त्रस जीवोंको घात करनेका इरादा नहीं करता

[८१ ०४८

है, न इसलिये वचन बोलता है, न कायसे चेष्टा करता है, न दूसरेसे कराता है। और न किसीके ऐसे हिंसामई कार्यकी प्रशंसा करता है

यहां स्थूल शब्द किसी अर्थमें है? इस विषयमें पं० आशाधरजी अपने ग्रन्थ सागारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका नामकी टीकामें लिखते हैं—

स्थूलग्रहणमुपलक्षणं तेन निरपराधसंकल्पपूर्वकहिंसादीनामपि ग्रहणं अपराधकारिषु यथाविधिदंडप्रणेतॄणां चक्रवर्त्यादीनाम् अणुव्रतादि धारणं। पुराणादिषु बहुशः श्रूयमाणं न विरुद्धयते।

स्थूल शब्दसे यहां निरपराधियों पर संकल्प करके हिंसादि करना ग्रहण किया गया है, क्योंकि अपराध करनेवालोंको यथायोग्य दंड देना यह बात चक्रवर्ती आदिकोंके सम्बंधमें पुराणोंमें बहुधा सुननेमें आई है और वे अणुव्रतके धारी थे। इससे दंडादि देनेमें न्यायपूर्वक जो प्रवृत्ति करता है उसका विरोध अणुव्रतधारीके नहीं है। तथा इस व्रतका धारी असि, मसि, कृषि वाणिज्य, शिल्प, विद्या ऐसे षट्कर्मोंका न्यायपूर्वक करनेवाला आरम्भी गृहस्थी श्रावक होता है; इसलिये आरम्भी हिंसाको यह बचा नहीं सकता। जैसा पण्डित आशाधरजी कहते हैं—

गृहवासो विनाऽरंभान्न चारम्भो विना वधात्।
त्याज्यः स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषङ्गिकः॥ १२॥

अर्थ—विना आरम्भके गृहस्थीमें रहना नहीं हो सकता और आरम्भ विना वधके नहीं हो सकता, इसलिये अणुव्रती श्रावकको यत्न करके मुख्य कहिये संकल्पी हिंसाको तो छोड़ना ही चाहिये; क्योंकि व्यापारिक हिंसाका त्यागना तो कठिनतासे होने योग्य है।

मुख्य—इमं जंतुम् आसाद्य अर्थित्वेन हंमि इति संकल्पप्रभवः।

अर्थात् इस जीवको प्राप्त होकर अपने अर्थके कारणसे मार डालूं, इस संकल्पसे होनेवाली हिंसा।

अनुषङ्गिकः कृष्यादि अनुषंगे जातः-

अर्थात्-कृषि आदि कार्योंके प्रयोगमें होनेवाली हिंसा। श्री सुभाषित रत्नसन्दोहमें श्री अमितगति लिखते हैं—

भेषजातिथिमन्त्रादिनिमित्तेनापि नाङ्गिनः।
प्रथमाणुव्रताशक्तैर्हिंसनीयाः कदाचनः ॥ ७६७ ॥

अर्थात्-प्रथम अणुव्रतके पालनेवालोंको उचित है कि दवाई, अतिथि-सत्कार (मिहमानोंकी दावत) तथा मन्त्र वगैरहके लिये भी त्रस प्राणियोंका घात कभी न करे।

श्री भरत चक्रवर्ती देशव्रती थे। यह बात नीचेके श्री आदि-पुराणजीके श्लोकसे प्रगट होगीः—

त्रिज्ञाननेत्रसम्यक्त्वशुद्धिभाग्देशसंयतः।
स्रष्टारमभिवन्द्यायात् कैलासात् नगरोत्तमम् ॥ ३९१ ॥
॥ पर्व ४७ ॥

अर्थ— तीन ज्ञानरूपी नेत्र करके तथा सम्यक्तकी शुद्धता करके सहित देशसंयमी श्री भरतजी, श्री आदिनाथ स्वामी ब्रह्माको नमस्कार करके कैलाशसे अपने उत्तम नगरको आये।

सारांश यह है कि प्रथम अणुव्रतीके हृदयमें तो करुणा बुद्धि ऐसी होनी चाहिये कि वह स्थावर एकेन्द्री जीव और त्रस द्वीन्द्रियादि सबकी रक्षा चाहे तथा प्रवृत्तिमें खानपानादि व्यवहारके लिये जितनी जरूरत हो उतनी ही स्थावर कायकी विराधना करे। जरूरतसे ज्यादा व्यर्थ पृथ्वी, जल अग्नि, वायु तथा वनस्पती कायिककी हिंसा न करे और त्रस जीवोंकी हिंसा खानपानादि व्यवहार व औषधि, मन्त्र तन्त्र, पूजा अर्चा, अतिथिका आदर आदि कार्योंके निमित्त जान बूझकर कदापि न करे। एकेन्द्रीकी भी जरूरतसे अधिक हिंसा न करे ऐसा उपदेश श्री अमृतचन्द सूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें दिया हैः—

स्तोकैकेन्द्रियघाताद् गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणाम्।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम् ॥ ७७ ॥

व्यापारादि आरम्भ कार्योंमें प्रवर्तन करते हुए यह त्रस हिंसाका बचाव नहीं कर सकता है, यद्यपि व्यर्थ और अन्यायपूर्वक त्रस हिंसा कदापि नहीं करता। तीन वर्णके श्रावकोंको अपनी २ पदवीके योग्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प तथा विद्या* इन छह कर्मोंके द्वारा आजीविका जबतक आरम्भ त्याग नाम श्रावकके आठवें दरजेमें न पहुँचे तबतक थोड़ी या बहुत अपनी २ स्थितिके अनुसार करनी पड़ती है, तौ भी दयावान श्रावक जहांतक बने बहुत विचार पूर्वक वर्तन करता है। उसके अन्तरंगमें तो यही श्रद्धा रहती है कि मुझे जीव हिंसा न करनी पड़े तो ठीक है, परन्तु प्रत्याख्यानावरणी कषायके उदय करके गृह कार्य्य आजीविका आदि त्यागनेको असमर्थ होता है। इससे लाचारीवश आरम्भ जनित हिंसा छोड़ नहीं सकता परन्तु यथासम्भव ऐसी हिंसासे बचनेकी चेष्टा करता रहता है तथा यथा संभव ऐसे आरम्भ बचाता है, जिनमें बहुत त्रस जीवोंका घात हो। क्षत्री, वैश्य और शूद्र हर एक वर्णवाला इस व्रतको पाल सकता है।

अहिंसा अणुव्रतके ५ अतीचारः—

इस अहिंसा व्रतको निर्दोष पालनेके अर्थ इसके ५ अतीचारोंको भी त्यागना चाहिये।

बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५-७ अ० ॥
(उमास्वामी)

मुञ्चन् बन्धं वधच्छेदमतिभारोधिरोपणं।
रोधं च दुर्भावाद् भावनाभिस्तदा विशेत् ॥ १५ ॥
(आशाधर)

---

* इनमेंसे असि कहिये शस्त्रद्वारा रक्षाके कार्य्यद्वारा क्षत्री, मसि, कृषि, वाणिज्यसे वैश्य और शेष दोसे शूद्र आजीविका करता है।

१-रस्सी आदिसे बांधना, २-लाठी, चाबुक आदिसे मारना, ३-अंग व उपांग छेदना, ४-पशु व मनुष्योंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझेका लादना, अपने आधीन स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर, पशु आदिकोंका अन्नपान रोक देना, समय टालकर देना व कम देना-ये पांच अतीचार प्रथम अणुव्रतके हैं।

प्रश्न—गृहस्थी जब प्रजाकी व पुत्रोंकी रक्षा करता है अथवा पुत्रोंकी शिक्षाके अर्थ दण्ड देता है तथा अपने काम योग्य पशुओंके परिग्रहको रखता है तब ऊपर लिखित दोषोंसे कैसे बच सकता है?

उत्तर—इसी शंकाके निवारणके लिये पंडित आशाधरजीने दुर्भावात् हेतु दिया है, जिसका खुलासा नीचे लिखे अनुसार संस्कृतमें पंडितजीने किया है—

दुर्भावात्—दुर्भावं दुष्परिणामं प्रबलकषायोदयलक्षणम् आश्रित्य क्रियमाणो यो बन्धस्तद्वर्जनम्। अयं विधिः बन्धो द्विपदानां चतुष्पदानां वा स्यात्। सोऽपि सार्थकोऽनर्थको वा? तत्र अनर्थकस्तावत् श्रावकस्य कर्तुं न युज्यते। सार्थकः पुनः द्वेधा—सापेक्षो निरपेक्षः। तत्र सापेक्षो यो दामग्रन्थादिना शिथिलेन चतुष्पदानां विधीयते यश्च प्रदीपनादिषु मोचयितुं छेत्तुं वा शक्यते। निरपेक्षो यन्निश्चलम् अत्यर्थम् अमी बध्यन्ते। द्विपदानां दासदासीचोरपाठादिप्रमत्तपुत्रादीनां यदि बन्धो विधीयते तदा स विक्रमणा एव अमी बन्धनीया रक्षणीयाश्च यथा अग्निभयादिषु एव न विनश्यन्ते।

अर्थ—दुर्भाव याने खोटे परिणाम जो प्रबल कषायके उदयसे होते हैं ऐसे परिणामोंके द्वारा किया हुआ बन्धन सो नहीं करना योग्य है। उसकी विधि यह है—

द्विपद कहिये मनुष्य और चतुष्पद कहिये गाय, घोड़ा, पशु इनका बन्धन जो होता है सो दो प्रकारसे होता है। पहला सार्थक याने मतलबसे, दूसरा निरर्थक याने बे मतलब। सो

अनर्थक बन्धन तो श्रावकको करना उचित नहीं है और सार्थक बन्धन दो प्रकारका है। पहला सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष।

सापेक्षसे मतलब यह है कि (उनकी रक्षाकी अपेक्षा करके) चार पैरवाले पशुओंको ढीला रस्सी आदिसे इस तरह बांधना कि वे अग्नि आदि भय व उपद्रवके पड़नेपर उस बन्धनको खुद छुड़ा सकें व उसको छेद सकें।

निरपेक्ष बन्धन यह है कि (रक्षाकी गरज न रखके) अत्यन्त दृढ़ बांध देना, सो न करना चाहिये। तैसे ही, दास, दासी, चोर व पढ़ने आदिके आलसी पुत्र शिष्यादिको यदि दण्ड देनेकी गरजसे बन्धन किया जावे तो इस तरह होना चाहिये कि वे चल फिर सकें तथा उनकी रक्षा करनी चाहिये, ताकि अग्नि आदिके भयोंसे उनको हानि न पहुँचे। इसके सिवाय यदि तीव्र क्रोधादि करके अर्थात् अन्तरङ्ग हिंसा-भाव करके किसीको बांधा जायगा तो अतीचार होगा, क्योंकि बाह्यमें वह उसका प्राण लेना नहीं चाहता है।

अतीचार एक देशव्रतके भंगको कहते हैं। इसी विषयमें पंडित आशाधरजी कहते हैं—

"व्रतं द्विविधं अन्तर्वृत्त्या बहिर्वृत्त्या च। तत्र मारयामि इति विकल्पाऽभावेन यदा कोपाद्यावेशात् परप्राणप्रहरणम् अवगणयन् बन्धादौ प्रवर्तते न च हिंसा भवति, तदा निर्दयतः विरत्यनपेक्षतया प्रवृत्तत्वेन अन्तर्वृत्त्या व्रतस्य भंगो हिंसायाः अभावात् बहिर्वृत्या च पालनम्। देशस्य भञ्जनात् देशस्यैव पालनात् अतिचारः व्यपदिश्यते।"

अर्थ—व्रत दो तरहसे होता है-एक अन्तरंग और दूसरा बाह्य। जब मैं मार डालूं इस विकल्पके विना केवल क्रोधादि कषायोंके वेगसे दूसरेके प्राणोंकी पीड़ाको गिनता हुआ दूसरोंके साथ वधादिकी प्रवृत्ति करता है, तब उनकी हिंसा तो नहीं होती

है, परन्तु उसके परिणाम निर्दयतासे अलग नहीं हैं। इसलिये अन्तरंगके भंगसे तो व्रतका भंग हुआ, परन्तु बाह्यमें हिंसा नहीं हुई, इससे बाह्य व्रतका पालन हुआ। इसलिये एकदेश व्रतका त्याग और एकदेश व्रतका पालन इसीको अतीचार कहते हैं।

ऊपर लिखी चरचाके अनुसार तीव्र कषाय सहित हो करके जब किसीको लाठी, चाबुक आदिसे मारा जायगा व अंग उपंगादि छेदे जायगे व अति बोझा लादा जायगा व अन्नपान रोका जायगा, तब हिंसामें अतीचार लगेगा। परन्तु जो प्रयोजनार्थ शिक्षाके अर्थ किसीको ताड़ना की जाय व छेदन किया (जैसे डाक्टर चीरा देता है) व अति बोझा लादा जाय, अन्नपान कुछ कालके लिये रोका जाय, तो अतीचार नहीं लगेगा। क्योंकि वह अन्तरङ्गमें उसकी ओर दया भाव रखता है। जैसे शिष्योंको साधारण थप्पड़ मारना व उनके ऊपर तख्ती लादनी व एक किसी खास भोजनकी मनाई कर देनी आदि।

नोट—आजकल यह देखा जाता है कि तीव्र लोभ कषायके वश व्यापारीगण पशुओंके अंगोपांग छेदते, अधिक बोझा लादते व खानपान रोक रखते व जब चलनेमें ढील करते तब जोरसे लाठी चाबुक मारते व कसकर बांध देते हैं इत्यादि यह प्रवृत्ति पशुओंको दुखदाई है। इसलिये इनकी बन्दी होनी चाहिये तथा अध्यापक लोग बहुधा बड़ी निर्दयताके साथ शिष्योंको बेत मार देते हैं जिससे उनको बड़ी वेदना हो जाती है। इससे यह उचित है कि स्कूलों और पाठशालाओंसे बेतकी मारको बन्द कर दिया जावे। दयापूर्वक योग्य दण्ड देनेमें कोई हर्ज नहीं है।

बैल घोड़े आदिकोंकी इन्द्रिय छेदनेकी जो प्रवृत्ति है क्या इसको बन्द कर उनसे काम नहीं लिया जा सकता? इस बातपर पाठकगणोंको ध्यान देना चाहिये। यदि कोई वीर पुरुष उद्यम करके इस प्रवृत्तिको बन्द कर देंगे तो कोटानुकोट पशुओंके दयापात्र होंगे।

हमको ध्यान रखना योग्य है कि इक्का, वग्गी, वैलगाडी आदि पर उतने ही आदमी बैठें जितनी कि सरकारी आज्ञा है। विचारे मूक पशु कुछ मुखसे कह नहीं सकते और हमारी वेखबरीसे उनको अधिक वोझा घसीटना पडता है, जिससे उनके अंतरंग परिणाम संक्लेशित होते हैं और हांकनेवालेके द्वारा वृथा मार सहनी पडती है।

२–सत्य अणुव्रत।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥

—र० श्रा०।

अर्थ—जो स्थूल झूठ नहीं बोलता है, न दूसरेसे वुलवाता है तथा जिससे किसीपर विपति आ जाय ऐसे सत्यको भी नहीं बोलता है-उसका नाम स्थूलमृषावादवैरमण-नाम व्रत है, ऐसा संतपुरुष कहते हैं।

क्रोध,-लोभमदरागद्वेषमोहादिकारणैः।
असत्यस्य परित्यागः सत्याणुव्रतमुच्यते ॥ ७६९ ॥

—अमितगति।

अर्थ—क्रोध, लोभ, मद, राग, द्वेष, मोह आदि कारणोंसे झूठ बोलनेका जो त्याग करना उसको सत्याणुव्रत कहते हैं।

श्री उमास्वामीजीने कहा है—

प्रमत्तयोगादसदभिधानमनृतम्। —१४-७ अ०।

अर्थात् प्रमाद सहित याने कषाय सहित मन, वचन, काय योगोंके द्वारा जो असत्य कहना सो अनृत है।

यह अनृत वचन चार प्रकारका है। (अमृतचन्द्र, पुरु०)

१–जो चेतन व अचेतन पदार्थ हो उसको कहना कि नहीं है। जैसे किसीने पूछा कि क्या देवदत्त है? उसको कहना कि नहीं है, यद्यपि देवदत्त मौजूद है।

२-जो चेतन व अचेतन पदार्थ न हो उसको कहना कि है; जैसे किसीने पूछा कि क्या यहाँ घड़ा है? तो उसको यह उत्तर देना कि 'है'। यद्यपि वस्तु मौजूद नहीं है।

३-जो चेतन व अचेतन पदार्थ जैसा हो उसको वैसा न कहकर और रूप कहना। जैसे किसीने पूछा कि क्या यहाँ देवदत्त है? तो देवदत्त होते हुए भी यह कहना कि यहाँ देवदत्त नहीं है, किन्तु रामसिंह है अथवा धर्मका स्वरूप हिंसामई कहना।

४-गर्हित, सावद्य और अप्रिय वचन कहना, दुष्टता हँसी करनेवाले वचन, कठोर वचन तथा अमर्यादित वचन व बहुत प्रलाप याने बकवादरूप वचन कहना सो गर्हित है। छेदन, भेदन, ताडन, मारण, कर्षण; वाणिज्य तथा चोरी आदिके पापरूप वचन कहना सो गर्हित है। छेदन, भेदन, ताडन, मारण, कर्षण, वाणिज्य तथा चोरी आदिके पापरूप वचन कहना, सो सावद्य वचन है। अरति पैदा करनेवाले, भय देनेवाले, खेद करनेवाले, वैर शोक तथा कलह कहिये लड़ाई करानेवाले तथा सन्ताप पैदा करनेवाले वचनोंको कहना सो अप्रिय वचन है।

इन चार प्रकारके असत्योंमेंसे केवल भोग और उपभोगकी सामग्रीकी प्राप्ति व उनके उपायोंके लिये सावद्य कहिये पापरूप वचनोंके सिवाय और समस्त असत्यको त्यागना योग्य है। आरंभ कार्योंके लिये जो वचन कहा जाता है वह भी सावद्य नामका असत्य है, परन्तु आरम्भी गृहस्थी इस तरहके असत्यको त्यागनेसे लाचार है। सत्य अणुव्रतीको योग्य है कि वचन बहुत सम्हालके बोले; कड़वे, कठोर, मर्म छेदनेवाले आदि अविनय करनेवाले तथा अभिमान बढ़ानेवाले वचनोंको यद्यपि वे सत्य भी हों तब भी न कहे। जिन सत्य वचनोंसे दूसरे पर भारी आपत्ति आ जाय व प्राण चले जांय ऐसे सत्य वचनको भी नहीं बोले। व्यापारादिमें वस्तुकी लागत झूठ न बतावे, उचित नफा जोड़कर दाम लेवे,

खोटी वस्तुको खरी न कहे। सत्य बोलनेवाला गृहस्थी अपना विश्वास जमाता है तथा थोड़ीसी बातचीतमें अपना मतलब सिद्ध कर सकता है।

यह अवश्य याद रखना चाहिये कि जिस वचनके कहनेमें अंतरंगमें प्रमत्तभाव अर्थात् कषाय भाव हों उसीको असत्य भाव कहते हैं। प्रमत्तयोगरहित जो वचन हैं सो असत्य नहीं हैं।

सत्य वचन बोलनेवाले अणुव्रतीको ५ अतीचार याने दोष बचाने चाहिये।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः॥
(उमास्वामी-तत्त्वार्थसूत्र)

अर्थ—१-प्रमादसे सत्य धर्मसे विरुद्ध मिथ्या धर्मका उपदेश देना अथवा प्रमादसे परको पीड़ा पहुंचे ऐसा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश है-इसमें अपना कोई अर्थ नहीं है।

२-"स्त्रीपुरुषाभ्यां रहसि-एकान्ते यः क्रियाविशेषः अनुष्ठितः असौ क्रियाविशेषः गुप्तवृत्या गृहीत्वा अन्येषां प्रकाश्यते।"

अर्थात्—स्त्री पुरुष जो एकान्तमें क्रिया कर रहे हों उसको छिप करके जान लेना और फिर दूसरोंको प्रगट कर देना, हास्य व क्रीड़ाके अभिप्रायसे कहना, सो अतीचार है।

३-झूठा लेख पत्रादि व झूठी गवाही दे देना (व्यापारादि कार्यमें कभी ऐसा करना सो अतीचार है) सो कूटलेख क्रिया है।

४-अपने पास कोई अनामत रुपया पैसा व चीज रख गया और पीछे उसने भूलकर कम मांगी तो आप यह कह देना कि इतनी ही आपकी थी सो ले जाइये, यह न्यासापहार अतीचार है। याने न्यास कहिये अमानतका हर लेना।

५-कहीं दो या अधिक आदमी गुप्त रीतिसे कोई मन्त्र याने सलाह कर रहे हों उनको इशारोंसे जानकर उनकी मरजी विना दूसरोंको प्रगट कर देना, अभिप्राय प्रमादका अवश्य है, तो यह साकारमन्त्रभेद नामका अतीचार है।

इन पांचों दोषोंको अवश्य बचाना चाहिये और व्यवहारमें सत्यताका झण्डा गाड़ना चाहिये। जो जीव सत्यतासे व्यापारादि करते व जगतके लोगोंसे व्यवहार करते हैं उनको कभी किसी झगडेमें नहीं फंसना पड़ता और न कचहरियोंमें जानेकी नौबत आती है। सत्य वचनसे ही मनुष्यकी शोभा है। वचनको बोलनेकी शक्ति बड़ी कठिनतासे प्राप्त होती है। इसलिये सत्य वचन कहकर अपने परिणामोंको उज्ज्वल रखना चाहिये। प्रमाद व कषायके वशमें पड़ असत्यवादी नहीं होना चाहिये।

३–अचौर्य अणुव्रत।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृपचौर्यादुपारमणम् ॥ ५७॥
(रत्नकरण्ड-श्रावकाचार)

अर्थ—रक्खा हुआ, गिरा हुआ, भूला हुआ व विना दिया हुआ दूसरेका धन जो नहीं लेता है, न किसीको देता है, सो स्थूल अचौर्यव्रत है।

येऽप्यहिंसादयो धर्मास्तेऽपि नश्यन्ति चौर्यतः।
मत्वेति न त्रिधा ग्राह्यं परद्रव्यं विचक्षणैः॥ ७७६ ॥
अर्थाः बहिश्चराः प्राणाः प्राणिनां येन सर्वथा।
परद्रव्यं ततः सन्तः पश्यन्ति सदृशं मृदा ॥ ७७८ ॥
(अमितगति)

अर्थ—चोरी करनेसे अहिंसा आदिक धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसा जानकर मन, वचन, कायसे चतुर पुरुषोंको दूसरोंके द्रव्यको नहीं चुराना चाहिये। प्राणियोंका बाह्य प्राण धन है, इस-लिये दूसरेका द्रव्य सर्वथा मिट्टीके समान है–ऐसा संतपुरुष देखते हैं।

यह अणुव्रती उन चीजोंको विना दी भी ले सकता है जिन चीजोंकी राजा व पंचायत व किसी समाजकी तरफसे लिये

जानेकी इजाजत है। जैसे हाथ धोनेके लिये मिट्टी व नहाने व पीनेके लिये नदी, तालाब, कुएका जल व इसी किस्मकी और कोई छोटी चीज, जैसे पत्ती, फूल, फल, तिनका, घास वगैरह। अगर इन चीजोंके लिये कहीं मनाई हो तो इनका लेना भी चोरी है। जिस चीजको लेनेपर कोई पकड़ नहीं सकता, न मना कर सकता है ऐसी सर्वसाधारणसे लेने योग्य चीजको लेना सो स्थूल चोरी नहीं है।

इसके पांच अतीचार हैं—

सूत्र—स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ (उमास्वामी तत्वार्थसूत्र)

१-स्तेनप्रयोग—चोरीके लिये प्रेरणा करनी। जिनको मन वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे स्थूल चोरीका त्याग है, उसके लिये तो चोरसे चोरी कराना, व्रतका भंग करना ही होगा। परन्तु यहां अतीचार इसलिये कहा है कि जैसे किसीके पास खानेको नहीं है व गरीब है और उससे कहना कि जो वस्तु तुम लाओगे हम ले लेंगे व बेच देंगे-इसमें एक देश भंग होनेसे अतीचार है। (सागारधर्मामृत)

२-तदाहृतादान—चोरीका लाया हुआ पदार्थ लेना। चोरीका पदार्थ गुप्त रीतिसे ले लेना वह तो चोरी ही है, परन्तु व्यापारार्थ कुछ अल्प मूल्यमें लेना सो तदाहृतादान अतीचार है।

३-विरुद्धराज्यातिक्रम—विरुद्धं विनष्टं विग्रहीतं वा राज्यं छत्रभंगः तत्र अतिक्रमः उचितन्यायात् अन्येन प्रकारेण अर्थस्य दानं ग्रहणम्। (सा०)

अर्थ—कहीं राज्य भ्रष्ट हो गया है व छत्र भंग हो गया है वहां जा करके अमर्यादासे व्यापार करना याने उचित न्याय छोड़कर द्रव्यादिका देना लेना सो विरुद्धराज्यातिक्रम अतीचार है। कोई २ ऐसा अर्थ भी करते हैं कि राजाकी आज्ञाके विरुद्ध महसूल कमती देना।

४-हीनाधिक मानोन्मान—प्रमादसे व्यापारमें कमती बांटोंसे तोलकर देना व बढ़ती बांटोंसे लेना सो अतीचार है।

५-प्रतिरूपक व्यवहार—खरीमें खोटी चीज मिलाकर व्यापार बुद्धसे खरी कहकर वेचना सो चोरीका अतीचार है। जैसे दूधमें पानी, घीमें तेल, सोनेमें तांबा आदि मिलाकर दूध, घी, सोना कहकर वेचना सो अतीचार है।

इसी कार्यमें यदि लोभकी अति आशक्तता होगी तो साक्षात् चोरी ही हो जायगी अथवा खोटे रुपये बनाकर उनसे लेन देन करना जैसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें कहा है—

"ताम्रेण घटिता रूप्येन च सुवर्णेन न घटितास्ताम्ररूप्याभाव-घटिता द्रम्माः (greek) तत् हिरण्यम् उच्यते, तत्सदृशाः केनचित् लोकवंचनार्थं घटिता द्रम्माः प्रतिरूपकाः उच्यते तैः प्रतिरूपकैः असत्यनाणकैः (coins) व्यवहारः क्रयविक्रयः प्रतिरूपकव्यवहारः॥"

तांवे चांदीके बने हुए दिरमको हिरण्य कहते हैं। किसीने लोगोंको ठगनेके लिये इसीके समान दूसरे रुपये बना लिये याने झूठे रुपये बनाकर लेन देन करना सो प्रतिरूपक व्यवहार है।

तीसरे अणुव्रतके धारीको उचित है कि ऊपर लिखे हुए पांचों अतीचार याने दोषोंसे बचे। क्योंकि निर्दोष व्रत पालनेसे इस लोकमें विश्वास व व्यापारको बढ़ायेगा, यशको पायेगा और ऐसा पाप नहीं बांधेगा जिससे अशुभगतिका बन्ध हो और परलोकमें दुःख उठावे।

४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि॥ ५९॥ (रत्न०)

अर्थ—जो न तो पर स्त्रियोंसे काम भोग करता है और न दूसरोंको करता है उसके परदारानिवृत्ति अथवा स्वस्त्री संतोष व्रत होता है।

मातृ स्वसृ सुता तुल्या निरीक्ष्य परयोषितः।
स्वकलत्रेण यतस्तोषश्चतुर्थं तदणुव्रतम् ॥ ७७८ ॥
यार्गला स्वर्गमार्गस्य सरणिः श्वभ्रसद्मनि।
कृष्णाहिदृष्टिवद्द्रोही दुःस्पर्शाग्निशिखेव या ॥ ७७९ ॥
(अमितिगति)

अर्थ—पर स्त्रियोंको माता, बहन व पुत्रीके समान देखके अपनी स्त्रीसे ही सन्तोषित रहना सो चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

यह परस्त्री स्वर्गके मार्गमें आड़ है, नरक महलमें ले जानेको सखी है, काले सांपकी दृष्टिके समान बुरा करनेवाली है तथा नहीं छूनेयोग्य अग्निकी शिखा है। पुरुषोंको अपनी विवाहिता स्त्रीमें और स्त्रीको अपने विवाहित पतिमें ही सन्तोष रखना चाहिये।

गाथा—पव्वेसु इच्छि सेवा अणंगकीडा सदा विवज्जंतो।
थूलयडब्रह्मचारी जिणेहिं भणिदो पवयणम्हि॥
(स्वा० टीका)

पर्वमें स्वस्त्रीकी सेवा तथा अनंगक्रीड़ा भूलकर भी ब्रह्मचारी नहीं करता है। ऐसा जिनेन्द्रने प्रवचनमें कहा है—१ मासमें २ अष्टमी और २ चौदस पर्वी हैं। इसके सिवाय तीन अष्टाह्निका और दशलक्षणीके १० दिन भी पर्वोमें गिनकर शीलव्रत पालना चाहिये। इस व्रतके भी पांच अतीचार बचाना चाहिये।

सूत्र—परविवाहकरणेत्वरिकापरिग्रहीतापरिग्रहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः॥ (उमा०)

१-"परविवाहकरणं स्वपुत्रपुत्र्यादीन् वर्जयित्वा अन्येषां गोत्रिणां मित्रस्वजनपरजनानां विवाहकरणं॥" (स्वा०)

अर्थ—अपने पुत्र पुत्री आदि (घरके भीतरके लड़के लड़की) के सिवाय अन्य गोत्रवाले मित्र रिश्तेदार आदिकोंके विवाहोंका करना।

२-इत्वारिका परिग्रहीता गमन—अन्यकी परणी हुई स्त्री जो

व्यभिचारिणी हो उससे सम्बन्ध रखना, याने लेनदेन, बोलने, बैठने आदिके व्यवहार करना।

३-इत्वरिका अपरिग्रहीता गमन—बिना परणी हुई स्त्री जैसे कन्या, दासी, वेश्या आदिसे सम्बन्ध रखना।

गमनं—जघनस्तन व दंतानिरीक्षणं संभाषण हस्तभ्रूकटाक्षादिसंज्ञाविधानं इत्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनं इत्युच्यते।

अर्थ—परस्त्री व वेश्यादिके जघन, स्तन व दांत आदि अंगोंका देखना, प्रेमपूर्वक बातचीत करना, हाथ भोंके कटाक्ष वगैरहसे संकेत करना उसको गमन कहते हैं।

४-अनंगक्रीड़ा—अपनी स्त्री ही के साथ व अन्य किसी पुरुष व नपुंसकको स्त्रीके समान मानके कामसेवनके अंगोंको छोड़कर अन्य अंगोंसे काम चेष्टा करनी।

५-कामतीव्राभिनिवेश—कामकी तीव्रता रखना अर्थात् अपनी स्त्रीके साथ भी अत्यन्त तृष्णामें होकर कामसेवन करना, और तृप्तता न पाना।

नोट—वास्तवमें जब स्त्री रजस्वला हो उसके पीछे ही पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे गर्भाधानादि क्रिया करनी चाहिये। शेष दिनोंमें सन्तोषित रहना चाहिये।

ब्रह्मचर्यव्रत शरीरकी रक्षा व आत्मिक उन्नतिका साधक है, क्योंकि शरीरमें वीर्य अपूर्व रत्न है। इसकी यथासम्भव रक्षा करनी अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री सेवनके मात्र करनेहीसे वीर्यरूपी रत्न मलीन हो जाता है।

५-परिग्रह प्रमाण।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥ ६१ ॥ (रत्न०)

अर्थ—धन धान्यादि ग्रन्थोंका प्रमाण करके उससे अधिकमें अपनी इच्छाको रोकना उसको परिमित परिग्रह अथवा इच्छा परिणाम नाम पांचवां अणुव्रत कहते हैं।

परिग्रह १० प्रकारका होता है:—

१. क्षेत्र-धान्योत्पत्तिस्थानं—धान्यके पैदा होनेकी जगह।

२. वास्तु-गृहहट्टऽपवरादिकं—घर, दूकान, कोठी व धान्य भरनेकी जगह।

३ हिरण्य-रूप्यताम्रादिघटितद्रव्यव्यवहारप्रवर्तितं। चांदी, तांबे, सोने आदिके बने हुए सिक्के जिनका व्यवहार होता है।

४. सुवर्ण-कनक—सोना।

५ धन-गोमहिषीगजवाजिवड़वोऽष्ट्रऽजादिकं—गाय, भैंस, हाथी, घोड़े, ऊँट, बकरे आदि।

६. धान्य-अष्टादश भेदं—अनाज १८ प्रकार है। १-गोधूम (गेहूँ), २-शालि (चाँवल), ३-यव, ४-सर्षप (सरसों), ५-माष (उड़द). ६-मुद्ग (मूँग), ७-श्यामक, ८-कंगु, ९ तिल, १०-कोद्रव, ११-राजमाषा, १२-कीनाश, १३-ताल, १४-मथवैणव, १५-माढ़कीच, १६-सिंबा, १७-कुलथ, १८-चणकादि सुबीज धान।

७. दासी—स्त्री सेविकाएँ।

८. दास-पुरुष सेवक।

९. भाण्ड—गृहस्थीमें वर्तने योग्य वर्तन।

१०. कुप्य—वस्त्र नानाप्रकारके।

गृहस्थीको योग्य है कि इन १० प्रकारके परिग्रहोंका जन्मभरके लिये प्रमाण कर लेवे। छोटा व बड़ा, राजा और रंक अपनी अपनी हैसियत व आवश्यकताके अनुसार प्रमाण करे कि अपने पास किसी भी काल इतनी वस्तुओंसे अधिक न रक्खूंगा। जैसे प्रमाण करना कि ५ खेत इतने बीघेके व इतने मकान व इतना रुपया व इतना सोना रत्न व इतनी गाय, भैंसे, घोड़े आदि व इतना अनाज घरमें खाने योग्य (जैसे १ मासके खर्चसे अधिक नहीं) व इतनी दासी व दास इतने गिनतीके व इतने तौलके वर्तन व अपने पहननेके इतने कपड़े।

एक कुटुंबी जब कई मनुष्योंके साथ रहता है और उसीका पूरा अधिकार है तब वह कुटुंबभरकी वस्तुओंका आप प्रमाण करता है, फिर उससे अधिक कुटुंबमें नहीं आने देता। यदि कुटुम्बमें भाई व पुत्र ऐसे हैं कि जो अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्तनेवाले नहीं हैं तो उनसे सलाह करके प्रमाण करे। यदि परस्पर सम्मति न हो सके तब अपनी इच्छानुसार प्रमाण करें और यह विचार कर ले कि जब इतना धन आदि परिग्रह हो जायगा तब यह भाई व पुत्र और अधिक बढ़ानेकी इच्छा करेंगे तो मैं अपने सम्बन्धी खास परिग्रहको जुदा कर लूँगा और शेपमें ममत्व त्याग दूंगा। अथवा यों भी प्रमाण कर सकता है कि मैं अपने खास काममें इतने २ परिग्रहको ही लेऊँगा। ऐसा प्रमाण करनेसे शेषसे उसका ममत्व भी न रहेगा और न वह उनका प्रबन्ध कर अपने काममें ले सकता है। ऐसी हालतमें सन्तोष वृत्ति रखनेको अपने हकके परिग्रहको जुदा ही कर लेना मुनासिब है।

यह व्रत अधिक तृष्णा व लोभके त्यागके लिये किया जाता है, ताकि ऐसा न हो कि तृष्णाके पीछे धनके बढ़ानेमें ही अपना जन्म बिता देवे और सन्तोष करके कभी पारमार्थिक सुखके भोगका विशेष उद्यम न करे। इस व्रतका यह मतलब भी नहीं है कि किसी जीवको निरुद्यमी किया जावे। यहां यह प्रयोजन है कि जहांतक उसकी इच्छा रुके वहांतक प्रमाण कर ले, आगेकी तृष्णा न करे। बिना सन्तोषके जीवको साता नहीं आती। जो केवल अप्रमाण धन बढ़ाते ही जाते हैं और कभी सन्तोष नहीं करते उनको जीवनभर सुख नहीं होता, वरन् वे अन्तकाल मरणके समय अत्यन्त तृष्णासे मरकर पशु व नरकगतिके भागी होते हैं, उन्हें संकटकी मृत्यु मरना है न कि शांतिकी। क्योंकि यह हमारा जीवन इस मनुष्य पर्यायमें थोड़े कालके लिये है और धनादि परिग्रह केवल इस पर्यायहीको सहाई है। अतएव उनका प्रमाण कर लिया जावे तो तृष्णा अपने वशमें रहे और जब इच्छानुसार

धन हो जावे फिर निश्चित हो सन्तोष पूर्वक रहे, धर्म ध्यानहीमें शेष जीवन वितावे।

कोई २ ऐसा प्रमाण करते हैं कि अमुक धनसे अधिक जितना पैदा करेंगे सब धर्मकार्यमें लगावेंगे। जैसे किसीने ५ लाखका प्रमाण किया और जब अधिक पैदा होने लगा तो धर्मकार्यमें लगाने लगा-यह भी एक प्रकारसे कुछ तृष्णाका प्रमाण है, परन्तु यह व्रत इसको कमानेकी तृष्णासे कभी छुट्टी नहीं लेने देगा। इसलिये पञ्चमव्रतीको ऊपर लिखे अनुसार प्रमाण करना उचित है, क्योंकि प्रयोजन सन्तोष प्राप्त करनेका है।

सन्तोषाश्लिष्टचित्तस्य यत्सुखं शाश्वतं शुभम्।
कुतस्तृष्णागृहीतस्य तस्य लेशोऽपि विद्यते ॥ ७८९ ॥
यावत्परिग्रहं लाति तावद्धिंसोपजायते।
विज्ञायेति विधातव्यः सङ्गः परिमितो बुधैः ॥ ७९० ॥
(अमितगति)

अर्थ—संतोषसे भीगे हुए चित्तको जो शुभ और अविनाशी सुख प्राप्त होता है उसका लेशमात्र भी सुख तृष्णासे जकड़े हुए जीवको कहांसे होसकता है? जबतक परिग्रहको रक्खेगा तबतक हिंसा उत्पन्न होगी, ऐसा जानकर बुद्धिमानोंको परिग्रहका परिमाण करना योग्य है।

इस व्रतके भी ५ अतीचार हैं:—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः।
(उमास्वामी)

इन १० प्रकारके परिग्रहमें दो दो का एक जोड़ करके परस्पर एकके प्रमाणको घटाकर दूसरा बढ़ा लेना सो अतीचार है। जैसे क्षेत्र था १० बीघा और मकान थे ४, अब जरूरत देखके १ बीघा क्षेत्र कम करके मकानको बढ़ा ले व क्षेत्रकी पैदावार ज्यादा जानके एक मकान तुड़वाके क्षेत्रमें जमीन मिला दे। अथवा

रुपया १००००) रक्खा, सोना १०० तोला रक्खा और तब सोनेका भाव घटता देखकर रुपयोंसे सोना खरीदकर बढ़ा लेवे व सोनेका भाव बढ़ा जानकर सोना बेचकर रुपया बढ़ा ले अथवा गाय भैंसादिमें कमी कर बदलेमें धान्य विशेष जमा करले कि फिर मंहगा हो जायगा अथवा धान्यके स्थानमें एक व दो गाय भैंस बढ़ा ले व गायका बच्चा हुआ उसको न गिने व कुप्य भांडने कपडोंको बेचकर बर्तन बढ़ा लेना व बर्तनोंकी संख्या कम कर कपड़ोंको संख्या बढ़ा लेना-इस तरह ये पांच अतीचार हैं।

देशव्रतीको उचित है कि अपने परिणामोंकी उज्वलताके लिये इस व्रतको निर्दोष पालकर अपनी आत्मोन्नतिमें पद पद पर बढ़ता जावे।

व्रत प्रतिमावाला इन उपर्युक्त व्रतोंको अतीचार रहित पालता है। प्रयत्न अतीचार रहितका ही करता है! यदि कोई अतीचार लगे तो प्रतिक्रमण करता है व प्रायश्चित्त लेता है। इनके सिवाय नीचे लिखे सात शील भी पालता है! इनमें तीन गुणव्रत शिक्षारूप अभ्यास करनेयोग्य हैं।

प्रथम गुणव्रत दिग्व्रत।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै॥ ६८॥ (रत्न०)

अर्थ—दशों दिशाओंमें प्रमाण करके यह प्रतिज्ञा करे कि इसके बाहर मैं नहीं जाऊंगा-इस प्रकारका संकल्प करना उसे दिग्व्रत कहते हैं यह व्रत मरणपर्यन्त उस क्षेत्रके बाहर पापोंको छोड़नेके अर्थ है।

सांसारिक, व्यापारिक व व्यवहारिक कार्यके लिये जन्मपर्यन्त दशों दिशाओंमें जानेकी। ऐसे ही अन्य रीतिसे पत्रादि द्वारा व्यवहार करनेकी जो प्रतिज्ञा लेनी उसे दिग्व्रत कहते हैं। तीर्थयात्रा

व धर्म सम्बन्धी कार्यके लिये मर्यादा नहीं होती है। जैसा ज्ञानानंद श्रावकाचारमें कहा–"क्षेत्रका प्रमाण सावद्य योगके अर्थ करे, धर्मके अर्थ नहीं करे। धर्मके अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाहीं।"

गृहस्थीको अपनी तृष्णाको रोकनेके लिये यह व्रत करना चाहिये। जहांतक उसको व्यापारादि करना हो वहां तककी अपनी इच्छानुसार हद बांध ले। फिर उस हदके बाहरके लिये चाह न करे। जैसे किसीको भारतवर्षके सिवाय अन्य यूरोपीय आदि देशोंमें भी व्यवहार करना है तो जहांतक आवश्यकता हो वहां-तक रख ले, शेषका त्याग करे। चार दिशा, चार विदिशामें व ऊपर व नीचे १० दिशाओंमें कोस व मीलोंके प्रमाणसे व प्रसिद्ध स्थान जैसे नदी पर्वत आदिकी हद कायम करता हुआ प्रतिज्ञा ले ले। जैसे यह प्रतिज्ञा लेवे कि ८ दिशाओंमें हरएकमें १००० कोसकी तथा ऊपर नीचे पांच पांच कोसकी हद रक्खो अथवा यों प्रमाण करे कि पूर्वमें अमुक नदी, पश्चिममें अमुक पहाड़, दक्षिणमें अमुक नगर; उत्तरमें अमुक पहाड़ी–ऐसे ही विदिशा व ऊपर नीचेका प्रमाण करे। जिस जगह जो जमीनकी सतह हो उससे यदि किसी पर्वतपर चढ़े तो यदि पांच कोसकी मर्यादा है तो उतना ही जावे। वैसे ही उससे नीचे किसी स्थान व खंदकमें जितनी मर्यादा हो उससे अधिक न जावे।

इस दिग्व्रतसे बड़ा भारी लाभ यह होता है कि जहांतक हद रख ली है उसके आगे जाने आने लेनदेन करनेका त्याग होनेसे इच्छा रुक जाती है, लोभादि कषाय घटते हैं। कषाय घटानेसे ही इस जीवका भला है।

इस व्रतके भी पांच अतीचार हैं:—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि।

(उमास्वामी)

१–ऊर्ध्वव्यतिक्रम—ऊपर जानेका जो प्रमाण किया हो

उसको विना विचारे भूलसे उल्लंघन कर जाय याने हदसे ज्यादा चला जाय।

(अनाभोग व्यतिक्रमादिभिः अतीचाराः) (सा० धर्मा०)

२-अधः व्यतिक्रम—नीचे जानेका जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर ज्यादा चला जाय।

(ऊपरके समान)

३-तिर्यक् व्यतिक्रम—८ दिशाओंमें जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर अधिक चला जाय।

(ऊपरके समान)

४-क्षेत्र—"वृद्धि व्यासंग मोह प्रमादादिवशेन लोभावेशात् योजनादि परिच्छन्न दिक् संख्यायाः अधिकांक्षणं क्षेत्रवृद्धिरुच्यते यथा मान्याखेटावस्थितेन केनचित् श्रावकेन क्षेत्रपरिमाणं यत् धारापुरी लंघनं मया न कर्तव्यं इति पश्चात् उज्जयिन्यां अनेन भांडेन महान लाभो भवति तत्र गमनाकांक्षा गमनं च क्षेत्रवृद्धिः। दक्षिणा यथा गतस्य धाराया उज्जयिनी पंचविंशतिगव्यूतिभिः किंचिन्न्यूनाधिकाभिः परतो वर्तते॥" (स्वा० सं० टीका)

भावार्थ—मोह प्रमादिके वशसे व लोभके वशमें आकर जितने योजनका प्रमाण जिस दिशाका किया हो उसको बढ़ा लेना सो क्षेत्रवृद्धि है। जैसे मान्यखेट निवासी किसी श्रावकने यह परिमाण किया कि मैं धारापुरीको लांघकर नहीं जाऊंगा, परन्तु पीछे उज्जैनीमें महान लाभ होता जान वहां जानेकी इच्छा करनी व चला जाना सो क्षेत्रवृद्धि है। दक्षिण मार्गसे जानेवालेके लिये धारापुरीसे उज्जैनी २५ कोससे कुछ कम व अधिक आगे है।

नोट—ऐसे बढ़ानेवालेके यह अभिप्राय रहता है कि एक तरफ बढ़ा लो, दूसरी तरफ घटा देंगे—सो यह अतीचार है।

५-स्मृत्यन्तराधान—जो मर्यादा ली हो उसको स्मरण न रखना। इसका अतीचार इस तरह होगा कि जैसे किसीने १००

कोसकी मर्यादा ली थी अब वह उस ओर गया और जाते २ याद न रहनेसे शंका आ गई कि मर्यादा १०० कोसकी थी कि या ५० की। ऐसी दशामें यदि ५० से आगे गया तो अतीचार हो जायगा।

व्रती श्रावकको उचित है कि इस व्रतको भली प्रकार पाले।

दूसरा गुणव्रत अनर्थदण्ड त्याग।

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं च विदुर्व्रतधराग्रण्यः॥ ७४॥ (रत्नक०)

अर्थ—जो दिशाओंकी मर्यादा की होय उसके भीतर बेमतलब पापरूप मन, वचन, कायकी क्रियाओंसे विरक्त रहना सो अनर्थदण्ड त्यागव्रत है-ऐसा महामुनियोंने कहा है।

जिसमें अपना कोई भी कार्य्य न सधै ऐसे पापोंका करना सो अनर्थदण्ड है।

यह पांच प्रकारका होता है—

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः॥ ७५॥ (रत्नक०)

अर्थ—पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति तथा प्रमादचर्य्या-ऐसे ये पांच भेद मुनियोंने कहे हैं।

१-पापोपदेश—दूसरोंको पापमें प्रवर्त्तनेका उपदेश देना। जैसे वनके दाह करनेका, पशुओंके वाणिज्यका शस्त्रादिके व्यापारका इत्यादि अन्य जीवोंको कष्ट पहुंचे ऐसे कार्योंके करनेका अथवा हिंसामई व्यापारोंका उपदेश दूसरोंको देना। जैसे किसी शिकारीसे कहना कि "अरे तू क्यों सुस्त बैठा है, देख इधरसे हिरण भागते गये हैं अथवा अमुक देशसे घोड़े आदिको पकड़ कर अमुक देशमें बेचा जाय तो बहुत धनकी प्राप्ति हो।" इत्यादि। यदि यह न कहता तो यह हिंसामई कार्यमें न प्रवर्त्तता और कुछ भी काम

करता; परन्तु इसके कहनेसे वह अधिक हिंसाके कामोंमें प्रवर्तन करने लगा और इसका इस कार्यके करनेमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है। जैसा कहा है—

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसङ्गप्रसवः स्मर्तव्यः पापउपदेशः॥ ७६॥ (रत्न०)

२–हिंसादान।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गश्रृङ्खलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः॥ ७७॥ (रत्न०)

अर्थ—फरसी, तलवार, कुदाड़ी, अग्नि, हथियार, सांकल (जंजीर), शृंङ्ग (सींग) आदि पदार्थ जिनसे दूसरे जीवोंका वध हो ऐसी चीजोंको दान करना उसे हिंसादान अनर्थदण्ड कहते हैं। जैसे अपना कोई मतलब नहीं है और किसीने हमसे हिंसाकारी चीजें मांगी तो दे देनेमें मालूम नहीं वह कितनी व कैसी हिंसा करे—इससे अनर्थ पापका बन्ध होता है। इस कारण हथियार, जाल आदि पदार्थोंके दान करनेमें अपनी महंतता समझना पाप है। पंडित आशाधरका कथन है—कि आग, मूसल आदि भोजन पकानेके पदार्थ "परस्परं व्यवहारविषयात् अन्यत्र न दद्यात्।" आपसमें व्यवहार हो उसके सिवाय और किसीको न देवे। यहां प्रयोजन यह मालूम होता है कि जैसे ४ गृहस्थी श्रावक एक मकानमें व अड़ौस पड़ौसमें रहते हैं उनके आपसमें किसी कमती बढ़ती चीजके लेनदेनका व्यवहार है तो उस हालतमें जब कि यह जानता हो कि यह इन चीजोंसे यत्नपूर्वक काम लेगा तो आग व खरल मूसलादि भोजन पकानेकी चीजें परस्पर दी ली जांय तो हिंसा दान अनर्थदण्ड नहीं है। प्रत्येक कार्य्यमें विचारकी जरूरत है।

३-अपध्यान ।

बन्धवधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ७८ ॥
(र० क०)

अर्थ—राग और द्वेषके वशमें होकर किसीके बन्धनमें पड़नेका व मारे जानेका व छेदन किये जानेका तथा परस्त्री आदिके हरनेका जो वारंवार विचार करना व सोच करना सो अपध्यान है-ऐसा जिनशासनमें महान् पुरुषोंने कहा है। अर्थात् बैठे २ किसीकी बुराई विचारनी, जीत हार विचारनी इत्यादि विना मतलब खोटा ध्यान करना सो अपध्यान अनर्थदण्ड है।

४-दुःश्रुति ।

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः ।
चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थ—जिन कथाओंके पढ़ने सुननेसे मनमें कलुषता याने मलीनपना होजाय जैसे आरम्भ परिग्रह बढ़ानेवाली, पाप कर्मोंमें हिम्मत करनेवाली तथा मिथ्याभाव, राग, द्वेष, अभिमान अथवा कामदेवको प्रगट करनेवाली कथाओंका पढ़ना सुनना दुःश्रुति है। बहुधा लोक कहानी किस्से उपन्यास पढ़नेमें अपना समय लगाते हैं सो सब अनर्थ दण्ड है।

नोट—कोई पुस्तक विचारवानोंके द्वारा गुण औगुणकी परीक्षाके अर्थ व कर्त्ताकी बुद्धिकी जांचके अर्थ पढ़े जाना व मिथ्यामार्गको दूर करनेके अर्थ पढ़े जाना सो दुःश्रुति नहीं होगी, क्योंकि वहां अभिप्राय एक खास उपकारी प्रयोजनका है।

५-प्रमादचर्या ।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम् ।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥ ८० ॥ (रत्न०)

अर्थ—बेमतलब जमीन खोदना, पानी गिराना, आग जलाना, हवा करना व वृक्षादि छेदना व चलना, सो सब प्रमादचर्या है—ऐसा कहते हैं। विना किसी अर्थके प्रमादसे एकेन्द्री आदि जीवोंको तकलीक देना सो प्रमादचर्या है। जैसे रास्तेमें चलतेर झाड़के पत्ते नोंच लेना, थोड़े पानीसे काम चले तौभी ज्यादा पानी बहाना आदि।

इस अनर्थदंडव्रतके पांच अतीचार हैं—

सूत्र—कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ (उमास्वामी)

१-कन्दर्प—नीच पुरुषोंके योग्य हंसी मशकरीके भांडरूप वचन बोलना।

२-कौत्कुच्य—भांड वचनोंके साथ२ कायसे खोटी चेष्टा भी करनी, जैसे मुंह चिढ़ाना।

३-मौखर्य—बहुत बकवाद करना अर्थात जो बात थोड़ेमें कही जाय उसके लिये बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी बात बनाकर बेमतलब व्यवहार करना।

४-असमीक्ष्याधिकरण—विना विचारे आरम्भी वस्तुओंको इकट्ठा करना व अधिक मकानादि बनाकर जैसे-सकट, ऊंट, घोड़े बहुतसे जमा करना, इस अभिप्रायसे कि जो मुझे जरूरत न होगी तो दूसरे लोग मुझसे ले लेंगे अथवा प्रयोजन विना मन, वचन, कायको अधिकतासे प्रवर्तन करना।

५-भोगोपभोगानर्थक्य—भोग जो एक दफे काममें आ सके जैसे भोजन व फूलमाला। उपभोग-जो बारबार काममें आ सके जैसे कपड़ा-इनका अनर्थ व्यवहार करना अर्थात् चाहिये थोड़ा और बहुत लेकर खराब करना, जैसे कोई आदमी नदी किनारे स्नानको गया और जितना चाहिये उससे अधिक तेल लेगया वहां जो बचा सो औरोंको दिया, सर्व जनोंने तेल लगा नदीमें स्नान किया, जिससे अधिक हिंसा हुई। इसका दूसरा नाम सेव्यार्थाधिकता है याने सेवने योग्य पदार्थ अधिक रखना। इसी प्रकार

थालीमें ज्यादा भोजन परसा लेना जो आप खा न सके और वृथा फेकना पड़े। विवेक बुद्धि रखनेसे व समय और अपनी शक्तियोंकी कदर करनेसे ये सर्व दोष टल सकते हैं।

तीसरा गुणव्रत भोगोपभोगपरिमाण।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥ (रत्न०)

अर्थ—जो प्रयोजनभूत इन्द्रियोंके विषय हैं उनकी गिनती किसी काल तकके लिये राग, रति आदि कषायोंके कम करनेके लिये करना सो भोगोपभोगपरिमाण है।

बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जिनमें फल याने लाभ तो थोड़ा और पाप बहुत है। इनको जन्मभरके लिये छोड़ना चाहिये।

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ ८५ ॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृताविरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥ ८६ ॥
(र० क०)

नालिसूरणकालिंदद्रोणपुष्पादि वर्जयेत्।
आजन्मतद्भुजां ह्यल्पफलं घातश्च भूयसाम् ॥ १६ ॥
अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदा हेया दयापरैः।
यदेकमपि तं हन्तु प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥ १७ ॥
(सागारधर्मामृत)

भावार्थ—थोड़ा लाभ और बहुत हिंसाको उत्पन्न करनेवाली जो चीजें हैं उनको आजन्म छोड़ना चाहिये। जैसे आर्द्राणि कहिये सचित्त मूलक (याने जो तरकारी जड़रूप काममें) जैसे मूली, अदरक, शृंगवेर, नवनीत याने मक्खन, नीमके फूल, केतकी, नालि, सूरण, कमलकी जड़ व डंडी, कालिंद (तरबूज) द्रोणफूल आदि। जैसे गोभी, कचनार अथवा सर्व अनन्त काय याने जिस

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

एकके नाश करनेसे बहुतोंकी हिंसा हो ऐसी साधारण वनस्पति जैसे कन्दमूल, आलू, घुइयां याने वे सब फल जो जमीनके नीचे फले तथा और अन्य भी अनन्त काय जैसा श्रीगोमट्टसार अभय-चन्द्र संस्कृत टीकामें कहा है:—

यत् प्रत्येकशरीरं १–गूढसिरं अदृश्यबहिःस्नायुकं, २–गूढसंधि अदृश्य संधिरेखाबंधं, ३–गूढपर्व अदृश्य ग्रन्थिकं, ४–समभंगत्वक्-रहितत्वेन सदृशछेदं, ५–अहीरुहं अंतर्गतसूत्ररहितं, ६–छिन्न रोहतीति छिन्नरुहं, च तत्शरीरसाधारणं साधारणजीवाश्रितत्वेन साधारणम् इति उपचारेण प्रतिष्ठितशरीरं इत्यर्थः। तद्विपरीतं गूढशिरत्वादिपूर्वोक्तलक्षणरहितं तालनालकेरादिशरीरं अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरं॥

भावार्थ – जिन वनस्पतियोंका सिर गूढ़ हो याने बाहरका सिरा मालूम न पड़े, संधि गूढ़ हो याने संधिकी लकीरोंका बंधन न दीख पड़े (परमाणु मिलते हुए लकीरें बन जाती हैं) गूढ़ पर्व हों याने उनकी गांठ न मालूम पड़े (जैसे गन्नेमें पर्व होती है) समभंग हों याने बराबर २ टुकड़े हो जाय, त्वचा छालका संबंध न रहे, अहीरुह हों याने जिनके भीतर सूत्र याने तार न हो, छिन्नरुह याने जिनको तोड़कर बोनेसे जम जावें—ये सर्व वनस्पति साधारण हैं याने उनमें साधारण जीव अनन्त हैं। इन्हींको प्रतिष्ठितप्रत्येक कहते हैं। इन लक्षणोंसे जो रहित हों जैसे नारियल, ताड़ आदि वे सब अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं याने अनन्त कायसे आश्रित नहीं हैं।

नोट—मालूम होता है इन ६ लक्षणोंमें कोई किसी वनस्पतिके पाया जायगा. सब एकके संभव नहीं होता मालूम होते हैं। यह विषय जांच करने-योग्य है।

गाथा—१–मूले २–कंदे ३–छल्ली ४–पवाल ५–साल,
६-दल ७–कुसुम ८–फल बीजे।
समभंगे सदि णंता, असमे सदि होंति पत्तेया॥

याने—१ जड़, २ धड़, ३ छाल (त्वचा), ४ नये पत्ते याने कोंपल, ५ छोटी शाखा, ६ पत्ते, ७ फूल, ८ फल, ९ बीज धान्यादि ये ९ चीजें यदि बराबर छाल रहित भंग होजाय तब तो साधारण हैं नहीं तो प्रत्येक हैं। इसके सिवाय जिन वस्तुओंके खानेसे रोग आदिकी सम्भावना मालूम पड़े व ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न करती हों वे सर्व अनिष्ट हैं, उनको भी त्यागना चाहिये। तथा जो उत्तम कुलके ग्रहण योग्य नहीं ऐसी सर्व वस्तु अनुपसेव्य है, उनको भी छोड़ना चाहिये। जैसे उंटका दूध, गायका मूत्र, संख, हाथीके दांत, हड्डीके बटन, झूठा भोजन आदि।

नीचे लिखे पदार्थ भी आजन्म त्यागने योग्य हैं:—

आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवत्।
वर्षास्वदलितं चाय पत्रशाकं च नाहरेत् ॥१८॥ (सा०ध०)

अर्थ—मुद्ग माषादिधान्यं आमेन अनग्निपाकेन गोरसेन, क्षीरेण दध्ना अकथित क्षीरोद्भवसंभूतेन तक्रेन च सम्पृक्तं मीलितं तत् हि सूक्ष्मबहु जन्तु आश्रितम् द्विदलं अन्नं अनवम् पुराणं। प्रायः (शब्द) ग्रहणात् पुराणस्यापि चिरकालकृष्णीभूतकुलित्थादे अदृष्ट-जन्तुसम्मूर्छस्य।

अदलितं-प्रावृषि मुद्गादीनां अन्त प्ररोहस्य आयुर्वेदे प्रसिद्धत्वात्।

भावार्थ—१ जिनकी दो दलें होजाती हैं उन अन्नोंको द्विदल कहते हैं। जैसे मूंग, उड़द, चना आदि। धान्यको विना अग्निमें पके हुए याने कच्चे दूध या कच्चे दहीमें मिलाकर या विना गर्म किये हुए दूधसे उत्पन्न छाछके साथमें मिलाकर जो चीज बनती है उसको द्विदल कहते हैं। ऐसी चीजको नहीं खाना चाहिये, क्योंकि उसमें मुखकी राळके सम्बन्धसे बहुतसे त्रस जीव पैदा हो जाते हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ पुस्तकालय

२-पुराना द्विदल अनाज न खावे। खासकर वह जिनके ऊपर कालापन आ जावे, क्योंकि उसमें सम्मूर्छन जीव पैदा होते हैं।

३-वर्षाऋतुमें विना दले हुए मूंग, मटर, चने आदि अनाजको न खावे, क्योंकि भीतर वर्षाके कारण ऊग आया करते हैं-ऐसा आयुर्वेदमें भी कहा है।

४-पत्ते व शाकको भी नहीं खावे तथा जो वस्तु खाने योग्य है उनको २४ घण्टेके लिये रोज सवेरे प्रमाण कर लेवे। ऐसी चीजें १७ हैं—

१-भोजने २-पट्रसे ३-पाने ४-कुंकुमादिविलेपने।
५-पुष्प ६-ताम्बूल ७-गीतेपु ८-नृत्यादौ ९ ब्रह्मचर्य्यके॥
१०-स्नान ११-भूषण १२-वस्त्रादौ १३-वाहने १४-शय १५-नाशने।
१६-सचित्त १७-वस्तुसंख्यादौ प्रमाणतः प्रकीर्तिता॥

अथवा

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्रादूगरागकुसुमेसु।
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेपु॥ ८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः॥ ८९॥
(र० क०)

नीचे लिखी १७ बातोंका प्रमाण करेः—

१-आज भोजन कितने दफे करूंगा।

२-आज दूध, दही, घी, तेल, नमक, मीठा-इन छहमेंसे कौनसा रस छोड़ता हूं।

३-आज भोजनके सिवाय खाली पानी इतनी दफे पीऊंगा।

४-आज चन्दन, उबटन, तेल लगाऊंगा या नहीं, यदि लगाऊंगा तो इतनी दफे।

५-आज फूल सूंघूंगा कि नहीं यदि सूंघूंगा तो इतनी दफे।
६-आज ताम्बूल नहीं खाऊंगा, यदि खाऊंगा तो इतनी दफे।
७-आज गीत बाजा नहीं सुनूंगा, यदि सुनूंगा तो इतनी दफे।
८-आज नाच नाटकादि नहीं देखूंगा, यदि देखूंगा तो इतनी दफे।
९-आज ब्रह्मचर्य पालूंगा, यदि न पालूं तो इतनी बार स्व-स्त्रीसे खण्डित करूंगा।
१०-आज स्नान नहीं करूंगा, यदि यदि करूंगा तो इतनी दफे।
११-आज आभूषण नहीं पहनूंगा, यदि पहनूंगा तो इतने।
१२-आज वस्त्र इतने जोड़से अधिक न पहनूंगा।
१३-आज वाहनपर न चढूंगा, यदि चढूंगा तो इतने वाहनों-पर इतनी दफे चढूंगा।
१४-आज इतने प्रकारके शय्यादिकोंपर शयन करूंगा।
१५-आज इतने प्रकारके आसनोंपर सोऊंगा।
१६-आज हरी तरकारी इतनी खाऊंगा। आज कच्चा पानी नहीं पीऊंगा।
१७-आज भोजनमें कुल इतनी वस्तुएं लूंगा।

इस तरह १७ बातोंका नियम रोज करे। एक तख्तेपर व एक कापीमें १७ बातोंके खाने बना लेवे, उसीको रोज देख लेवे तथा पेन्सिलसे संख्या लिख लेवे। दूसरे दिन रबरसे बिगाड़ उस स्थानपर अन्य संख्या लिख देवे, यदि बदलना होवे तो इन नियमादिके करनेके लिये नियमपोथी नामकी पुस्तक संकलित की गई है जिससे नियम करनेका बहुत सुभीता है। इस व्रतके ५ अतीचारोंको बचावे।

सूत्र—सचित्तसचित्तसम्बन्धसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः।
(उमास्वामी)

१-सचित्त—जो हरी तरकारी त्यागकर चुका है उसको भूलसे खाजाना अथवा कच्चा पानी त्यागा होय और भूलसे कच्चा पानी पी लेना।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाश

२. सचित्तसंबंध—सचित्त सम्बन्धमात्रेण दूषितआहारः—जैसे त्यागे हुए हरे पत्ते पर रक्खा हुआ भोजन अथवा सचित्त संबंध गोन्दादिकं पक्कफलादिकं वा सचित्त अन्तर्वीजे खर्जूराम्रादि च, तद्भक्षणं हि सचित्त वर्जकस्य प्रमादादिना सावद्याहारप्रवृत्तिरूपत्वात् अतीचारः अथवा बीजं त्यक्ष्यामि तस्यैव सचेतनत्वात्। कटाअहं तु भक्षयिष्यामि तस्य अचेतनत्वात् इति बुद्धया पक्कखजूरादिफलं प्रक्षिपतः सचित्तवर्जकस्य सचित्तप्रतिबद्धाहारः।

अर्थात्—गोंदादिक पके फल व आम खजूर आदि फल जिनके अन्दर बीज हों उनको खा लेना सो सचित त्यागीके अतीचार हैं, क्योंकि प्रमाद करके सचित्त बीजको उसने अलग नहीं किया है। अथवा यह विचार करके पका आम खजूर आदि फल मुँहमें डाल दे कि मैं इनके बीजोंको थूक दूंगा, क्योंकि वह सचित्त हैं और उसके गूदेको खा जाऊंगा, क्योंकि वह अचित्त है-ऐसा करना सचित्तत्यागीके लिये सचित्तसम्बन्ध अतीचार है।

३-सचित्तसन्मिश्र—सचित्तद्रव्य सूक्ष्मप्राण्यतिमिश्रः। अशक्य-भेदकरणः अर्थात् सचित्त द्रव्य आहारसे इस कदर मिल गया हो कि उस सचित्तको अलग न किया जा सके उसे खाना अथवा आर्द्रक दाडिम चिर्भटादिमिश्रं पूरणादिकं तिलमिश्रं च यवधानादिकं।

अर्थात्—अदरक, अनार, खीरा, ककड़ी आदि द्रव्योंसे मिला हुआ पूरण याने लपसी आदिकी बनी रोटी व तिलसे मिले हुए जवके दाने आदि।

४-अभिषव—अत्यन्त पुष्ट व कठिनतासे हजम होने लायक आहार।

रात्रिचतुः प्रहरैः क्लिन्न उदनोद्रवः इन्द्रियबलवर्द्धनो माषादि विकारादिः वृष्यः द्रव्यवृष्यस्य आहारः।

अर्थात्—चार पहर रातका वासी उदनोद्रव या इन्द्रिय बलको

बढ़ानेवाले उरदसे बने हुए पदार्थ वृष्य हैं, ऐसा भोजन सो द्रव्यवृष्यका आहार है।

दुष्पक—जो खराब व कम पका हुआ हो व अधपका हो।

सांतस्तंडुलभावेन अतिक्लेदनेन वा दुष्टं पक्वं मन्दपक्वं। तच्चार्द्धपक्व पृथकतंडुलयवगोधूमस्थूलमंडकं (मांड) फलादिकं आमदोषावहत्त्वेन ऐहिक प्रत्यवायकारणं। तथा यावतांशेन तत्सचेतनं तावता परलोकमपि उपहंति ॥ (सा० ध०)

अर्थात्—भीतर चांवल अत्यन्त ही पक गया हो या खराब पका जैसे जल गया हो या कम पका हो तथा अधपका हो जैसे साली जौ, गेहूं मंडक व अन्य फल आदि कच्चे रहनेसे शरीरको हानिकारक हैं तथा जितने अंशमें वह सचेतन हैं याने कच्चे हैं उतने अंशमें परलोकका भी विगाड़ करते हैं।

वृषदुःपक्वयोः सेवने सति इन्द्रिय मदवृद्धिः सचित्तोपयोगः वातादि प्रकोपोदरपीडादिप्रतीकारे अग्न्यादिप्रज्वालने महान् असंयमः ॥
(स्वा० सं० टीका)

अर्थात्—पुष्ट और खराब पके भोजनके खानेसे इन्द्रिय मदकी वृद्धि होती है, सचित्तका उपयोग होता है तथा वात आदिका प्रकोप हो जाता है, पेटमें दर्द उठ आता है, अग्नि आदि जल उठती है जिससे बहुत असंयम हो जाता है।

नोट—व्रती प्रतिमावालेको बहुधा सचित्त भोजन त्यागका नियम रहता है इसीसे ऊपरके अतीचार इसी खयालसे लिखे गये हैं। यद्यपि इसके लिये यह जरूरी ही नहीं है कि वह सचितको त्यागे ही, परन्तु नियम करना जरूर है।

तथापि खास २ तिथियों पर खास २ पर्वों पर जैसे अष्टमी, चौदस, अष्टाह्निका आदिमें अवश्य सचित्तको त्यागता है तब कच्चा

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

पानी व कोई सचित्त फल आदि नहीं खाता है, परंतु अचित्त कहिये प्राशुक जल व उचित अन्नादि व्यवहार करता है।

प्रश्न—अन्न व फल अचित्त कैसे हो जाता है ?

उत्तर—तत्तं पक्कं सुक्कं अंबलि लवणेहिं दव्वं ।
जं जं तेण य छिन्नं तं सव्वं पासुकं भणियं ॥
(स्वा० का सं० टीका)

जो वस्तु अग्निसे तप्त याने खूब गरम कर ली जाय व पक जाय, धूपमें या अग्निमें पक जावे, सूख जावे या आंवला कहिये कषायला पदार्थ और लोण आदिको मिला दिया जावे व जो वस्तु यन्त्रसे छिन्न भिन्न कर दी जाय वह वस्तु प्राशुक होजाती है। जैसे पानी गर्म किया हुआ व लौंग आदि द्रव्योंसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण बदला हुआ, अन्न पकाया हुआ, फल सूखा हुआ या छिन्न भिन्न कर दिया गया।

पंडित आशाधरजीके ऊपरके अतीचारोंके देखने ऐसा मालूम होता है कि जो आम्र या खजूर पका हुआ हो उसका ऊपरका गूदा उचित है, परन्तु उसके भीतरकी गुठली सचित्त है। इस अपेक्षासे जैसे हम सचित्त अन्नको पीस करके व भूंज करके व अग्निमें पका करके अचित्त करते हैं-ऐसे ही अचित्त फलको पीस करके व आगमें पका करके व सुखा करके व उसको किसी यन्त्रसे छिन्न भिन्न कर देनेसे या नोन मिर्च खटाई व दूसरी कषायली चीजको मिला देनेसे अचित्त कर सकते हैं, अथवा पके फलकी गुठली निकाल गूदा खा सकते हैं। परन्तु यदि उसके गूदेके पके होनेमें सन्देह हो तो कषायला द्रव्यादि मिला लेवे। सचित्तका त्यागी अचित्तका व्यवहार कर सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रश्न—जब ऐसा है तब अष्टमी चतुर्दशीको हरी तरकारीको अग्निसे पकानेपर क्या दोष होगा ?

उत्तर—यद्यपि सचित्तका त्यागी अचित्त व्यवहारके हेतु ऐसा करे तो उसकी प्रतिज्ञा मात्रकी अपेक्षासे उसको कोई दोष न होगा। तथापि आजकल व्यवहारमें जो यह रीति है कि जिस हरी तरकारीका त्याग होता है उसको उस दिन नहीं पकाते हैं। यह इस कारण कि यदि रोजके समान ही वह तरकारी लाकर पकाता हो तो उसके परिणामोंसे रागभावकी बहुत तुच्छ कमी होती है।

इसके विरुद्ध यदि वे रोजके समान तरकारी न मंगावें तो उसको अपने परिणामोंमें यह विदित होता है कि मैंने कुछ त्याग किया है अर्थात् संयम धारण किया है। इससे परिणामोंमें रागकी विशेष कमी रहती है। अतएव यह प्रवृत्ति कषाय-मन्दताके कारणसे बुरी नहीं है। मात्र सचित्त अवस्थाके त्यागकी अपेक्षा यदि कोई उस सचित्त वस्तुको ग्रहण करके अचित्त करनेका भी त्याग करे तो उसके रागकी अत्यन्त मन्दता है।

इस कारण इस प्रवृत्तिको उठाना योग्य नहीं है, क्योंकि इस आरम्भके त्यागसे एकेन्द्री जीवोंके घातसे भी वह बच गया। तथापि जो केवल सचित्त मात्र वस्तुका त्यागी है उसके लिये अचित्त वस्तु लेना सर्वथा निषेध नहीं है तथा वह सचित्तको अचित्त कर भी सकता है। परन्तु ऐसा करनेसे वह एकेन्द्री जीवोंकी हिंसा नहीं बचा सकता।

प्रश्न २—यदि कोई उस दिन तरकारीको न पकावे, परन्तु कई दिन पहलेसे ही हरी तरकारीको मंगाकर सुखा लेवे तो इसमें क्या दोष है?

उत्तर—इसका भी उत्तर पहलेके समान है अर्थात् जो मात्र सचित्त अवस्थाका त्यागी है वह अचित्त कर सकता है। परन्तु यदि वह उस दिन हरीको पकाना नहीं चाहता तो भीतर परिणामोंमें राग भावकी जांच करके देखा जाय तो उसको सुखाना

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

भी नहीं चाहिये, क्योंकि राग भावकी कमी नहीं भई। परन्तु जो चीज आमतौरसे स्वयं हाटमें सूखी हुई मिलती हो उसको लेकर व्यवहार कर सकता है। इसलिये अपने आप न सुखाकर आमतौरसे मिलनेवाली सूखी वस्तु लेनेकी जो प्रवृत्ति वर्तमानमें है उसको भी उठाना योग्य नहीं है। भोगोपभोग परिमाण व्रतका करनेवाला यदि किसी दिन सर्व सचित्तको त्यागे तो उसको अचित्त ग्रहण करनेका त्याग नहीं है।

सो भी त्याग नौ प्रकारसे हो सकता है। मन, वचन, काय द्वारा करना, कराना व अनुमोदना नहीं करना। जो इस नौ प्रकारसे खाने, खिलाने आदिका त्याग करते वे उसी बातके त्यागी हैं। जो सचित्तको अचित्त न करनेका, न कराने आदिका त्याग करते वे उस बातके त्यागी हैं। परिणामोंमें कषाय घटानेके लिये बाहर त्याग निमित्त मात्र है। जितनी कषाय घटे उतना त्यागे।

जिनमतमें मूल अभिप्राय कषायोंके मन्द करनेका है। अतएव जिस तरह अपना रागभाव घटे उस तरह चलना चाहिये।

आगे चार शिक्षाव्रतोंको कहते हैं—

१-प्रथम शिक्षाव्रत—देशावकाशिक शिक्षाव्रत है।

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य॥ ९५॥
(र० क० श्रा०)

भावार्थ—जो परिमाण दशों दिशाओंका दिग्व्रतमें किया जा चुका हो उसमेंसे प्रतिदिन किसी नियमित कालके लिये थोड़ा परिमाण रखकर बाकीका त्याग करना सो देशावकाशिक या देशव्रत है।

दिग्व्रतमें जन्म पर्यंतके लिये दशों दिशाओंमें बहुत बड़ा क्षेत्र रखना होता है, परन्तु रोज इतने क्षेत्रसे किसीका प्रयोजन नहीं रहता। इसलिये अपने सन्तोषको व पापोंकी प्रवृत्तिके रोकनेको

स्थिर करनेके लिये जितने क्षेत्रमें जाने आने, व्यापार, लेनदेन, चिट्ठी पत्रीका सम्बन्ध जाने उतने क्षेत्रकी मर्यादा एक दिन, दो दिन, चार दिन, पक्ष, मास, चार मास, छह मास तथा एक वर्ष तकके लिये जैसा अपना निर्वाह समझे, कर लेवे। जैसे किसीको ८ दिशाओंमें एक २ हजार कोसका व ऊपर नीचे २५ कोसका प्रमाण है, परन्तु आज उसकी इच्छा है कि मैं अपने नगरसे बाहर न जाऊँ और न किसीको भेजूँ तो वह अपने नगरकी आठों दिशाओंकी हदबन्दीके अन्दरका प्रमाण कर ले तथा ऊपर नीचे ५० गज व जितनी इच्छा हो रख ले। दूसरा दिन लगनेपर दूसरा प्रमाण करे।

देशव्रती ऐसा भी प्रमाण कर सकता है कि आज १२ घण्टे तक मैं इस घरसे बाहर कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा, यहीं बैठा २ क्रिया करूंगा अथवा किसीको रोज अपने नगरसे बाहर जानेका तो काम नहीं पड़ता, परन्तु आदमी व पत्र व वस्तु भेजने व पत्रादि मंगानेका काम पड़ता है तो वह यह विचारे कि मैं कहांतक ऐसा सम्बन्ध आज करूंगा, ऐसा समझकर यह प्रमाण कर सकता है कि मैं अपने नगरसे बाहर नहीं जाऊँगा तथा भेजना व मंगाना आठों दिशाओंमें सौ सौ कोस व ऊपर नीचे २० गज तक करूंगा अथवा १ बाजार व रास्ते व अमुक सड़क तक आज मेरे व्यवहार है, शेषका त्याग है। इस तरह प्रमाण किया जा सकता है।

इस व्रतके धारीको ५ अतीचार बचाने चाहिये—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

(त० सूत्र०)

भावार्थ १—दशों दिशाओंमें जितने स्थानकी हद जितने काल तक बांध ली हो उतने काल तक उतने स्थानसे बाहरकी जगहसे किसीको बुलावे व कोई चीज मंगा लेवे सो आनयन नाम पहला अतीचार है। जैसे किसीने आठों दिशाओंमें पचास २

कोपकी मर्यादा की, लेकिन कोई माल बहुत बड़े लाभका पूर्व दिशाकी ओर अपनी मर्यादासे १ हाथ दूरपर आया हुआ है-ऐसा सुनकर यह विचार किया कि हम पश्चिमकी ओर २५ कोपसे आगेकी कोई चीज न मंगावेंगे इसके बदलेमें इस मालको मंगा लेवें सो बड़ा लाभ हो-ऐसा सोचकर उसको मंगा लेना सो आनयन नामा अतीचार है। इसमें व्रत सर्वथा तो नहीं तोड़ा गया, किन्तु एक-देश खण्ड किया गया, इससे यह अतीचार हुआ।

२-मर्यादा की हुई जगहसे बाहर वस्तुओंको भेजना सो प्रेष्य-प्रयोग नामा अतीचार है। इसका स्वरूप भी ऊपरके समान जानना।

३-मर्यादाके बाहर कोई काम आ पड़ने पर आप तो न जाना, किन्तु अपना शब्द ऐसा बोल देना जिससे मर्यादाके बाहरका आदमी सुन ले और कामका परस्पर भुगतान हो जावे, सो शब्दानुपात नामा तीसरा अतीचार है।

४-मर्यादाके बाहर कोई कार्य आ पड़ने पर आप तो न जाना और न शब्द बोलना, परन्तु दूसरेको अपने रूपका इशारा बताकर समझा देना-सो रूपानुपात नामा अतीचार है।

५-मर्यादाके बाहर कोई कार्य होने पर आप तो न जाना, न बोलना, न इशारा दिखाना, परन्तु कंकड़ पत्थर व पत्र आदि पुद्गलोंको भेजकर अपना काम जंचा देना व कोई भी लौकिक प्रयोजन सिद्ध कर लेना सो पुद्गलक्षेप नामा पंचम अतीचार है।

मर्यादा रखते समय यदि व्रतीका भाव न्यायरूप, सत्य श्रद्धारूप दृढ़ होगा तो विना यत्न ही कोई दोष नहीं लगने पावेगा।

२-दूसरा शिक्षाव्रत सामायिक है।

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामायिकाः सामायिकं नाम शंसन्ति ॥ ९७॥
(र० श्रा०)

भावार्थ—मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना करके सर्व स्थानोंमें यहां व बाहर किसी नियत काल तक पांचों पापोंका त्याग करना अर्थात् धर्मकी भावनामें रहकर शुभ व अशुभ लौकिक पदार्थों पर समभाव रखना सो सामायिक है-ऐसा गणधरादिकोंने कहा है।

सामायिककी व्याख्या इस प्रकार है:—

सम् एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयम् अहं ज्ञाता द्रष्टा च इति आत्मविषयोपयोगः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकस्य संभवात्। अथवा समे रागद्वेषाभ्यां अनुपहृते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनं अस्य इति सामायिकं॥

(श्री गोम्मटसार सं० टीका श्रुतज्ञान प्र० अभयचन्द्र)

भावार्थ—अपने आत्माके विना सर्व परद्रव्योंसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आत्मस्वरूपमें ही एकरूप होकर उपयोगको प्रवृत्त करना। अर्थात् यह अनुभव करना कि मैं ज्ञाता द्रष्टा हूं (क्योंकि एक ही आत्मा जाननेवाला ज्ञायक भी है और जानने योग्य ज्ञेय भी है) सो समाय है। अथवा रागद्वेषोंको हटाकर माध्यस्थ भावरूप समतामें लीन ऐसा जो आत्मस्वरूप उसमें अपने उपयोगको चलाना सो समाय है। जिस क्रियाका समाय करना प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं। सामायिकके छह भेद हैं:-

१-नाम सामायिक—सामायिकमें लवलीन आत्माके ध्यानमें अच्छे या बुरे नाम आजाय तो उनसे रागद्वेष नहीं करके समभाव रखना, सर्व नामोंको व्यवहार मात्र जानना, निश्चय अपेक्षा हेय जानना, शुभ नामोंसे अनुराग, अशुभ नामोंसे द्वेष न करना सो नाम सायायिक है।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२-स्थापना सामायिक—सुहावने व असुहावने स्त्री पुरुषादिकोंकी मूर्ति व चित्र खयालमें आनेपर उनसे रागद्वेष न करके सर्वको पुद्गलमई एकरूप समझना सो स्थापना सामायिक है।

३-द्रव्य सामायिक—इष्ट व अनिष्ट, चेतन व अचेतन द्रव्योंमें रागद्वेष न करके अपने स्वरूपमें उपयोगको रखना सो द्रव्य सामायिक है।

४-क्षेत्र सामायिक—सुहावने व असुहावने ग्राम, नगर, वन, मकान व और किसी भी स्थानका खयाल होनेपर उसमें रागद्वेष न करके सर्व आकाशको एकरूप क्षेत्र जान स्वक्षेत्रमें तन्मय होना सो क्षेत्र सामायिक है।

५-काल सामायिक—अच्छी व बुरी ऋतु, शुक्ल व कृष्णपक्ष, शुभ व अशुभ दिन, वार, नक्षत्र आदिका खयाल आनेपर किसीमें राग व द्वेष न करके सर्व कालको एक व्यवहार कालरूप मानकर अपने स्वरूपमें स्थिर रहना सो काल सामायिक है।

६-भाव सामायिक—विषय कषायादि विभाव भावोंको पुद्गलकर्म जनित विकार समझ उनमें राग द्वेष न करना और अपने भावको निजानन्दी समतामें उपयुक्त रखना सो भाव सामायिक है।

सामायिक करनेवालेको निम्न ७ बातोंकी शुद्धि व योग्यता रखनी उचित है।

१-क्षेत्रशुद्धि—सामायिक करनेके लिये उपद्रवरहित स्थानमें बैठे जहां एकान्त हो। जैसे कोई वन, चत्यालय, धर्मशाला व अपने घरका ही कोई अलग स्थान हो। वह जगह अशुद्ध व अपवित्र न हो तथा जगह समतल हो, ऊँची नीची विढंगी न हो कि जहां आसन न जम सके।

२-कालशुद्धि—सामायिक करनेका योग्य काल अत्यंत प्रातःकाल याने पौ फटनेका समय, सायंकाल याने संध्या समय व दोपहर ऐसे ३ समय हैं। इन वक्तोंमें और कालोंकी अपेक्षा परिणाम

अधिक लगते हैं। किसी २ विद्वानका मत है कि तीनों समयोंमें छह छह घड़ी काल सामायिकका है अर्थात् ३ घड़ी रात शेषसे ले ३ घड़ी दिन चढ़े तक व ३ घड़ी १२ बजे दिनके पूर्वसे ले दोपहर बाद ३ घड़ी तक व ३ घड़ी सायंकालके पहलेसे ले ३ घड़ी रात तक है। १ घड़ी २४ मिनटकी होती है। ३ घड़ीके १ घण्टा १२ मिनट हुए। इन ६ घड़ीके बीचमें सामायिक अवश्य कर लेनी उचित है। *

३-आसनशुद्धि—सामायिक करनेके लिये जहां बैठे व खड़ा हो वहां कोई दर्भासन व चटाई, पीला व सफेद व लाल कपड़ेका आसन बिछा लेवे। उसपर आप कायोत्सर्ग वा पद्मासन वा अर्द्ध पद्मासन रूप हो सामायिक करे। हाथोंको लटकाकर पैरोंको ४ अंगुलके अन्तरसे रखके सीधे खडे होकर आंखोंको नाककी तरफ रखके विचार करनेको कायोत्सर्ग कहते हैं। दाहनी जांघपर बांयां पैर रखना, फिर दाहने पैरको बाईं जांघ पर चढ़ाना, गोद पर बाईं हथेली खुली रख ऊपर दाहनी हथेली रखना और सीधा श्री पद्मासन प्रतिमाकी तरह बैठना सो पद्मासन है। बांयां पैर जांघके नीचे तथा दाहना बाईं जांघ पर रखना तथा हाथोंको पद्मासनकी तरह रख सीधा बैठना सो अर्धपद्मासन है।

४-मनशुद्धि—मनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान न करके मुक्तिकी रुचिसे धर्मध्यानमें आशक्ति रखना सो मनशुद्धि है।

५-वचनशुद्धि—सामायिक करते समय चाहे कितना भी काम हो किसीसे बात नहीं करना तथा केवल पाठ पढ़ने व णमोकार मन्त्र बोलनेमें ही वचनोंको चलाना और शुद्ध अर्थको विचारते हुए पढ़ना सो वचनशुद्धि है।

---

* सम्मति-स्याद्वाद वादिगजकेशरी पं० गोपालदास बरैया।

६-कायशुद्धि—शरीरमें मल मूत्रकी बाधा न रखना व स्त्री संसर्ग किया हुआ शरीर न होना, हाथ पग धो वैराग्यमई एक दो वस्त्र पहनकर सामायिक करना सो कायशुद्धि है।

७-विनयशुद्धि—सामायिक करते समय देव, गुरु धर्मकी विनय रखके उनके गुणोंमें भक्ति करना, अपनेमें ध्यान व तप आदिका अहंकार न आने देना सो विनयशुद्धि है।

सामायिक करनेकी विधि।

सामायिक करनेवाला श्रावक ऊपर कही हुई सातों शुद्धियोंका विचार करके सामायिक शुरू करनेके पहले कालका प्रमाण करले और समयका नियम करके जो की जाय सो सामायिक है। जैसा कहा है:—

" केशबंधादि नियमितः कालः तत्र भवं सामायिकं।"

(आशाधर)

कितने कालकी मर्यादा करना चाहिये इस विषयमें पण्डित आशाधरजी सागरधर्मामृतमें इस तरह कहते हैं:—

एकान्ते केशबन्धादि मोक्षं यावन्मुनेरिव।
स्वध्यातुः सर्वहिंसादित्यागः सामायिकव्रतम् ॥ २८ ॥

व्याख्या—अन्तर्मुहूर्तमात्रं धर्मध्याननिष्ठस्य कियत् कालं केशबन्धादि मोक्षं यावत् केशबन्ध आदिर्येषां मुष्टिबंधवस्त्रगृन्थ्यादीनां गृहीतनियतकालावच्छेदहेतूनां केशबन्धादय तेषां मोक्षो मोचनं तम् अवधी कृत्य स्थितस्य। सामायिकं हि चिकीर्षुः यावत् अयं केशबन्धो-वस्त्रगृन्थ्यादेर्वा मया न मुच्यते तावत्साम्यात् न चलिष्यामि इति प्रतिज्ञां करोति।

भावार्थ—अन्तर्मूहूर्त काल तक धर्मध्यान करनेकी प्रतिज्ञा इस भांति करना कि अपने केशोंको व चोटीको बांध लेना या वस्त्रके गांठ

लगा लेना और ऐसी प्रतिज्ञा करनी कि जबतक इसको न खोलूं तब-तक मुझे सामायिक करनेका नियम है, मैं सामायिकको न छोडूंगा अथवा मुट्ठी बांधके उसके न खोलने तक सामायिक करे। यदि घड़ी पास हो तो उसके द्वारा, नहींतो गांठ आदि लगाकर अनुमान दो घड़ीके प्रमाण करना चाहिये।

सामायिकके कालकी मर्यादा करके फिर भी यह प्रमाण कर ले कि इतने काल तक जहां मैं हूं इसके चहुंओर एक एक गज क्षेत्र रक्खा तथा इस क्षेत्रके अन्दर मेरे पास जो परिग्रह है उसके सिवाय अन्य परिग्रह इतने काल तकके लिये छोड़ दिया। फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके आसनके ऊपर कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ दफे णमोकार मन्त्र धीरेसे पढ़, हाथ जोड़ तीन आवर्त और १ शिरोनति करे। दोनों हाथ जोड़े हुए खड़े२ बाई ओरसे दाहनीको ३ दफे फिरावे—यह आवर्त है। फिर मस्तक दोनों जोड़े हुए हाथों पर रक्खे—यह शिरोनति है। फिर अपने दक्षिणकी ओर खड़े २ मुड़ जावे और पहलेकी भांति कायोत्सर्गसे णमोकार पढ़ आवर्त और शिरोनति करे।

इसी तरह घूमतेहुए और दोनों दिशाओंमें ऐसा ही करे। फिर पहली दिशामें आकर आसनसे बैठ जावे और संस्कृत व भाषा किसी सामायिक पाठको धीरे २ उसके अर्थोंको विचारता हुआ पढ़े फिर णमोकार मंत्र व अन्य छोटे मंत्रकी माला फेरे। सूतकी माला द्वारा या अपने हाथोंपरसे या हृदयमें कमलके विचार द्वारा थिरतासे जाप जपे। फिर पिंडस्थध्यान आदिका अभ्यास करे जैसा कि तत्वमाला पुस्तकके अन्तमें कहा गया है। अन्तमें कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ बार णमोकार मन्त्र पढ़ नमस्कार याने दण्डवत् करे। यह गृहस्थी श्रावक श्राविकाओंके लिये सामान्य विधि है।

व्रती दो समय सामायिक कर सकता है। जैसा कहा है—

परं तदेव मुक्त्यंगमिति नित्यमतंद्रितः।
नक्तं दिनान्तेऽवश्यं तद्भावयेत् शक्तितोऽन्यदा॥ २९॥
(आशाधर)

अर्थात्—नित्य निरालसी होकर अवश्य ही सामायिक प्रातःकाल और सायंकाल करनी योग्य है, शक्ति हो तो और समय भी कर सकता है।

सामायिक शिक्षाव्रतकी शुद्धताके लिये पांच अतीचार बचाने चाहिये।

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि॥ (त० सू० उ० स्वा०)

भावार्थ—१-मनःदुःप्रणिधान-मनको विषय कषायादि पापबन्धके कार्योंमें लगाना अर्थात् मनमें आर्त रौद्रध्यान करना। अपनी बुद्धिपूर्वक याने जानबूझकर ऐसे अशुभ भाव न होने दे, जो कदाचित् कर्मके उदयकी बरजोरीसे सांसारिक विचार उठ आवे तो भेदविज्ञानरूपी शस्त्रसे उसको काट देवे। जैसे किसीको अपने पुत्रके वियोगकी चिन्ताका ख्याल आया तो उसी वक्त यह विचार ले कि जगतमें कोई किसीके आधीन नहीं है, सब जीव अपने२ बद्ध कर्मके अनुसार सुख दुख आदि अवस्थाओंको भोगते हैं तथा प्रत्येक संयोग वियोगके आधीन हैं, जिसको कोई मेट नहीं सकता। यदि स्त्रीकी चिन्ता हो आवे तो स्त्रीके शरीरकी अपवित्रता विचारे व कामकी वेदना मोक्षमार्गकी घातक है, ऐसा अनुभव करके रागको वैराग्यमें परिणमन कर दे।

२-वचनदुःप्रणिधान—सामायिक करते समय अपने वचनोंको सांसारिक कार्योंमें चलायमान करना अथवा किसीसे बातें करना व किसीको उत्तर देना सो वचनदुःप्रणिधान है, सो नहीं करना। केवल पाठ पढ़नेमें व णमोकार मन्त्रादिके लिये तो वचनोंको उचित रीतिसे चलावे जिससे दूसरोंका हर्ज न हो और अपना उपयोग लग जावे इसके सिवाय मौनरूप रहे।

३-कायदुःप्रणिधान—शरीरसे सामायिक सम्बन्धी चेष्टाके सिवाय अन्य काम करने लगना। जैसे किसीको कोई चीज उठाके देना, इशारेसे कोई काम बता देना आदि कायचेष्टा सो कायदुःप्रणिधान है। सामायिकमें आसनरूप रहे। यदि एक आसनमें शरीरको कष्ट मालूम पड़े और सह न सके तो दूसरा आसन बदल लेवे। यदि शरीर बिलकुल अशक्त हो याने बैठ न सकता हो तो लेटे हुए आसनसे भी सामायिक की जा सकती है। हाथमें माला या पुस्तक लेना व धरना सामायिक सम्बन्धी क्रिया है, इसलिये सर्वथा निषेध नहीं है। यथासंभव शरीरको निश्चल रखनेका अभ्यास रक्खे।

४-अनादर—"प्रतिनियतवेलायां सामायिकस्य अकरणं, यथा कथंचित् वा करणं ॥" (आशाधर)

भावार्थ—ठीक सामायिकके कालमें तो सामायिक न करना, चाहे जब कर लेना, भीतरसे यह भाव शिथिल होना कि सामायिक करना अपना मुख्य कर्त्तव्य है। अतएव अन्य कार्य छोड़ इसमें प्रवर्तना योग्य है। प्रमाद और आलस्यसे सामायिक करनेमें उत्साहका कम होना अनादर है।

५-स्मृत्यनुपस्थान या अस्मरण—"सामायिकं मया कृतं न कृतं इति प्रबलप्रमादात् अस्मरणं अतीचारः ॥" (आशाधर)

भावार्थ—तीव्र प्रमादके वश हो इस बातको भूल जाना कि सामायिक मैंने की है व नहीं। जैसे सामायिकके समयमें व्यापारादिमें ऐसे युक्त हो जाना कि सामायिक करनेकी सुध न करना तथा जब अन्य वेला आवे तब शंकित होना कि गत वेलामें सामायिक सम्बन्धी क्रिया व पाठादि पढ़ना भूल जाना सो अस्मरण है।

इस प्रकार यह सामायिक शिक्षाव्रत मोक्षमार्गी आत्माका परम कल्याण करनेवाला है। इसीके अभ्याससे ध्यानकी सिद्धि होती है। ध्यान ही मुख्य तप है-इस ही तपसे कर्मोंकी निर्जरा

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

होती है। यही ध्यान मुक्ति रूप ललनाके मिलानेको परम सखाके समान है। सामायिकके प्रतापसे ही उपयोगकी परिणति जगतके आंगनमें नाचनेसे अटक कर निज आत्मीय गुणोंके बागमें रमण करने लग जाती है, जिससे अपूर्व अनुभवानन्दकी प्राप्ति होती है। सच्चे सुखको देनेवाली, मनके क्लेशोंको मिटाकर शांति प्रदान करनेवाली तथा अपने सर्व क्रियाकांडको सफल करनेवाली ज्ञान पूर्वक की हुई यह सामायिक क्रिया है। हितार्थीको इसके अभ्याससे चूकना न चाहिये।

३. तीसरा शिक्षाव्रत–प्रोषधोपवास।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः॥ १०६॥
(र० क०)

भावार्थ—अष्टमी और चौदस इन दो पर्वियोंमें धर्मध्यानकी इच्छासे चार प्रकारके आहारका त्यागना सो प्रोषधोपवास है। तथा—

सः प्रोषधोपवासो यच्चतुःपर्व्यां यथागमं।
साम्यसंस्कारदीर्घाय चतुर्भुक्त्युज्झनं सदा॥
(आशाधर)

अर्थात्–समताके संस्कारको बढ़ानेके लिये एक मासकी चारों पर्वियोंमें आगमके अनुसार चार भुक्तिको त्यागना सो प्रोषधोपवास है।

“एकां हि भुक्तिक्रिया धारणा दिने द्वे उपवासदिने, चतुर्थी च पारणा दिने” (आशाधर) याने दिनमें दो दफे भोजन सामान्य तौरसे लिया जाता है सो पहले दिन एक दफेका भोजन, उपवासके दिन दोनों दफेका भोजन तथा पारणाके दिन एक दफेका भोजन ऐसे चार भुक्तिको त्यागना सो उत्कृष्ट प्रोषधोपवास है। तथा—

उपवासाक्षमैः कार्योऽनुपवासस्तदक्षमैः।
आचाम्लनिर्विकृत्यादि शक्त्या हि श्रेयसे तपः॥
(आशाधर)

भावार्थ—उपवास करनेकी शक्ति न हो तो अनुपवास करे।

जलवर्जनचतुर्विधाहारत्यागः अनुपवासः, (आशाधर)। जलके सिवाय और चार प्रकारके आहारका त्यागना सो अनुपवास है। यदि यह भी न कर सकता हो तो आचाम्लकांजिका आहार करे। शक्ति करके किया हुआ तप कल्याणकारी है।

"स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द लक्षणेषु पंचसु विषयेषु परिहृतौ पंचापि इन्द्रियाणि उपेत्य आगत्य तस्मिन् उपवासे वसंति इति उपवासः। अशन, पान, खाद्य, लेह्य, चतुर्विधाहारः उपवास-शक्ति अभावे एकवार भोजनं करोति तथा निर्विकृतिं शुद्ध तक्रैः शुद्धैकाऽन्नभोजनं करोति वा दुग्धादि पंच रसादिरहितं आहारं भुंक्ते आचाम्लकांजिकाहारः क्षक्षाहारः अन्नः शुद्धोदनं जलेन सह भोजनं कांजिकाहारं। (स्वामीकार्तिकेय० स० टीका)

भावार्थ—पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग कर सर्व इन्द्रियोंको उपवासमें ही स्थिर करे सो उपवास है। उपवासके दिन निम्न चार प्रकारका भोजन न करेः—

१-अशन—भात दालादिक।
२-पान—पीने योग्य दूध छांछादि।
३-खाद्य—मोदकादि (लाडू वगैरह मिठाई)
४-लेह्य—चाटने योग्य (रबड़ी, लपसी, दवाई आदि) तथा अन्य ग्रन्थमें ऐसे भी चार प्रकार भोजन कहा है—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय।

इसमें खाद्यसे मतलब उन सर्व चीजोंसे है जो कि साधारण रीतिसे क्षुधा मेटनेके काममें लाई जाती हैं जैसे-रोटी, पूरी, मिठाई। स्वाद्यसे प्रयोजन इलायची लौंग सुपारी आदिसे है। शेष दोका

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

स्वरूप ऊपरके समान है। तथा जो उपवास याने चार प्रकारके आहार त्यागनेकी शक्ति न हो तो एकवार भोजन करे अथवा विकाररहित शुद्ध छांछके साथ एक किसी शुद्ध अन्नको खावे (द्विदलके दोषको बचावे) व दूध, मीठा, नोन, तेल व घी ऐसे पांच रसरहित भोजन करे या छांछ मात्र लेवे सो आचाम्ल आहार है। त्रसरहित शुद्ध भातको जलके साथ खाना सो कांजिकाहार है।

प्रोपधोपवास—प्रतिमा याने चौथी प्रतिमाके स्वरूपको कहते हुए श्रीवसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तीने इसका स्वरूप नीचे लिखे भांति कहा है—

(वसुनंदि श्रावकाचार लिखित सम्वत् १५९५ प्रति ठोलियोंका मन्दिर जयपुरमेंसे)

उत्तममज्झजहण्णं, तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठम्।
सगसत्तिय मासम्मि, चउस्सु पव्वेसु कायव्वम् ॥ ७८ ॥
सत्तमितेरसिदिवसम्मि, अतिहिजण भोयणावसाणम्मि।
भोत्तूण भुत्तणिज्जं, तच्छविकाऊण मुहसुद्धि ॥ ७९ ॥
पक्खालिऊण वयणं, करचरणं णियमिऊण तत्थेव।
पच्छा जिणिंदभवणं, गत्तूण जिणं णमंसित्ता ॥ ८० ॥
गुरुपुरउ किरियकम्मं वंदणपुव्वं कमेण काऊण।
गुरुसक्खियमुववासं गहिऊण चउव्वहं विहिणा ॥ ८१ ॥
वायणकहाऽणुपेहण, सिक्खावण चिंतणो वऊ गेहं।
णेऊण दिवससेसं, अव्वाण्हिय वंदणं किच्चा ॥ ८२ ॥
रयणि समयम्मि ठिच्चा, काऊसग्गेण णियंयसत्तोए।
पडिलेहिऊण भूमिं, अप्पपमाणेण संथारं ॥ ८३ ॥
दाऊण किंचिरत्तं-सइऊण जिणालये णियधरे वा।
अहवा सयलं रत्तिं, काउसग्गेण णेऊण ॥ ८४ ॥
पच्चूसे उट्ठित्ता, वंदणविहिणा जिणं णमंसित्ता।
तंह दव्वभावपुज्जं, जिणसुयसाहूण काऊण ॥ ८५ ॥

उत्तविहाणेण तहा, दिणहं रत्तिं पुणो विग मिऊण।
पारणदिवसम्मि पुणो पूयं काऊण पुव्वं च ॥ ८६ ॥
गंतूण णियय गेहं, अतिहि विभाग च तच्छ काउण।
जो भुंजई तस्य फुडं पोसहविहि उत्तमं होई ॥ ८७ ॥
जहं उक्कस्स तहं मज्झिमंपि, पोसह विहाण मुद्दिट्ठं।
णवर विसेसो सलिलं, छंडित्तावज्जए सेसं ॥ ८८ ॥
मुणिऊण गुरुवकज्जं, सावज्ज विवज्जियाणियारंभं।
जइ कुणइ तं पि कुज्जा, सेसं पुव्वेव णायव्वं ॥ ८९ ॥
आयंबिल निव्वियडी पयट्ठाणं च एयभत्तं वा।
जं कीरई तं णेयं, जहण्णयं पोसहविहाणं ॥ ९० ॥
सिर राहाणुव्वट्टणं गंधमल्लकेसाइदेह संकप्पं।
अण्णंपि रागहेउं, विवज्जिए पोसहदिणम्मि ॥ ९१ ॥

संक्षेप भावार्थ इस भांति जानना:—

प्रोषधका विधान तीन प्रकारसे कहा गया है अर्थात् उत्तम, मध्यम तथा जघन्य। जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार चारों पर्वियोंमें करे।

उत्तम विधि यह है—सप्तमी या तेरसके दिन अतिथियोंको भोजन कराके आप भोजन करे, मुख शुद्ध कर हाथ पैर धो श्री जिनेन्द्रके मन्दिरमें जावे, जिनेन्द्रको नमस्कार कर श्रीगुरुको वंदन करके उपवासको ग्रहण करे, तबसे विकथादि त्याग शास्त्र स्वाध्याय व तत्त्वविचारसे शेष दिनको बितावे। शामको वंदना व सामायिक करे। रात्रिको अपनी शक्ति हो तो सर्व रात्रि कायोत्सर्गसे पूर्ण करे अथवा अपनी देहके समान संथारे पर कुछ रात्रि शयन करे, जिनालयमें वा घरमें रहे। सवेरे उठकर वंदनादि करके देव, शास्त्र, गुरुकी द्रव्य और भावसे पूजा करे। फिर स्वाध्याय सामायिकादि धर्मकार्योंमें सर्व दिवस व पहली रात्रिकी तरह यह रात्रि भी पूर्ण करे। सवेरे उठ वंदनादि करके पूजन करे और फिर अपने

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

घर जाय, अतिथियोंको दान करके फिर आप भोजन करे। यह उत्तमप्रोपधकी विधि है।

मध्यम विधि—इसमें और उत्तम विधिमें केवल इतना ही फर्क है कि मध्यममें जलके सिवाय और सर्व पदार्थोंके भोजनका त्याग है याने जब प्यास लगे तब शुद्ध (प्राशुक) जल तो ले सक्ता है, और कुछ नहीं ले सकता; किन्तु धर्मध्यानादिक सर्व क्रियाएं उत्तमके समान करनी योग्य हैं।

जघन्य विधि—इसमें प्रोपधके दिन याने अष्टमी व चौदसको अंबिल कहिये इमली भात अथवा नयडि कहिये लूण विना केवल जलके साथ भात लेवे अथवा एक स्थानमें एकवार खाय सो एक स्थान करे या एक भुक्त करे वा एक ही वस्तु लेवे।

नोट—इस जघन्य विधिमें यह वाक्य गाथामें नहीं है कि शेष क्रिया पूर्ववत् करनी तौभी अर्थमे यही लेना योग्य है कि धर्मध्यान पहले ही के समान करे।

उपवासके दिन सिर मलके नहाना, उवटन लगाना, गन्ध सूँघना, माला पहनना तथा अन्य भी रागके बढ़ानेवाले कार्य्य करना मना है। केवल पूजाके निमित्त शुद्ध जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन सकता है।

उपवासके दिन अष्टद्रव्यसे पूजाका सर्वथा निषेध नहीं है। जो अपना मन सामायिक स्वाध्यायमें विशेष न लगे तो द्रव्य पूजा भी करे। पुरुषार्थसिद्धयुपायमें अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है:—

प्रातः प्रात्थाय ततः कृत्वा तात्कालिकं क्रियाकल्पम्।
निर्वर्त्तयेद्यथोक्तं जिनपूजां प्राशुकैर्द्रव्यैः॥ १५५॥

भावार्थ—प्रातःकाल उठकर तथा नित्य क्रिया कर यथाविधि श्री जिनेन्द्रकी पूजा प्रासुक अर्थात् अचित्त द्रव्योंसे करे।

उपवासके दिन और क्या क्या कार्य न करे ?

उपवास कर्त्ता निषेधयति:—

" शीतोष्णजले मंजनं, तैलादिमर्दनं, विलेपनं, भूषणं हारमुकुटकेयूरादि, स्त्रीसंसर्ग, युवतीनां मैथुनस्पर्शनपादसंवाहननिरीक्षणशयनोपवेशनवार्तादिभिः संसर्गः, गंधसुगंधप्रमुखधूपशरीरधूपनं केशवस्त्रादिधूपनं च दीपस्य ज्वलनं ज्वालनं करणं, सचित्तजलकणलवणभूम्यग्निवातकरणवनस्पतितत्फलपुष्पकुंपलछेदादिव्यापारान् परिहरति।'

(स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा सं० टीका)

भावार्थ—उपवास करनेवाला इन बातोंको न करे-" शीत व उष्ण जलसे मञ्जन करना, तेल आदि लगाना, विलेपन करना, हार, मुकुट, कड़े आदि गहने पहिनना, स्त्रियोंसे मैथुन व स्पर्श करना, पैर दबवाना व उनको देखना, उनकी शय्या पर बैठना व उनसे वार्तालाप आदि करना, सुगंधित धूपसे शरीर केश कपड़े आदिको धूआं करना, दीपकका जलाना व जलवाना, सचित्त जलकण, लवण, भूमि, अग्नि, पवनसेवन, वनस्पति व उसके फल फूल कोपल छेदन आदि व्यापारोंको करना।"

यद्यपि ऊपर रात्रिको दीपक जलाना मना है, परन्तु स्वाध्यायके अर्थ दीपकसे काम लेना पड़े तो उस दीपकसे त्रस हिंसा न हो इस प्रकार रखकर काम लेना। क्योंकि श्री पुरुषार्थसिद्धयुपायमें यह कथन है कि " रात्रिको स्वाध्यायसे निद्राको जीते।"

" शुचिसंस्तरे त्रियामां गमयेत्स्वाध्याय जितनिद्रः " ॥ १५४॥

प्रश्न—प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत जो व्रतप्रतिमावाला करता है तथा प्रोषधोपवास चौथी प्रतिमावाला करता है-इन दोनोंमें क्या अन्तर है ?

इस विषयमें स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा संस्कृत टीकामें इस प्रकार चतुर्थ प्रतिमाके प्रकरणमें कथन है:—

९

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

"सप्तमी त्रयोदश्यां च दिवसे मध्याह्ने भुक्त्वा उत्कृष्टप्रोषधव्रती चैत्यालये गत्वा प्रोषधं गृह्णाति, मध्यमप्रोषधव्रती तत् संध्यायां प्रोषधं गृह्णाति, जघन्यप्रोषधव्रती अष्टमीचतुर्दशीप्रभाते प्रोषधं गृह्णाति, प्रोषधे आरम्भं गृह हट्ट व्यापार क्रय, विक्रय, कृषि, मसि, वाणिज्यादि रत्थं आरम्भं न करोति। प्रोषधप्रतिमाधारी अष्टम्यां चतुर्दश्यां च प्रोषधोपवासम् अंगीकरोति। व्रते तु प्रोषधोपवासस्य नियमो नास्ति।"

भावार्थ—प्रोषधव्रती ३ प्रकारसे प्रोषधोपवास करे। उत्कृष्ट तो सप्तमी या त्रयोदशीको मध्याह्नमें भोजन करके चैत्यालयमें जाय प्रोषध धारण करे। मध्यम प्रोषधव्रती सप्तमी या तेरसकी संध्याको ग्रहण करे तथा जघन्य अष्टमी व चौदसके प्रभातकाल प्रोषध लेवे अर्थात् इस मतसे १६ प्रहर, १२ प्रहर, व ८ प्रहर ऐसे ३ प्रकारका प्रोषध व्रत हुआ। ८ प्रहरका प्रोषधवाला भी पिछली रात्रिको जलादि ग्रहण नहीं करता है, शाममें ही कुल्ला करता है, परन्तु आरम्भादि रात्रिको नहीं त्यागता है। इससे प्रोषध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रोषधमें आरम्भ घरका व बाजारका लेना देना, किसानी, लेखन, वाणिज्य आदि सब प्रारम्भ नहीं करना होता है, केवल धर्म-कार्योंमें ही प्रवर्तन करना होता है।

प्रोषधप्रतिमाधारी तो अष्टमी व चौदसको प्रोषधोपवास अवश्य करे, परन्तु व्रतप्रतिमाके लिये प्रोषधोपवासका नियम नहीं है, यही फर्क है। अर्थात् व्रतप्रतिमाके यह व्रत शिक्षा रूप है। जैसे कोई उम्मेदवार किसी दफ्तरमें रोज जाता है, काम करता है, परन्तु जबतक वह वेतनवाला चाकर नहीं हुआ है तो उसके लिये यह खास पाबन्दी नहीं कि वह जावे ही जावे। किसी दिन कारण पड़े तो नहीं जावे व देर होजावे तथा जाकर काम करे सो मनकी इच्छाके अनुसार करे। उसके लिये यह पाबन्दी नहीं है कि इतना काम करना ही पड़ेगा। इसी तरह व्रतप्रतिमावाला हर

अष्टमी व चौदसको अपनी शक्तिके अनुसार तीन प्रकारमेंसे किसी भेद रूप उपवास करे, परन्तु यदि कोई विशेष कारण आ जाय तो कभी नहीं भी करे, तथा जिस विधि व जितने समयके लिये कहा है उस विधि व समयमें कभी करे। जैसे व्रती संध्याको कुल्ला करके अष्टमीके दिन एक वार लघुभोजन तक करे तो कोई हर्ज न होगा, तथा अष्टमीका दिन धर्मध्यानमें वितावे, परन्तु कोई विशेष घरका व व्यापारका अत्यन्त जरूरी आरम्भ आ जावे तो कर भी लेवे। इसके पूरा २ नियम नहीं है। परन्तु जहांतक बने आप परिणामोंको चढ़ानेका ही उद्यम रक्खे, ढीला न होने दे।

प्रोषधोपवास शब्दकी व्याख्या श्रीपूज्यपादस्वामी कृत श्री सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थमें इस प्रकार है:—

प्रोषधशब्दः पर्व पर्यायवाची। शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः। चतुर्विधाऽऽहार परित्यागः इत्यर्थः। प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः। स्वशरीर-संस्कारकारणस्नानगन्धमाल्याभरणादिविरहितः शुभावकाशे साधु-निवासे, चैत्यालये, स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथा श्रवण श्रावण, चिन्तवावहितान्तरङ्गः सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः॥

भावार्थ—प्रोषधके अर्थ पर्वके हैं। शब्द आदि विषयोंके लेनेमें इन्द्रियोंका रुचिरहित होकर जिसमें आकर बस जांय याने ठहर जांय सो उपवास है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग कर [illegible]

रहना

आहार

व चौ

सिंगार

शुभ

नियत प्रोषधोपवासवाले कमरेमें धर्मकथाके विचारमें अपने मनको लगाये हुए बैठे तथा आरम्भ व्यापारादि न करे।

(अध्याय ७, सूत्र ४२)

इस शिक्षाव्रतको भलेप्रकार पालनेके लिये इसके पांच अतीचार बचाने चाहिये।

सूत्र—अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्ज्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ (त० सू० अध्याय ७)

१-अप्रत्यवेक्षितअमार्ज्जितउत्सर्ग—विना देखे और विना कोमल वस्त्र व पीछीसे झाड़े, पुस्तक, चौकी, उपकरण व अपने शरीर व वस्त्रको भूमि आदिपर धरना। व्रती कोमल रूमाल व सूतके कोमल धागोंकी बनी पिंच्छकासे स्थानको देखते हुए झाड़ लेवे, फिर कोई चेतन व अचेतन पदार्थको वहां रक्खे।

२-अप्रत्यवेक्षितअप्रमार्ज्जितआदान—विना देखे और विना झाड़े पदार्थोंको उठाना।

३-अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण—विना देखे और विना झाडे संथारा, चटाई आदि बिछाना।

४-अनादर—उपवासमें आदरभाव याने उत्साहका न होना, बडी कठिनतासे समयको पूरा करना।

५-स्मृत्यनुपस्थान—प्रोषधोपवासमें करने योग्य क्रियाओंको भूल जाना। जैसे जो नित्य स्वाध्याय जाप पाठ आदि करता था उसको करनेकी याद न रहना, प्रमाद व आलस्यमें ऐसे बेखबर हो जाना कि करने योग्य धर्मकार्यकी सम्हाल न रखनी तथा अष्टमी व चौदस तिथिका खयाल न रखना।

प्रोषधव्रती व्रतप्रतिमामें शिक्षारूप तथा प्रोषधोपवास प्रतिमामें नियमरूप इन अतिचारोंको बचावे। व्रतप्रतिमावालेके यदि अतीचार लगें तो उस श्रेणीकी अपेक्षा अयोग्य न होगा किंतु प्रतिमारूप

पालनेवाला अतिचारोंको अवश्य बचावे। यदि कदाचित् कोई लग जावे तो उसका प्रायश्चित्त लेवे-प्रतिक्रमण करे।

प्रश्न—यदि कोई ऐसी चाकरी करता है कि जिससे उसको अष्टमी व चौदसके दिन छुट्टी नहीं मिल सकती और यह भी उससे सम्भव नहीं है कि आजीविकाको छोड़ दे, तो इस व्रतको कैसे पाले?

उत्तर—जहांतक बने वह अपने स्वामीसे प्रार्थना करके महीनेमें इन चार दिनोंकी छुट्टी ले लेवे और उसके बदलेमें दूसरे दिनोंमें काम अधिक कर देवे, याने उसके दिलमें तसल्ली कर देवे कि आपके काममें कोई हर्ज न पड़ेगा।

जैसे कोई सरकारी दफ्तरमें नौकर है, वहां प्रति रविवारको छुट्टी होती है, तो उसको चाहिये कि इस बातकी कोशिश करके अफसरसे कह दे कि मैं रविवारको दफ्तरमें हाजिर होकर काम करूंगा मुझे अष्टमी व चौदसकी छुट्टी दी जाय।

यदि किसी प्रकारसे भी इस कोशिशमें सफलता न हो तो उपवास तो वह करे ही, परन्तु दफ्तरमें कामके सिवाय अन्य समय धर्म-कार्योंमें ही बितावे तथा दफ्तरके काममें भी न्याय व सत्यतासे उस कार्यको धर्मका साधक जान लाचारीसे करे। तथा जब रविवार आवे तब उसके बदलेमें उससे अधिक समय धर्म-कार्यमें खर्च करे। परन्तु यदि किसीकी क्षत्रीकर्मकी चाकरीसे आजीविका हो तो वह कदापि उस दिन हिंसाका काम युद्ध आदि न करे।

यदि छुट्टी न मिले तो जो जो हाजरीका समय है उसमें हाजिर हो ले। स्वतंत्र आजीविका करनेवाले सुगमतासे अष्टमी व चौदसको धर्मध्यान कर सकते हैं। पराधीन व्यक्तियोंको यथाशक्ति समय धर्म कार्यमें ही लगाना योग्य है। यदि समय आजीविकाका कर्त्तव्य बजानेमें लगाना पड़े तो निन्दा, गर्हा करते ऐसा करना,

परन्तु इसके बदलेमें दूसरे किसी दिन इससे अधिक समय तत्त्व विचार, जाप, पाठ, स्वाध्यायादिमें बिताना योग्य है।

केवल आजीविकाके बहानेसे व्रत पालनेके उत्साहको भंग नहीं करना चाहिये। और यह भले प्रकार ध्यानमें रखना चाहिये कि केवल भूखा रह लङ्घन करनेका नाम उपवास नहीं है। जब विषय कषायोंको रोका जावे तब ही संयम होता है और तब ही उपवास करनेसे लाभ है।

जिनमतमें ऐसे भूखे रहनेको व कायक्लेश करनेको तप नहीं कहा है, जिससे परिणामोंमें आर्त्तध्यानकी वेदना पैदा हो जावे। समतारूपी रसायनका लाभ जिस उपायसे हो उस उपायको हर्ष-पूर्वक करना तथा उस उपायके लिये खानेपीनेका त्याग कर कुछ कालके लिये निश्चित रहना सो ही उपाय व साधन इस साधकके लिये कार्यकारी है।

अपनी शक्ति न होनेपर कई दिनोंका उपवास करके बीमारकी तरह पड़े रहना और धर्म-साधनमें अन्तराय डालना कदापि उचित नहीं है। इसके विरुद्ध यह भी सोचना प्रमादयुक्त तथा अनुचित है कि उपवाससे हम कमजोर हो जावेंगे। इसलिये हमको कभी उपवास करना ही नहीं चाहिये। यदि धर्म-साधन और आत्म-विचारमें अपने उपयोगको विशेष लगानेका अभिप्राय है तो ऐसा सोचना सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि आरम्भ छोड़कर धर्मध्यानमें लय रहना हमारे चित्तको शांति व आनन्द प्रदान करता है तथा शरीरको भी प्रसन्न रखता है।

आहार न करनेसे भीतरका शरीर सब दुरुस्त हो जाता है। जो मैला आदि इधर उधर जमा रहता है सो सूख जाता है। आठवें दिन उपवास करना शरीरकी निरोगताके लिये बड़ा भारी उपाय है।

जैसे किसी कल मशीनको रोज चलाते हैं और उसको ८ वें दिन साफ करनेसे उसके भीतरका मैल सब निकल जानेसे वह फिर नये रूपसे व्यवहारके लायक होजाता है, उसी तरह शरीर-रूपी मशीनको ८ वें रोज आराम देना चाहिये अर्थात् उसके अन्दर नया मसाला रूपी भोजन न डालकर उसको साफ होने देना चाहिये, तथा उससे रोजके समान सांसारिक कार्य न लेना चाहिये, किन्तु धार्मिक कार्योंमें ही उसको चलाना चाहिये। इससे मन भी प्रौढ़ होता है।

जो मन ८ दिन जगत्के जंजालोंसे खेदखिन्न है वह मन यदि उन विचारोंको हटाकर एक दिन केवल शांति और धर्मके ही विचारोंको करे तो उसका बड़ा भारी विश्राम हो और फिर अधिक बलिष्ठ हो जावे। आराम देना सुस्त पड़े रहनेका नाम नहीं है, परन्तु अपने उपयोगको एक जातिके कार्य्यसे फेरके दूसरी जातिके कार्य्यमें लगाना ही आराम लेना है।

उपवास अनेक रोगोंकी औषधि है। बहुतसे रोग नियमित कई दिनके उपवाससे दूर हो जाया करते हैं। प्रसिद्ध जर्मनीके डाक्टर लुई कोहेनका कहना है कि उपवास करना प्रकृतिके सुधारनेके लिये बहुत जरूरी है तथा पशुओंमें तो स्वभावसे ही यह आदत प्रगट होती है। जैसे सांप एक दफे पूरी खुराक लेनेके बाद कई सप्ताह तक खाना नहीं खाते, हिरण और खरगोस कई सप्ताह व महिनों तक बहुत ही कम भोजनपर बसर करते हैं।

उपवास करनेके समयकी मर्यादा अभ्याससे बढ़ जाती है। अभ्यासके बलसे एक मनुष्य आठ आठ दस दस उपवास बड़े आरामसे कर सकता है। जो मोक्षमार्गमें उत्सुक हैं और आत्मा-के विशेष रुचिकर हैं वे कई उपवास बिना किसी कष्टके करके आत्माके भेदविज्ञानमें अपनी परिणतिको रमाते हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

४-चौथा शिक्षाव्रत—अतिथिसंविभाग व वैयावृत्य।

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ ११ ॥

अन्वय—गुणनिधये अगृहाय तपोधनाय विभवेन धर्माय अनपेक्षितोपचारोपक्रियं दानं वैयावृत्यं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके धारी घररहित तपस्वीको विधि करके धर्मके अर्थ प्रत्युपकार कहिये किसी बदलेकी इच्छा न करके जो दान देना सो वैयावृत्य है। इसका दूसरा नाम अतिथि-संविभाग है। इसकी व्याख्या इस प्रकार है:—

"संयमं अविनाशयन् अतति इति अतिथि। अथवा न अस्य तिथिः अस्ति इति अतिथिः अनियतकालागमनः इत्यर्थः।

तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं तं विजानीयात शेषमभ्यागतं विदुः॥ (सर्वार्थसिद्धि)

भावार्थ—संयमकी विराधना न करता हुआ जो विहार करे सो अतिथि है अथवा जिसके तिथि नहीं है याने किसी नियत कालमें जिसका आगमन नहीं है, जिस महात्माने सर्व तिथि और पर्वके उत्सवोंको त्याग दिया है उसे अतिथि जानो। इनके सिवाय अन्यको अभ्यागत कहते हैं। प्रयोजन यह है कि गृहस्थके समान अष्टाह्निका आदि पर्वोंमें विशेष धर्म करनेवाले और अन्य दिनोंमें कम धर्म पालनेवाले नहीं हैं, किन्तु सदा ही सामायिक व छेदोपस्थापना संयममें लीन हैं ऐसे जो सर्व परिग्रहत्यागी दिगम्बर मुनि हैं उनको अतिथि कहते हैं।

अतिथये संविभागः कहिये अतिथिको अपने ही उद्देशित आहारमेंसे विभाग करके देना सो अतिथि-संविभाग है। इसीको दान भी कहते हैं।

"अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं"   —(उमास्वामी).

अपने और परके उपकारके अर्थ अपने द्रव्यका जो त्याग करना सो दान है। दान देनेसे अपना भला तो यह होता है कि लोभादि कषायोंकी मन्दतासे पुण्यबन्ध होता है तथा परोपकार इस अपेक्षा होता है कि साधुगण अपने शरीरकी रक्षा कर मोक्ष-मार्गमें सुखसे गमन कर सकते हैं अथवा क्लेशित जीवोंका दुःख दूर होकर उनके द्रव्य प्राणोंकी रक्षा होती है। इस दानके लिये —

"विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः।" —(उमास्वामी)

विधि, द्रव्य, दाता और पात्र इन चार बातोंको समझना चाहिये। इन चारोंकी जिस कदर उत्तमता होगी उसी कदर फल अधिक ही होगा। दान देनेके लिये ९ प्रकारकी विधि है जो कि देनेवालेके आधीन है।

संग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामं च।
वाक्कायमनःशुद्धिरेषणशुद्धिश्च विधिमाहुः ॥ १६८ ॥
(पु० सि०)

भावार्थ-१-संग्रह—प्रथम श्री मुनिराजको पड़गाहना याने शुद्ध वस्त्र पहने हुए और प्राशुक शुद्ध जलका कलश लिये हुए अपने द्वारपर णमोकार मन्त्र जपता पात्रकी राहमें खड़ा रहे।

उस समय घरमें अपनी रसोई तैयार होगई हो याने रसोई किये जानेका कोई आरम्भ घरमें न होता हो, जैसे चक्कीमें पीसा जाना, उखलीमें कूटा जाना, आगका जलना, व जलाया जाना व आगपर किसी चीजका पकाया जाना। क्योंकि सचित्तका आरम्भ होते देखकर मुनि लौट जायंगे। रसोई तैयार करके चूल्हा ठंडा कर दिया जावे और सर्व सामान शुद्ध स्थानमें बना रक्खा रहे। राह देखते हुए जब मुनि नजर पड़ें और उस घरके पास आवें तब वह नमोस्तु कहके झुकता हुआ कहे-"आहार पानी शुद्ध, अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ" इसका प्रयोजन इस बातके दिखलानेका है कि हमारे यहां आहार व पानी सब शुद्ध दोषरहित है। आप कृपा करके यहां पधारें पधारें। तीन बार कहनेका प्रयोजन यह

है कि हमारी अत्यन्त भक्ति है, आप अवश्य कृपा करें। इसका नाम संग्रह है।

२-उच्च स्थान—घरके भीतर ले जाकर किसी ऊंचे स्थान (जैसे ऊँचा पटा व काष्ठकी चौकी आदि) पर विराजमान करे और विनय सहित खड़ा हो।

३-पादोदक—शुद्ध अचित्त जलसे पैरोंको धोवे।

४-अर्चनं—अष्ट द्रव्योंसे भावसहित पूजन करे, अर्घ चढ़ावे। पूजनमें बहुत समय न लगावे, नहीं तो आहारका समय निकल जावेगा। ५ व ७ मिनटमें पूजन कर ले और मुनिका दर्शन कर अपनेको कृतार्थ माने।

५-प्रणामं—भावसहित नमस्कार करे।

६-वाक्शुद्धि—जिस समयसे मुनिको पड़गाहा जाय उस-समयसे लेकर जबतक श्रीमुनि घरसे विदा न हों तबतक आप भी वचन, धर्म व न्याययुक्त मतलबके बहुत मिष्टता व शांततासे कहे और घरके अन्य जन भी जो वचन जरूरी हों सो कहें, नहीं तो मौन रक्खें। उस समय घरमें कोलाहल, दौड़धूप व घबड़ाहट किसी प्रकारकी न हो। ऐसी शांतता हो कि मानो यह एक जनरहित स्थान है।

७-कायशुद्धि—दान देनेवालेका शरीर शुद्ध होना चाहिये याने मलमूत्र आदिकी बाधासहित व रुधिर, पीप बहनेवाले घाव-सहित व अन्य किसी तीव्र रोगसहित न हो किंतु वह स्नानादि किये हुए धोये और उजले वस्त्र पहने हो तथा अपने हाथोंसे कमरके नीचेका अंग व कपड़ा न छुए-अपने हाथ ऊपर ही रक्खें। यदि हाथ छुए जांयगे तो मुनि भोजन न करके लौट जांयगे। इसलिये घरमें जो पुरुष, स्त्री व बालक मुनिके सन्मुख आवें उनके शरीर अपवित्र न हों।

८-मनःशुद्धि—दाताका मन धर्म-प्रेमसे वासित हो, मनमें क्रोध, कपट, लोभ, ईर्षा, आकुलता व शंकितता न हो। बहुत शांत।

मन रक्खें। मनमें आचार्य उपाध्याय और साधुके गुणोंको विचारता हुआ ऐसे साधुकी भक्तिमें अपने जन्मको धन्य माने-अशुभ विचारोंको न आने देवे।

९-एषणाशुद्धि--भोजनकी शुद्धता हो जिसमें निम्न चार बातोंकी शुद्धतापर ध्यान दिया जावे।

१-द्रव्यशुद्धि—जो अन्न, दूध, मीठा आदि रस व पानी रसोईके काममें लिया जाय वह शुद्ध मर्यादाका हो और लकडी घुनरहित देखके काममें ली जाय तथा जो रसोई बनानेमें प्रवर्ते उसका शरीर भी शुद्ध होना चाहिये। वह स्नान करके धोये हुए साफ उजले कपड़े पहने हो तथा अपने शरीरपर कोई हड्डी चमड़े आदिकी अशुद्ध चीज न हो। जैसे हाथीदांतके व सरेसके बने विलायती चूड़े, सीपके बटन, झूठे मोती, ऊन व बालके कपड़े आदि। कपड़े जहांतक हो बहुत अधिक न हों।

२-क्षेत्रशुद्धि—रसोई बनानेकी जगह शुद्ध हो याने उसमें रसोईका ही काम किया जाय। जितना रसोईघर रसोई बनाने व जीमनेका हो वह रोज कोमल बुहारीसे साफ किया जाय तथा पानीसे धोया जाय या मिट्टीसे लीपा जाय। गोबर पशुका मल है उससे नहीं लीपना चाहिये; क्योंकि उसमें सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति हो सकती है। तथा उस चौकेभरके ऊपर चन्दोवा चाहिये, ताकि रसोईमें कोई जीव जन्तु व जाला आदि न गिर पड़े। इस क्षेत्रकी हद-बन्दी हो ताकि अशुद्ध स्त्री, बालक व पुरुष उस चौकेमें घुस न जावे। यदि शुद्ध वस्त्रधारी स्त्री व पुरुष चौकेमें जावे तो प्राशुक जलसे पग धोकर जावे और जितनी दफे बाहर आवे पग धोए विना भीतर न जावे। श्रावकको घरमें अचित्त पानीसे ही व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि सचित्तका व्यवहार देखकर मुनि भोजन न करेंगे।

३-कालशुद्धि—ठीक समयपर रसोईको तैयार करके रखना

व ठीक समयपर ही मुनिको दान देना। सामायिकके समयके पहले २ ही सर्व निबटा देना याने ११ बजेके पहले ही।

४–भावशुद्धि—दाताको यह कभी भाव न करने चाहिये कि आज मुनि महाराजको पड़गाहना है इस कारण ऐसी २ रसोई बनाऊँ, क्योंकि मुनिके लिये मैं कुछ बनाऊँ ऐसे संकल्पसे बनी हुई रसोईके आरम्भका दोष दाताको लगता है। तथा यदि ऐसा मुनिको भ्रम हो जाय कि मेरे लिये यह रसोई खास तौरसे की गई है तो वे कभी भोजन न करेंगे। दाता अपने रोजके अनुसार ही खास अपने व अपने कुटुम्बके लिये जितनी रसोई रोज बनती थी उतनी ही बनवावे। आज मुनिको दान करना है इससे ज्यादा रसोई बनवाऊँ ऐसा संकल्प न करे। अपने भाव ऐसे रक्खे कि जो मैं खाता हूं उसमेंसे विभाग करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा जान हर्षपूर्वक शुद्ध भावसे दान दे–सो भावशुद्धि है।

द्रव्यविशेष।

जो कोई श्रावक मुनिको दान करनेकी इच्छा करके नाना प्रकारके व्यंजन मुनिको प्रसन्न करनेकी कामनासे बनवाता है वह उद्देशिक भोजनका दान कर पापका बन्ध करता है। जो भोजन रसोईमें अपने यहां तैयार हो उसमेंसे भी वह भोजन मुनिको दो जो उनके शरीरको हानिकारक न हो, किन्तु उनके संयमको बढ़ानेवाला हो, जैसा कि कहा हैः—

रागद्वेषासंयममदद‌ुःखभयादिकं न यत्कुरुते।
द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धिकरम्॥ १७०॥

अर्थात् ऐसा द्रव्य भोजनमें देना चाहिये जो मुनिके राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, रोग आदिको पैदा न करे, किंतु जो सम्यक् तप और स्वाध्यायको बढ़ानेवाला हो, याने गरिष्ट भोजन, आलस्य लानेवाला भोजन कभी न दो। जैसे आपके यहां मूंगकी, उड़दकी दाल, भात, रोटी गेहूंकी व बाजरेकी व

लड्डू चनेके तय्यार हैं तो आप मुनि महाराजके शरीर व ऋतुको देखकर ऐसा भोजन दो जो शीघ्र पचे और हलका हो, याने आप मूंगकी दाल, गेहूंको रोटी व भात अधिक दो. लड्डू व बाजरेकी रोटी व उड़दकी दाल बहुत कम दो या न दो।

दातृविशेष।

दानका देनेवाला बहुत विचारवान होना चाहिये। छोटे बालक व नादान स्त्री व असमर्थ निर्बल रोगी मनुष्यको दान देनेके लिये तैयार नहीं होना चाहिये। ऐसे जीव केवल दानको देते हुए देख-कर उसकी अनुमोदना कर सकते हैं।

दातामें मुख्यतासे ७ गुण होने चाहिये—

" ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्नि-कपटानसूयत्वम्।
अविषादित्वमुदित्वे निरहङ्कारित्वमिति हि
दातृगुणाः ॥ १६९ ॥ (पु० सि०)

भावार्थ—१-ऐहिक फलानपेक्षा—दानका देनेवाला लौकिक फलकी इच्छा न करे कि मुझे धन व पुत्र व यशका लाभ हो।

२-क्षांतिः—क्षमाभाव रक्खे, यदि दानके समय कोई क्रोध आनेका कारण भी बने तो क्षमाभावसे उसे रोके।

३-निष्कपटता—कपट व छल भावको न करे, छलसे अशुद्ध वस्तुका दान न करे व अन्य किसी प्रकारका कपट मनमें न रक्खे।

४-अनसूयत्व—दान देते हुये अन्य दातारोंसे ईर्षाभाव न रक्खे कि मैं अन्योंसे बढ़ चढ़ कर औरोंको लजाकर दान करूं।

५-अविषादित्व—दानके समय किसी प्रकारका रंज, शोक न करे।

६-मुदित्व—दान देते समय हर्षित भाव रक्खे।

७-निरहंकारित्व—दातार इस बातका अहंकार न करे कि मैं बड़ा दानी हूं, मेरे तो पात्रका लाभ सुगमतासे हो जाता है, मैं पुण्यात्मा हूं, अन्य तो पापी हैं।

शास्त्रके भावको जाननेवाला दातार हो। जो केवल इसी भावसे दान करे कि मेरे निमित्तसे इनके रत्नत्रय पालनमें सहायता होगी सो मेरा द्रव्य आज सफल हुआ-मोक्ष साधनमें परिणत हुआ। धन्य है मुनि! मैं कब ऐसे रत्नत्रयको पालने योग्य हूंगा। ऐसा हर्षायमान होता हुआ अपनेको कृतार्थ और धन्य माने।

पात्रविशेष।

जो दान लेने योग्य हो उसको पात्र कहते हैं। पात्र तीन प्रकारके होते हैं—

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मोक्षकारणगुणानाम्।
अविरतसम्यग्दृष्टिर्विरताविरतश्च सकलविरतश्च॥

॥ १७१ ॥ (पु० सि०)।

भावार्थ—जिनमें मोक्षप्राप्तिके साधन जो सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्र आदि गुणोंका संयोग हो अर्थात जिनमें यह गुण पाए जावें वे पात्र हैं। ऐसे पात्र उत्तम, मध्यम, जघन्यके भेदसे तीन प्रकारके हैं:—

सर्व परिग्रहके त्यागी महाव्रतधारी मुनि तो उत्तम पात्र हैं। व्रतरहित, परन्तु सम्यक्त कहिये जिन धर्मकी सच्ची श्रद्धासहित जो गृहस्थी श्रावक हैं वे जघन्य पात्र हैं तथा इनके मध्यमें जितने भेद हैं वे सब मध्यम पात्र हैं याने व्रतके धारी सर्व भेदरूप श्रावक मध्यमपात्र हैं। इनमें भी उत्कृष्ट क्षुल्लक ऐलक हैं व अनुमति त्यागी श्रावक हैं। मध्यम ब्रह्मचारीसे लेकर परिग्रहत्यागी-तक हैं और जघन्य श्रावकसे ले रात्रिभोजन त्यागी तक श्रावक तक हैं। ये सर्व ही दान देनेके योग्य धर्मके स्थान हैं।

दान करनेकी रीति।

गृहस्थी श्रावक रसोई तैयार होनेपर रोज घरके द्वारपर खड़ा रहता है और यदि मुनि आ जाएं तो उन्हें आहार दे। यदि मुनिका लाभ न हो और उत्कृष्ट श्रावकका लाभ हो तो उनको

दान दे. यदि उत्कृष्टका लाभ न हो तो मध्यमका सम्बन्ध मिला, दान देवे। यदि मध्यमका लाभ न हो तो जघन्य व्रतीको दान दे। यदि जघन्य व्रतीका भी लाभ न हो तो जघन्य पात्र अव्रती जैन धर्मके श्रद्धालुको दान देवे। क्षुल्लक व ऐलक तो अकस्मात् आजाते हैं तब ही उनको भक्तिपूर्वक आहार दे सकता है।

अनुमति त्यागी श्रावक भोजनके समय बुलाये जानेपर आहारके लिये चले जाते हैं। शेष नीचेके सर्व जैनी पहले निमन्त्रण देनेपर व भोजनके समय बुलाने पर भी आहारार्थ आ सकते हैं। सर्वको दान विनय पूर्वक ही देना योग्य है। यदि किसी भी पात्रका लाभ न हो तो अपनेको निन्दता हुआ कोई रस व कोई वस्तुको त्यागता तथा दुःखित भुखितके दान करनेको भोजन अलग रख या उसको जिमा आप भोजन करता है।

इस चौथे शिक्षाव्रती श्रावकको नित्य शुद्ध रसोई बनानी चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार कमसे कम रोटी व आधी रोटी भी दान कर फिर भोजन करना चाहिये।

आजकल बहुधा जैनी जैनीद्वारा निमन्त्रणको स्वीकार करनेमें अपनी लज्जा समझते हैं सो नहीं चाहिये। परस्पर एक दूसरेको दान कर धर्मकी भावनाको बढ़ाना चाहिये। धर्मसाधनकी इच्छासे भक्तिपूर्वक कोई अपनेको निमन्त्रण दे तो उसको कभी इन्कार न करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उस दातारके परिणामोंको आनन्द न होकर खेद होगा।

इस चौथे शिक्षाव्रतके विशेषकर मुनियोंको व उत्कृष्ट श्रावकको दान करनेकी अपेक्षा पांच अतीचार हैं उनको बचाने चाहिये—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥
(उमास्वामी)

१-सचित्तनिक्षेप—जीव सहित जो वनस्पति जैसे हरे पत्ते आदिका उसपर दान योग्य भोजनका रखना।

२-सचित्तापिधान—सचित्त वनस्पति हरे पत्ते आदिका व पुष्प आदिसे किसी भोजनपानको ढकना।

३-परव्यपदेश—आप पात्रको पड़गाह कर भी स्वयं दान न देकर दूसरेको दान देनेको कह कर आप अपने कामपर चले जाना।

४-मात्सर्य—दूसरे दातारोंसे ईर्षाभाव रखते हुए दान देना।

५-कालातिक्रम—दानके समयको उल्लंघन कर देना। पात्रको पड़गाहकर भोजनदानमें अधिक विलम्ब लगाना जिससे पात्रको सामायिक करनेकी चिन्तासे भोजन लेनेमें आकुलता व शीघ्रता करनी पड़े।

दातार इन पांच दोषोंको बचाता है जिससे पात्रको शुद्ध दान समतासे करा सके।

दानके चार भेद हैं—आहार, औषधि, अभय और विद्या (ज्ञान)। गृहस्थी श्रावक इन चारों ही प्रकारका दान पात्रोंको करे याने भोजन देवे, औषधि बांटे, रहनेको स्थान दे व विद्या पढ़ानेमें मदद देवे। ये चारों प्रकारके दान करुणादानकी अपेक्षासे सर्वको करे (जिनको इनकी आवश्यकता हो)।

इस ही वैयाव्रतमें श्री अर्हंतकी पूजा भी गर्भित है जैसा कि श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी कहते हैं—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणं।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादाहतो नित्यं॥ ११९॥

अन्वय—कामदुहिकामदाहिनि देवाधिदेवचरणे परिकरणं सर्व-दुःखनिर्हरणं आदृतः नित्यं परिचिनुयात्।

अर्थ—भव्यकी इच्छाके पूर्ण करनेमें निमित्त तथा कामबाणके भस्म करनेवाले देवोंके अधिपति श्री अरहन्तदेवके चरणोंमें पूजन करना सर्व दुःखोंको हरनेवाला है, इसलिये आदरपूर्वक नित्य पुजन करनी योग्य है। श्रावकको योग्य है कि अष्ट द्रव्योंसे अपने भावोंको लगाकर श्री अरहंतकी पूजा करे। यह पूजा महान पुण्य

बन्ध करनेके सिवाय आत्माको वैराग्य भावनामें तथा मुक्तिके प्रयत्नमें दृढ़ करनेवाली है।

इस प्रकार ये १२ व्रत व्रतप्रतिमा याने श्रेणीमें पालने योग्य हैं। इसके सिवाय इस श्रेणीवालेको और भी कई बातोंके विचार करनेकी आवश्यकता है। यह व्रती १२ व्रतोंमें ५ अणुव्रतोंके अतिचारोंको अवश्य बचानेकी पूरी सम्भाल रखता है तथा ७ शीलके दोषोंको यथाशक्ति बचाता है अर्थात् जैसे परिणाम चढ़ते जांये उनको बचाता जाता है-नियमरूप नहीं है। यदि ५ व्रतोंके पालनेमें कोई दोष लग जाय तो उसका दण्ड याने प्रायश्चित्त लेना है, जिससे आगामी वह दोष न लगे।

रात्रिभोजन-त्यागी।

पण्डित आशाधरजीके मतमें इस व्रतको चारों प्रकारका भोजन रात्रिको नहीं करना चाहिये। जैसा कहा है:—

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धाऽपि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत् ॥ २४ ॥
योऽत्ति त्यजन् दिनाद्यन्तमुहूर्तौ रात्रिवत्सदा।
स वर्ण्यतोपवासेन स्वजन्मार्द्धं नयन् कियत् ॥ २९ ॥

अर्थ—अहिंसा व्रतकी रक्षा और मूलव्रतकी उज्वलताके लिये धीरपुरुष रात्रिको चारों ही प्रकारका भोजन सदा मन, वचन, कायसे त्यागे जो १ महूर्त याने २ घड़ी याने ४८ मिनट दिन बाकी रहे तबसे भोजन छोड़े और जब इतना ही दिन चढ़ जाय तबतक भोजन न करे, सो अपना आधा जन्म उपवासमें बितावे।

इस विषयका विशेष खुलासा रात्रिभोजन त्याग प्रतिमाके स्वरूपसे विदित करना योग्य है।

मौनसे अन्तराय टाल भोजन।

चूंकि यह व्रती मोक्ष-मार्गमें लवलीन है, आध्यात्मिक उन्नतिको बढ़ाना चाहता है, इसलिये अपने शरीर और मनका व्यापार

इसप्रकारसे करता है जिससे शरीरमें कभी कोई रोग न हो तथा मनमें अपवित्रता, लोभ, इन्द्रिय लम्पटता न आवे। अपने आत्म-कल्याणमें इसप्रकार वर्तते हुए कुटुम्बादिके पोषणके निमित्त यथा-संभव आजीविका करता है। परन्तु अपना जीवन समय और नियमकी पाबन्दीसे बिताता हुआ व्यर्थ अपने अमूल्य समय और शक्तिके उपयोगसे अपनेको रक्षित करता है और यथार्थ उपयोगमें लगा प्रमाद आलस्यको जीतता हुआ एक बड़ा विचारशाली व्यक्ति हो जाता है।

गृहस्थी श्रावक व्रती भोजन करते हुए मौन रखता है।

प्रश्न—मौन रखनेसे क्या लाभ है?

भ्रूनेत्रहुंकारकरांगुलीभिर्गृद्धिप्रवृत्त्यै परिवर्ज्य संज्ञाम्।
करोति भुक्तिं विजिताक्षवृत्तिः स शुद्धमौनव्रतवृद्धकारी॥
सन्तोषं भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दर्श्यते।
संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते॥
लौल्यत्यागात्तपोवृद्धिरभिमानस्य रक्षणम्।
ततश्च समवाप्नोति मनःसिद्धिं जगत्त्रये॥
वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता।
आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्वलम्॥
पदानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिना मौनकारिणा॥

—आशाधर।

भावार्थ—भोजन करते समय मुखसे कुछ न कह मौन रक्खे तथा अपनी भौंहोंसे, आंखोंसे, हुंकारसे, हाथकी अंगुलीसे इशारा भी न करे; क्योंकि कोई इष्ट भोग्य चीज मांगनेसे अपने भोजनमें गृद्धता होती है। मौन रखनेसे अपनी जिह्वा इन्द्रिय पर विजय प्राप्त होती है, परन्तु जो कोई पात्रमें कुछ देता हो और अपनी इच्छा लेनेकी न हो तो उसके निषेधके लिये इशारा करना मना नहीं है। जैसे कहा है:—

"तन्निषेधार्थं तु हुंकारादिना संज्ञा करणेऽपि न दोषः."

—आशाधर।

अर्थात् भोजनके मना करनेके लिये हुंकार व कोई चिह्न आदिसे इशारा करनेमें भी दोष नहीं है। मौनसे भोजन करनेवाला सन्तोषकी भावना करता है, वैराग्यको पालता है, संयमकी पुष्टि करता है, भोजनकी लोलुपताके छोड़नेसे तपको बढ़ाता है, अपने अभिमानकी रक्षा करता है तथा तीन जगतमें मनकी सिद्धि प्राप्त करता है। जो उज्ज्वल मौन धारण करता है उसकी वाणी याने भाषा मन-मोहनी, शास्त्रके विचारमें भीगी हुई तथा प्रभावशाली होती है। जो बुद्धिमानोंके द्वारा वंदनीक पद हैं वे सर्व मौनव्रतीको प्राप्त होसकते हैं।

जिस कार्यको करें उसीमें हमको एक-ध्यान होना चाहिये। इसीलिये भोजनके समय किसी और बातमें मनको न रखकर भोजन व पात्रमें ही ध्यान रखना चाहिये, जिससे कोई जीव जन्तु न गिरने पावे व भोजनमें हाथ न चला जाय। जितनी मनकी शांति सन्तोष और संक्लेशरहितताके साथमें आहार किया जायगा उतनी ही अधिक आहार द्वारा शरीरको पुष्टता प्राप्त होगी, तथा मौन रखनेसे मुख भोजन चबानेमें ही प्रवृत्त होगा, एक ही समयमें बोलनेका काम भी नहीं करेगा। दोनों काम एक समयमें लेना मुख पर प्रबल चाकरी बजाना है। खाते समय बोलनेसे मुखके छींटे चारों ओर जावेंगे और वृथा अधिक समय भी जायगा।

भोजन यदि आप ही बनावे और आप ही करे तौभी मौनसे अपने योग्य जो हो उसे अलग कर ले। यदि थालीमें फिर भी लेना पड़े तो ले सकता है-दूसरेसे याचना करना ठीक नहीं है। यहांतक कि अपने ही घरमें अपनी स्त्रीसे भी मांगना उचित नहीं है। भोजनके पहले जो इच्छा हो उसे थालीमें लेलेवे, फिर भोजन करते समय नहीं मांगे, वह देवे तो लेवे, न लेना हो तो इन्कार कर देवे।

बालक और बालिकाओंको जन्मसे ही मौनके साथमें भोजन करना सिखाना चाहिये। मौनकी आदत न होनेके कारण बहुधा लोग भोजन करते हुए कुछ भी मनकी इच्छा विरुद्ध चीज होने पर महाक्रोध करते हैं, कुवचन बोलते हैं और सारे कुटुम्बको क्लेशित बना देते हैं। मौनव्रत मनुष्यको कषाय जीतनेके लिये अच्छा अस्त्र है। मौनसहित भोजन करते हुए अन्तराय बचाने चाहिये। यदि नीचे लिखे कारण बन जायें तो उसी समय भोजन करता २ रुक जावे और फिर वह भोजन उस समय न करे। अन्तर्मुहूर्त्तके पीछे दूसरा शुद्ध भोजन कर सकता है।

अन्तराय ।

दृष्ट्वाऽऽर्द्रचर्मास्थिसुरामांसासृक्पूयपूर्वकम् ।
स्पृष्ट्वा रजस्वलाशुष्कचर्मास्थिशुनकादिकम् ॥ ३१ ॥
श्रुत्वाऽतिकर्कशाक्रन्दविड्वरप्रायनिःस्वनम् ।
भुक्त्वा नियमितं वस्तु भोज्येऽशक्यविवेचनैः ॥ ३२ ॥
संसृष्टे सति जीवद्भिर्जीवैर्वा बहुभिर्मृतैः ।
इदं मांसमिति दृष्टे संकल्पे चाशनं त्यजेत् ॥ ३३ ॥

सं० टीका—दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च अशुष्कं चर्म्म च अस्थि मद्यं, मांसं, असृक्, पूयं व्रणादिगतं पक्व अस्टक्, पूर्व शब्द त् वशांऽत्रादि तथा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा रजस्वलां शुष्क चर्म्म अस्थि शुनकं श्वानं आदि शब्देन मार्जार स्वपचादि, तथा, श्रुत्वा अस्य मस्तकं छिन्धि इत्यादि रूपं अतिकर्कश निःस्वनं, आक्रन्द निस्वनम् हाहा इत्यादि आर्त्तस्वरस्वभावं विड्वरप्राय निस्वनं परचक्र आगमनं आतंकप्रदीपनादि विषयं तथा भुक्त्वा नियमितं प्रत्याख्यातं वस्तु, भोज्ये भोक्तव्ये सति किं विशिष्टे संसृष्टे मिलिते केर्जीवैर्द्विचतुरिन्द्रियप्राणिभिः किं कुर्वद्भिः जीवद्भिः किं विशिष्टैः अशक्यविवेचनैः भोजनद्रव्यात् पृथक् कर्तुं अशक्यैः अथवा संसृष्टेकैर्मृतैर्जीवैः, कतिभिः बहुभिः त्रिचतुरादिभिः तथा इदं भुज्यमानं वस्तु मांसं सादृश्यात्

इदं रुधिरं इदं आरक्षयं सर्प इत्यादि रूपेण मनसामविकल्पमाने ॥

भावार्थ—देखने और छूने दोनोंके अन्तराय इस भांति हैं:-

(१) गीला चमड़ा, (२) गोली हड्डी, (३) मदिरा, (४) मांस, (५) लोहू, (६) घावसे निकली हुई पीप, (७) नसें, आंते वगैरह।

जो केवल छूनेके अन्तराय हैं, देखनेके नहीं:—

(१) रजस्वला स्त्री, (२) सूखा चमड़ा, (३) सूखो हड्डी, (४) कुत्ता. बिल्ली, चांडालादि हिंसक जानवर।

केवल सुनने मात्रके अन्तरायः—

(१) इसका मस्तक काट डालो, इत्यादि अति कठोर शब्द, (२) हाय हाय करके आर्त्त बढ़ानेवाला रोना, (३) आपत्तियोंका सुनना जैसे-शत्रुकी सेनाका आना, रोगका फैलना, अग्निका लगना मन्दिरादिपर उपसर्ग आदि।

केवल भोजन करनेके:—

(१) छोड़ा हुआ पदार्थ (नियम किया हुआ पदार्थ) खानेमें आ जावे, (२) भोजन करने योग्य जो भोज्य पदार्थ उसमें दो इन्द्री, तेन्द्री, चौंद्री कई जीव जं ते पड़ जाय और उनको निकाला न जा सके तो अन्तराय, (३) भोज्य पदार्थमें कई याने तीन चार मरे जीव मिलें तो अन्तराय, (४) यह भोजन मांसके रुधिरके व मांस इत्यादिके समान हैं-ऐसा मनमें संकल्प होने पर जिससे चित्तमें घृणा हो जावे। इस प्रकार सब मिलके १८ अन्तराय हैं।

नोट—जब भोज्य पदार्थमें तीन चार मरे जीव मिलें तो अन्तराय माना जाय ऐसा कथन है, तब यह सिद्ध होता है कि एक या दो मरे जीव हों तो अन्तराय नहीं होगा; किन्तु जिसमें मिले हों उस भोजनको अलग कर देगा। जब यहां यह अभिप्राय निकलता है तब ऊपर जो गीले व सूखे चर्म, मांस, रुधिर आदिके अन्तराय हैं वे सर्व पंचेन्द्रिय पशुकी अपेक्षासे हैं-ऐसा

विदित होता है। किसी किसीका कहना है कि लोहूकी धार अपने या दूसरेके शरीरसे ४ अंगुल बहती देखे तो अन्तराय होवे।

ज्ञानानन्द निजरस निर्भर श्रावकाचारमें अन्तराय इस भांति कहे हैं:—

१-मदिरा, २-मांस, ३-हाड़, ४-काचा चर्म, ५-चार अंगुल लोहूकी धारा, ६-बड़ा पंचेन्द्री मुवा जानवर, ७-बिष्टा मूत्र, ८-चूहड़ा इन आठनिको प्रत्यक्ष नेत्रानि करि देखनेहीका भोजनमें अन्तराय है।

१-सूखा चर्म, २-नख, ३-केश, ४-ऊन, ५-पांख, ६-असंयमी स्त्री वा पुरुष, ७-बड़ा पंचेन्द्री तिर्यंच, ८-रितुवन्ती स्त्री, ९-आंखड़ीका भंग, १०-मलमूत्रकी शंका, ११-मुरदाका स्पर्शन, १२-कांसा विषै कोई त्रस मृतक जीव निकसे, १३-बाल कांसा विषै निकसे, १४-हस्तादिक निज अंग सो वेन्द्री आदि छोटा बड़ा त्रस जीवका घात इत्यादि, भोजन समय स्पर्श होय तो भोजन विषै अन्तराय।

बहुरि मरण आदिकका दुःख ताका विरह करि रोवता ताका सुनना, लाय लागी होय ताका सुनवाका, नगरादिकका मारवाका, धर्मात्मा पुरुषको उपसर्ग हुएका, मृतक मनुष्यका, कोइके नाक कान छेदनेका, कोई चोरादिकने मारवा ले गया होय ताका, चण्डालके बोलनेका, जिनबिंब जिनधर्मकी अविनयका इत्यादि महापापके वचन सत्यरूप आपने भासें तो ऐसे वचन सुनने विषैं भोजनका अन्तराय है।

बहुरि भोजन करती बार ऐसी शंका उपजे कि या तरकारी तो मांस सारिखो है व लोहू सारिखी है व हाड़ सारिखो है व चर्म सारिखी है व विष्टा व सहत इत्यादि निंदक वस्तु सारिखा भोजन समय कल्पना उपजे अर मनमें ग्लानि होई आवे अर मन वाके चाखने विषैं औहट्टा होय तो भोजन विषैं मनका अन्तराय है अर

२०५०/८

भोजन विषै निंदक वस्तुकी कल्पना ही उपजे और मन विषै वाका जानपना होय तो अंतराय नाहीं।

ऐसे देखवाका ८, स्पर्शका २०, सुनवेका १०, मनका ६, सर्व चारों प्रकारके ४४ अंतराय जानना" करीब २ इसी जातिका संस्कृत पाठ सोमसेन कृत त्रिवर्णाचारमें प्राप्त होता है जो इस भांति है:—

(अध्याय छठा।)

प्राणघातेऽन्नशल्पेण, वह्नौ झंपत्पतंगके।
दर्शने प्राणघातस्य, शरीराणां परस्परं ॥ १८५ ॥
कपर्द (कौड़ी) केशचर्मास्थिमृतप्राणिकलेवरैः।
नखगोमयभस्मादि मिश्रितान्ने च दर्शिते ॥ १८६ ॥
उपद्रुते विडालाद्यैः प्राणिनां दुर्वचः श्रुतौ।
शुनां श्रुते कलिध्वानैर्ग्रामघृष्टि शूकर) ध्वनौ श्रुते ॥ १८७ ॥
पीडारोदनतः श्वानग्रामदाह शिरश्छदः।
धान्यागमरणप्राणिक्षयशब्दे श्रुते तथा ॥ १८८ ॥
नियामितान्नसंभुक्ते प्रागदुःखाद्रोदने स्वयम्।
विट्शंकायां क्षुते वान्तौ मूत्रोत्सर्गेऽन्यताडिते ॥ १८९ ॥
आर्द्रचर्मास्थिमांसासृक् पूयरक्तसुरामधौ।
दर्शने स्पर्शने शुष्का स्थरोमविट्कचर्मणि ॥ १९० ॥
ऋतुमती प्रसूता स्त्री मिथ्यात्वमलिनाम्बरे।
मार्जारमूषकश्वानगोऽश्वादप्रतिवालके ॥ १९१ ॥
पिपीलिकादि जीवैर्वा वेष्टितान्नं मृतैश्च वा।
इदं मांसमिदं चेदक् संकल्पे वाऽशनं त्यजेत् ॥ १९२ ॥

भावार्थ—१-अन्नकी भापमें किसी प्राणीका मरण, २-आगमें किसी पतंगका जलना, ३-परस्पर कई शरीरोंका प्राणघात, ४-कौड़ी, ५-बाल, ६-चमड़ा, ७-हड्डी, ८-मरे हुए प्राणी, ९-नाखून, १०-गोबर और ११-भस्मादिसे मिला हुआ अन्न देखने पर,

१२-बिल्ली आदिका उपद्रव होनेका कारण प्राणियोंके दुर्वचन, १३-कुत्तोंकी कलकलाहट, १४-गांवके शूकरोंकी कलकलाहट, १५-कुत्तेका पीड़ाके कारण रोना, १६-ग्रामका दाह, १७-किसीके सिरका छेद, १८-और चांडाल द्वारा किसी प्राण का मरण सुने जानेपर, १९-छोड़ा हुआ अन्न खा जानेपर, २०-स्वयं कोई पूर्व दुखकी यादमें रुलाई आ जानेपर, २१-पाखानेकी शंका होनेपर, २२-छींक आजानेपर, २३-वमन होजानेपर, २४-मूत्र निकल जानेपर, २५-दूसरेसे पटे जानेपर, २६-गीला चमड़ा, २७-हाड़, २८-मांस, २९-असृक, ३०-पीप, ३१-रक्त, ३२-मदिरा, ३३-तथा मधु देखनेपर, ३४-सूखा चमड़ा, ३५-हड्डी, ३६-रोमसहित चर्म, ३७-रजस्वला, व प्रसूती स्त्री, ३८-मिथ्यात्वी, ३९-मलीन कपड़े पहने हुए, ४-बिल्ली, ४१-चूहा, ४२-कुत्ता, ४३-गौ, ४४-घोड़ा, ४५-अव्रती, ४६-बालक इन सबसे भोजन स्पर्शित हो जानेपर तथा ४७-कई चींटी आदि जीती या मरी हुईसे वेष्टत अन्न होनेपर, ४८-यह मांस है या कोई निषिद्ध चीज है-ऐसा संकल्प होनेपर भोजन करते अन्तराय करे याने फिर भोजन मुखमें न देवे।

यदि किसीको दोबार भोजनका नियम है तो एकबार अन्तराय हो जानेपर कमसे कम अन्तमुहूर्त पीछे दुबारा भोजन कर सकता है। ज्ञानानन्दश्रावकाचारके अनुसार श्रावकको ७ जगह मौन रखना चाहिये अर्थात् देवपूजा, २-सामायिक, ३ स्नान, ४-भोजन, ५-स्त्री मैथुन, ६-लघुशंका। तथा ऊपरसे कोई जीव जन्तु न पड़े इसलिये इतनी जगह चन्दोवा भी चाहिये। १-पूजाका स्थान, २-सामायिकका स्थान, ३-चूल्हा, ४-पन्हेड़ा (पानीका स्थान) ५-उखली, ६-चक्की, ७-भोजन स्थान, ८-शय्या स्थान, ९ आटा चालनेका स्थान, १०-व्यापारका स्थान, ११-धर्मचर्चाका स्थान।

अध्याय नववाँ।

सामायिक प्रतिमा।

व्रतप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास करके अधिक ध्यान करनेकी अभिलाषासे तीसरी श्रेणीमें आकर सामायिककी क्रियाको नियमपूर्वक दिनमें ३ वार जो विधि पहले कह चुके हैं उस प्रमाणसे करना योग्य है। इस अभ्यासमें सामायिकका काल यद्यपि अन्तर्मुहूर्त है तथापि ध्यानकी वृद्धिके वास्ते दो घडी या ४ घडी या ६ घडी भी लगा देवे, जैसी अपनी थिरता और परिणामोंकी योग्यता देखे। नियम तो अन्तर्मुहूर्तहीका है, जो कि जघन्य १ समय और १ आवली, उत्कृष्ट ४८ मिनिटमें एक समय कम, मध्य कम, अनेक भेदरूप होता है। जहांतक बने २ घडी याने ४८ मिनिटसे कम सामायिक प्रति सन्ध्यामें न करे।

> चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुः प्रणामः स्थितो यथाजातः।
> सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

भावार्थ—जो चार आवर्त्तके हैं त्रितय जिसके अर्थात् एक २ दिशामें तीन २ आवर्त्तका करनेवाला इस प्रकार १२ हैं आवर्त्त जिसके, चार हैं प्रणाम जिसके, कायोत्सर्ग सहित बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी चिंतासे रहित दो हैं आसन जिसके (खड्गासन व पद्मासन), तीनों योग हैं शुद्ध जिसके अर्थात् मन वचन, कायके व्यापार जिसके शुद्ध हैं और तीनों सन्ध्याओंमें अभिवन्दन करनेवाला अर्थात् प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल-इन तीनों कालोंमें सामायिक करनेवाला है। वही सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक है।

> आर्त्तरौद्रपरित्यक्तस्त्रिकालं विदधाति यः।
> सामायिकं विशुद्धात्मा स सामायिकवान्मतः ॥ ८३५ ॥
>
> (सुभाषित-रत्न सन्दोह)

अर्थ—जो धर्मात्मा आर्त्त और रौद्र ध्यानोंको छोडकर तीनों काल सामायिक करता है उसे सामायिक प्रतिमावान् कहते हैं।

जिणवयण धम्मचेइय परमेट्ठि जिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु ॥ ३७२ ॥
(स्वा० अ०)

अर्थ—सामायिक प्रतिमावाला नित्य ही तीनों कालोंमें जिनवाणी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पञ्चपरमेष्ठी और जिनमन्दिर इन ९ देवताओंको वंदना करता है और साम्यभावसे सामायिक करता है। यहां परोक्ष वन्दनासे अभिप्राय है जो सामायिकके समय की जाती है।

सामायिकके समय १२ भावनाओंको विचारता हुआ अत्यन्त उदासीन रहे। यदि उपसर्ग भी पडे तो सामायिक छोड़कर भागे नहीं। आत्माको भिन्न अनुभव करता हुआ शरीरकी अवस्थाके पलटनेका केवल ज्ञाता ही रहे—आप अपने आत्माको सदा भिन्न ही विचारे इसप्रकार सामायिक करनेवाला इसके पांचों दोषोंको भले प्रकार टाले और यदि कोई कारणवश कोई अतिचार लग जावे तो प्रायश्चित्त लेवे।

सामायिकका विशेष विवरण व्रतप्रतिमाके अध्यायमें कहा जा चुका है। सामायिक प्रतिमावालेके ३ काल सामायिक करनेका नियम है, जबकि व्रत प्रतिमावालेके रोज सामायिकका दृढ़ नियम नहीं है—अभ्यास है।

प्रश्न—इन दोनोंमें क्या अन्तर है?

इस विषयमें ज्ञानानंद श्रावकाचारमें इस भांति कहा है—"दूसरी प्रतिमाके विषैं आठें चौदस को और परब्यां विषैं तो सामायिक अवश्य करें ही करे। अपि सर्व प्रकार नियम नाहीं है:

करै या नाहीं करै अर तीसरी प्रतिमाके धारीके सर्व प्रकार नियम है। इससे भी यही अभिप्राय निकलता है कि व्रत प्रतिमावाला पर्वियोंमें तो अवश्य करे, नित्यका दृढ़ नियम व्रतीके नहीं, जब कि सामायिक प्रतिमावालेके है तथा सामायिक प्रतिमावाला कितनी देर तक सामायिक करे इस विषयमें आत्मानुभवी पं० बनारसीदासजी अपने नाटक समयसारमें इस प्रकार कहते हैं:—

तृतीय प्रतिमा—दरब भाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक।
तजि ममता समता गहै, अन्त मुहूरत एक॥

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अध्याय दशवाँ ।

प्रोषधोपवास प्रतिमा ।

पर्वदिनेसु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायीप्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥ १४० ॥
(र० श्रावकाचार)

भावार्थ—जो हर महीनोंकी चारों ही पर्वियोंमें अर्थात् २ अष्टमी व २ चौदसको अपनी शक्तिको न छिपाकर शुभ ध्यानमें तत्पर होता हुआ प्रोषधके नियमको रखता है सो प्रोषधोपवास प्रतिमावाला है।

मासे चत्वारि पर्वाणि तेषु यः कुरुते सदा ।
उपवासं निरारम्भः प्रोषधो स मतो जिनैः ॥ ८३६ ॥
(सु० र० स०)

अर्थ—एक मासमें चार पर्वियाँ होती हैं। उनमें जो श्रावक सदा ही आरम्भ त्यागके उपवास करता है वह प्रोषधप्रतिमाधारी है ऐसा श्री जिनेन्द्रोंने कहा है, जिसका विशेष वर्णन व्रतप्रतिमामें किया जा चुका है। यदि अपनी शक्ति हो तो सप्तमी व तेरसको एक भुक्त कर ९ वीं व १५ को भी एक भुक्त करे और १६ प्रहर धर्मध्यानमें बितावे। यदि ऐसा न बने तो जलके सिवाय इन १६ प्रहरोंमें और कुछ ग्रहण न करे। यदि यह भी न बने तो १६ प्रहर धर्मध्यान करे। बीचके दिन नीरस भोजन आदि जैसा पहले कहा है ग्रहण करे।

दूसरी रीति यह है कि—१६ प्रहर उत्कृष्ट, १२ प्रहर मध्यम और ८ प्रहर जघन्य प्रोषध करे अर्थात् इतने काल तक धर्मध्यान व धर्मकी भावना व धर्मके कार्योंमें लगा रहे। आरम्भ, व्यापार व घरके कार्य्य न करे। इस प्रतिमावालेको अवश्य ही अष्टमी व

चौदस धर्मध्यान सहित उपवासके साथ रहना होगा—यह नियम है।

यहां वैराग्य विशेष चढ़ जाता है। जैसी थिरता परिणामोंकी देखे वैसा उपवास करे केवल १६ प्रहर भूखा रहनेसे और आर्त्त परिणाम बढ़ानेसे प्रोषध नहीं होता। प्रयोजन यह है कि वह श्रावक इतने काल निवृत्त रहकर वीतराग परिणतिको बढ़ावे और निज आत्मानन्दको प्राप्त कर परम सुखी होवे। इस व्रतके पांचों अतीचारोंको टाले। यदि प्रमादवश कोई लग जावे तो प्रायश्चित्त लेवे।

प्रोषधप्रतिमा और व्रतप्रतिमामें क्या अन्तर है? इस विषयमें ज्ञानानन्द श्रावकाचारमें यह लेख है—"दूजी तीजी प्रतिमाके धारीके प्रोषध उपवासका संयम नाहीं है, मुख्यपने तो करै है गौनपने नाहीं भी करै। अर चौथी प्रतिमा धारीके नियम है कि यावज्जीव करै ही करै।" आत्मानुभावी पंडित बनारसीदासजी नाटक समयसारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहते हैं:—

सामायिक किसी दशा, चारि प्रहरलों होय।
अथवा आठ प्रहर रहे, प्रोसह प्रतिमा सोय॥
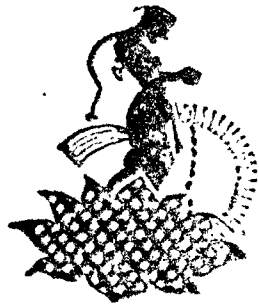
अध्याय ग्यारहवाँ ।

सचित्तत्यागप्रतिमा ।

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानियोऽयोत्तिसोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १४१ ॥
(र० क०)

भावार्थ—जो आमानि कहिये कच्चे व अप्राशुक व अपक्क मूल, फल, शाक, शाखा, गांठ व कैर, कंद, फूल और बीज नहीं खाता है सो दयावान सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है।

इस श्रेणीमें यह श्रावक कोई भी चीज जो सचित्त हो याने जीवसहित हो मुखमें नहीं देता है, कच्चा पानी नहीं पीता, फल आदि एकाएक मुँहमें दे तोड़ता नहीं। प्राशुक करनेकी जो विधि है उस प्रकारसे अचित्त की हुई चीजोंको ही खाता है। जो अनाज बोने योग्य हो चाहे सुखा भी हो, योनिभूत होनेके कारण सचित्त है।

सच्चित्तं पत्तं फलं छल्ली मूलं च किसलयं बीजं ।
जो णय भक्खदि णाणी सचित्तविरओ हवे सोवि ॥ ७८ ॥
(स्वा० अ०)

अर्थ—पत्त-नागवल्ली, दल लिम्ब पात्र सर्षप चणकादि पत्र धतूरादि दल पत्र शाकादिकं न अश्नाति याने नागवेल, नीम, सरसों, चने, धतूरेके पत्र व शाकादि न खावे।

फल—चिर्भट, कर्कटिका, कूष्मांड, निंबूफल, दाडिम, बीजपुर, अपक्कआम्रफल कदलीफलादिकं अर्थात् खीरा, ककड़ी, कूष्मांड, नींबू, अनार, बिजोरा, कच्चा केला आदि।

छल्ली—वृक्षवल्ल्यादि सचित्तत्वक् अत्ति अर्थात् वृक्षकी छाल आदिको सचित्त न खावे।

मूलं—आर्द्रकादि लिंबादि वृक्ष वल्ली वनस्पतीनां मूलं न खादति। अदरक आदि नीमादि वृक्षोंकी व वेलादि वनस्पतिकी जड़को न खावे।

किशलय —पल्लवं लघु पल्लवं कुपलं अर्थात् छोटे पत्ते कोपल।

वीज—सचित्त चणक मुद्ग तिल वर्जरिका माषाढकी जीरक कुबेर राजी गोधूम व्रीह्यादिकं। अर्थात् साबुत चने, मूंग, तिल, बाजरा, मसूर जीरा, गेहूं, जौ, धान्य आदि इन सबको सचित्त न खावे। बहुधा लोग खेतोंमें इन चीजोंको एकाएक उखाड़ कर व तोड़कर खाने लग जाते हैं जैसे चनेका साग खाना, ककड़ी तोड़ कर मुँहमें रख लेना, छाल चबा डालना, किसी वृक्षकी जड़ उखाड़ मुखमें धर लेनी व तिल बाजरा लेकर मुहमें धर लेना इत्यादि सचित्त भोजनकी प्रवृत्तिको यहांपर बन्द कराया है। जो वस्तु शरीरके लाभार्थ जरूरत हो उसको वह लेकर देख शोध अचित्त करके फिर खावे जिससे कुछ भी रागका विजय हो।

प्राशुक किस प्रकार होता है इसका वर्णन भोगोपभोग व्रतमें किया जा चुका है तथापि यहां श्री गोम्मटसारकी श्री अभयचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिकृत संस्कृत टीकाके वाक्य लिखे जाते हैं। प्रकरण सत्यवचनयोग। (पत्रे ८७ ग्रन्थ चौपाटी-बम्बई)

अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावस्तदाश्रितं वचो भावसत्यं यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रितदग्धादिद्रव्यं प्राशुकम् अतः तत्सेवने पापबन्धो नास्ति इति पापवर्जनवचनं तत्र सूक्ष्मजन्तूनामिन्द्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्यात् प्राशुकाप्राशुक-संकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात् सकलातीन्द्रियार्थज्ञानिप्रणीत-प्रवचनसत्यत्वात्।

इसीका अर्थ भाषा गोमट्टसार टीका पं० टोडरमलकृतमें इस प्रकार है—"बहुरि अतीन्द्रिय जे पदार्थ तिन विषै सिद्धान्तके अनुसार विधि निषेधका संकल्परूप परिणाम सो भाव कहिये तिहने लिये जो वचन सो भाव सत्य कहिये। जैसे सूखा गया

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

होय व अग्नि करि पचा होय व घाड़ी कोल्हू आदि यन्त्र करी छिन्न किया होय व भस्मीभूत हुआ होय वस्तु ताको प्राशुक कहिये, या सेवनतें पाप बन्ध नाहीं। इत्यादि पाप वर्जरूप वचन सो भावसत्य कहिये। यद्यपि इन वस्तुनि विषै इन्द्रिय अगोचर सूक्ष्म पाइये है तथापि आगम प्रमाणते प्राशुक अप्राशुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा वचन सो सत्य है। जातें समस्त अतीन्द्रिय पदार्थके ज्ञानीनि करि कह्या वचन सत्य है।"

नोट—संस्कृतमें "कषायला द्रव्य व लवणके मिलानेसे भी प्राशुक होता है" ऐसा पाठ है।

पांचवीं प्रतिमावाला प्राशुक चीजोंको खा सकता है उसमें कोई निषेध नहीं है। ऐसा ही सुभाषितरत्नसन्दोहमें कहा है:—

न भक्षयति योऽपक्वं कन्दमूलफलादिकम्।
संयमासक्तचेतस्कः सचित्तात्स पराङ्मुखः॥ ८३७॥

अर्थ—जो अपक्व कहिये कच्चे कन्दमूल फलादिको नहीं खाता है सो संयममें आसक्तचित्त सचित्तत्यागी कहलाता है। परन्तु अप्राशुक नहीं खा सकता।

प्रश्न—भोगोपभोगमें जिन सचित्तोंका त्याग कर चुका हो उसको भी अचित्त लेवे या नहीं?

उत्तर—इसका समाधान यह है कि यदि भोगोपभोगमें उसने मात्र सचित्त पदार्थोंके खानेका त्याग किया है, अचित्तके खानेका त्याग नहीं किया, तो वह यहां भी उन सबको अचित्त रूपमें खा सकता है तथा यदि उसने यह त्याग हो कि इतनी वस्तुओंको मैं सचित्तको अचित्त करके भी नहीं खाऊँगा तो वह इस पंचम प्रतिमामें भी उनको किसी हालतमें नहीं खावे, शेषको अचित्त रूपमें खावे; क्योंकि इसके पहली प्रतिज्ञा छूटती नहीं है।

सचित्त प्रतिमावालेके आरम्भका त्याग नहीं है। इससे यह सचित्त जल, फल, साग आदिको स्वयं करके या दूसरेसे अचित्त

कराके खा पी सकता है। इसके केवल सचित्त खानेका त्याग है। व्यवहार करनेका त्याग नहीं है। सचित्त जलादिसे स्नानादि कर सकता है, हाथ पैर कपड़ा आदि धो सकता है। तौ भी यदि बन सके तौ अचित्त पानीका ही व्यवहार करे, परन्तु इसके अचित्त व्यवहारका नियम नहीं है।

प्रश्न—कन्दमूलादि अनन्तकायका त्याग तो भोगोपभोगव्रतमें आजन्म हो गया है। अब यहां कन्दको अचित्त करके खावे यह विधि क्यों की गई ?

उत्तर—वास्तवमें अनन्तकायोंका आजन्म त्याग हो गया है। तथापि उस त्यागमें मुख्यता सचित्तत्यागकी है, तौ भी जिह्वा इन्द्रियकी लोलुपतावश उन अनन्तकायोंको अचित्त न करे, क्योंकि एकके घातसे अनन्तका घात करेगा। यहां फिर जो इनकी विधि की गई है, इससे यह प्रगट होता है कि जब तक आरम्भ परिग्रहका त्यागी है तब तक इसके विशेष मुख्यता इन्द्रिय संयमकी है और स्थावर प्राणोंकी रक्षाकी गौणता है। प्रयोजनसे अधिक इनकी हिंसा नहीं करता है। जैसा कहा है:—

स्तोकैकेन्द्रियघाताद् गृहिणां संपन्न योग्यविषयाणां।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयं ॥७६॥ (पु० सि०)

अर्थात् योग्य विषयों करके सहित गृहस्थो प्रयोजनरूप थोड़े एकेन्द्री जीवोंके घातके सिवाय शेष स्थावरोंका भी घात न करे। इस अपेक्षासे जिह्वाके स्वादके वश तो कन्दमूलादिको विराधना करके अचित न करे, परन्तु औषधि आदि किसी ऐसे आवश्यकीय काममें जिसमें लोलुपता जबानकी नहीं है यह गृहस्थी अनन्तकाय वनस्पतियोंको भी अचित करके काममें ले सकता है। जैसे बालक बीमार है और उसे अदरकका रस चाहिये तो रस निकाल करके दे सकता है व आपको आवश्यक हो तो ले सकता है। इसी कारण प्राशुकरूपसे इन पदार्थोंकी मनाई पंचम प्रतिमावालेके नहीं की गई है। भोगोपभोगमें जिह्वा इन्द्रियकी मुख्यता थी। अतएव वृथा

भारतीय जानपीठ प्रकाशन
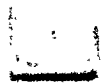
थावरोंकी हिंसासे बचनेका गृहस्थीको उपदेश दिया गया है। इसका समाधान इसी प्रकार समझमें आता है। विशेष बहुज्ञानी विचारें सो ठीक है।

यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह पंचम प्रतिमा भी जिह्वा इन्द्रियके रोकनेके लिये मुख्यता करके है। यद्यपि गौणतासे प्राणोंकी रक्षाका भी अभिप्राय है। जैसा कहा है:—

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जयजीहाविणिज्जया तेण।
दयभावो होदि किउ जिणवयणं पालियं तेण ॥ ३८० ॥
(स्वा० का०)

भावार्थ—जो सचित्त नहीं खाता है उसने अपनी दुर्जय जीभको जीत लिया है तथा दयाभाव कर जिन आज्ञाको पालन किया है। जिसको आप सचित्त खानेका त्याग है वह दूसरोंको खिलावे भी नहीं।

जो णय भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जतेदाउ।
भुत्तस्स भोजिदस्स हि णत्थि विसेसो तदो कोवि ॥ ३७९ ॥
(स्वा० का०)

भावार्थ—जो स्वयं सचित्त नहीं खाता है वह दूसरेको भी सचित्त न देवे, क्योंकि खाने और खिलानेवालोंमें कोई अन्तर नहीं है। सचित्त प्रतिमाधारीके मुख्यपने सचित्त मुखमें देनेका त्याग है। इसी विषयमें ज्ञानानन्द श्रावकाचारमें यह वाक्य है—"मुखका त्याग पांचवीं प्रतिमाधारीके है और शरीरादिकका त्याग मुनि करें।" भाव यही निकलता है कि सचित्तको अचित्त करके खा सकता है। व सचित्तसे खानेके सिवाय अन्य काम कर सकता है। आत्मानुभवी पं० बनारसीदासजी इस प्रतिमाके स्वरूपमें सचित्त खानेका ही निषेध बतलाते हैं:—

"जो सचित्त भोजन तजै, पीवे प्राशुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर॥"

अध्याय बारहवां।

रात्रिभोजन-त्यागप्रतिमा।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं, नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः, सत्वेष्वनुकम्पमानमना॥ १४२॥
(र० क०)

भावार्थ—जो रात्रिको दयावान चित्त हो अन्नं कहिये चांवल, गेहूं आदि, पानं कहिये दूध, जल आदि; खाद्यं कहिये बरफी, पेड़ा, लड्डू आदि; लेह्यं कहिये रबड़ी, चटनी आदि, इन चारों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खाता है वह रात्रिभुक्तित्याग नाम प्रतिमाका धारी है ऐसा ही श्री कार्तिकेयस्वामीने कहा है:—

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी।
णाय भुंजावइ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो॥ ३८१॥

जो णिसि भुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं।
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए॥ ३८२॥

इस प्रतिमामें दूसरोंको रात्रिमें चार प्रकारका आहार खानेको न दे। जो रात्रिको न खाए उसको १ वर्षमें छह मासका उपवास हो जाता है। इस प्रतिमाका पालनेवाला रात्रिको भोजन सम्बन्धी आरंभ भी न करे ऐसा स्वामी कार्तिकेयजीका मत है। जैसे संस्कृत टीकामें कहा है:—

रात्रिभोजनविरक्तः पुमान आरम्भं गृहव्यापारं कृषिवाणिज्यादिकं, खण्डनी, पीसनी, चुल्ली, उद-कुम्भप्रमार्जनी, पंच सूनादिकं, त्यजति, रात्रिभोजनविरतः रात्रौ सावद्यारव्यापारं त्यजति।

भावार्थ—रात्रि भोजनसे विरक्त पुमान रात्रिको घरका व्यापार,

लेना देना, वाणिज्य व चक्की, चूल्हा, उखली, बुहारी, पानी भरना आदि आरम्भ न करे और पापके व्यापारोंको छोड़े।

प्रश्न—जब यहां चार प्रकारके भोजनके त्यागका उपदेश है तब क्या इससे पहलेकी श्रेणियोंमें इनका त्याग नहीं है? यदि है तो फिर यहां क्यों कहा?

समाधान—इस विषयमें ज्ञानानन्दश्रावकाचारमें यह कथन है—रात्रिभोजनका त्याग तो पहली दूसरी प्रतिमा ही सूं मुख्यपणे होय आया है, परन्तु ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र आदि जीव नाना प्रकारके हैं। स्पर्श शूद्र पर्यन्त श्रावकव्रत होय है, जो जाके कुल कर्म विर्षे ही रात्रिभोजनका त्याग चला आया है ताके तो रात्रिभोजनका त्याग सुगम है; परन्तु अन्यमती शूद्र जैनी होय अर श्रावकव्रत धारे ताकूं कठिन है। तातें सर्व प्रकारकी छठी प्रतिमा विर्षे ही याका त्याग सम्भवे है अथवा आपने खावाका त्याग तो पूर्वं ही किया था, यहां औरांकूं भोजन करावने आदिका त्याग किया।

इस ऊपरके कथनसे तथा श्लोकोंके ऊपरसे यह साफ २ प्रगट होता है कि नियम पूर्वक रात्रिको चारों प्रकारके भोजन स्वयं करने व करानेका त्याग इस छठी श्रेणिमें है। इसके नीचे नियम नहीं किंतु अभ्यासरूप है। जैसे सामायिक है और प्रोषधोपवासका अभ्यास व्रतप्रतिमामें है, परन्तु नियमरूप तीसरी और चौथी श्रेणीमें है। ऐसे ही रात्रिभोजनके त्यागका अभ्यास छठी प्रतिमासे नीचे है, परन्तु नियमरूप इस प्रतिमामें है। यदि व्रतप्रतिमावाला ३ काल सामायिक और १६ पहरका धर्मध्यानसहित प्रोषध करे तो कुछ निषेध नहीं है, किंतु उपदेश ही है; तैसे यदि छठीसे नीचे रात्रिभोजन चारों ही प्रकारका न करे तो कुछ निषेध नहीं है, किंतु उपदेश ही है। जैसा कि पहले दर्शन और व्रतप्रतिमामें पं० आशाधरजीके मतके अनुसार कहा जा चुका है।

यह जैनधर्म सर्व ही प्रकारकी स्थितिके जीवोंके पालनेके हेतुसे है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार जिस प्रकार निराकुलतासे धर्मका साधन हो सके उस प्रकार वर्तना चाहिये। श्रावक दयावान है, इसलिये यथाशक्ति यही उद्यम करना चाहिये कि रात्रिको खान पान न करे। जिस समाजमें बाल्यावस्थासे ही रात्रिको न खानेका अभ्यास है वह समाज सुगमतासे त्याग कर सकता है। परन्तु जिस समाज, देश व कुलमें रात्रिभोजनका अभ्यास नहीं है वहां अपने परिणामोंको देखकर त्याग किया जाय तौभी छठी श्रेणीमें आकर सर्वथा नियमसे त्याग करना होगा, ऐसा अभिप्राय मालूम होता है।

ऐसा कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि नीचेकी श्रेणीवाले यदि लाचारीवश रात्रि भोजन करें तो पाप बन्ध न होगा-हिंसा-द्वारा पापका बन्ध अवश्य होगा। अतएव उत्तम यही है कि पूर्वहीसे २ घडी दिन पहलेहीसे पानी पी आहार पानका त्याग कर दे। साधारण श्रावक भी यदि ऐसा करे तो उसको विशेष लाभ है क्योंकि डाक्टरोंके मतके अनुसार जबतक सूर्यकी किरणें फैली हैं तबतक ही भोजन करना शरीरको विशेष लाभकारी है और भलेप्रकार पच जाता है। यदि लाचारीवश याने किसीसे किसी भी अनिवार्य कारणवश सर्वथा त्याग न बन सके तो वह और व्रतोंको पालनेयोग्य नहीं है-ऐसा प्रयोजन नहीं निकलता है। यदि कोई श्रावक रात्रिको जल आदि किसी चीजका किसी कारणसे त्याग नहीं कर सकता तौभी उसे छठी प्रतिमामें अवश्य त्याग करना होगा-ऐसा अभिप्राय समझमें आता है।

इसके सिवाय यह भी यहां अभिप्राय है कि जो रात्रिको आप तो नहीं खाता पीता था, परन्तु बाल-बच्चे, नौकर-चाकर व किसी पाहुनेको जिमा देता था। अब इस छठी प्रतिमामें किसीको भी रात्रिको पानी या भोजन या दवाई नहीं देगा। यह कथन अपनी समझसे लिखा गया है, विशेष ज्ञानी विचार करें।

इस प्रतिमाका नाम दिवामैथुन त्याग भी है अर्थात् दिवसमें अपनी स्त्रीसे कामसेवन न करे। यद्यपि पहले भी ऐसा नहीं करता था, परन्तु यहां नियम होगया, जिससे वह कभी भी ऐसा नहीं करेगा-सन्तोषपूर्वक वितायगा। ऐसा ही अमितगति आचार्यश्रीने सुभाषितरत्नसन्दोहमें कहा है:—

> मैथुनं भजते मर्त्यो न दिवा यः कदाचन।
> दिवा मैथुननिर्मुक्तः स बुधैः परिकीर्तितः॥ ८३८॥

अर्थ—जो श्रावक दिनमें कभी मैथुन सेवन नहीं करता है वह दिवामैथुनसे विरक्त श्रावक है-ऐसा कहा गया है।

अध्याय तेरहवां ।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा ।

इसके पहले छठो प्रतिमा तक तो रात्रिको स्वस्त्रीका सेवन सन्तानकी इच्छासे करता था। अब इसका परिणाम अति विरक्त भावको प्राप्त हुआ है। स्त्री संमोहको स्वानुभूतिके रमण और अपनी ब्रह्मचर्यामें व यों कहिये कि आत्मीक आनन्दके विलासमें विरोधी जान त्यागता है और निज अनुभूति-नारीके मननमें उद्योगी हो ब्रह्मचर्य प्रतिमामें अपना पद रखता है।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगन्धिबीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थ—जो मलका बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले मल प्रवाही दुर्गन्धयुक्त लज्जाजनक अंग (स्त्रीके देह) को देखता हुआ कामसेवनसे विरक्त होता है वह ब्रह्मचारी है।

सव्वेसिं इच्छीणं जो अहिलासं न कुव्व ए णाणी ।
मणवयणकाएण य बंभवई सो हवे सदउ ॥ ३८३ ॥
जो कयकारियमोयण मणवयकायेण मेहुणं चयदि ।
बंभ पवज्जारूढो बंभवई सो हवे सदउ ॥ ३८४ ॥
(स्वा० अ०)

भावार्थ—जो ज्ञानी मन, वचन, कायसे सर्व ही स्त्रियोंकी अभिलाषा नहीं करता है सो दयावान ब्रह्मव्रती है। जो कृत, कारित अनुमोदना तथा मन, वचन, कायसे नव प्रकार मैथुनको त्यागता है और ब्रह्मचर्यकी दीक्षामें आरूढ़ होता है सो ही ब्रह्मव्रती होता है।

संसारभयमापन्नो मैथुनं भजते न यः ।
सदा वैराग्यमारूढो ब्रह्मचारी स भण्यते ॥ ८३९ ॥
(अमितिगतिः)

अर्थ—जो श्रावक संसारसे भयभीत हो सदा वैराग्यमें चढ़ा हुआ रहकर मैथुनसेवन नहीं करता है उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामी कार्तिकेयकी संस्कृत टीकामें इस भांति वर्णन है: अष्टादशशील सहस्रप्रकारेण शीलं पालयति अर्थात् १८००० भेदोंसे शीलव्रतको पालता है।

१८००० भेद वर्णन।

स्त्री ४ प्रकार—देवी, मानुषी, तिरश्ची, अचेतना (काष्टचित्रामोदिकी) ४ स्त्री जातयः मनोवचनकायैः ताडिताः कृतकारितअनुमत त्रिभिः करणैः गुणिताः ते पंचेन्द्रियैः हताः ते दशसंस्कारै गुणिताः ते दशकामचेष्टाभिः गुणिता १८००० भेदाः भवन्ति अर्थात् ४ प्रकारकी स्त्रियां होती हैं जिनके निमित्तसे मैथुनकर्मकी अभिलाषा हो सकती है। याने देवी, मनुष्यणी, पशुनी और अचेतन याने काठ पत्थर, तस्वीर, मूर्ति आदि, इनको मन, वचन, कायसे गुणो तो १२ भेद हुए, इनको करना कराना, अनुमोदना इन तीनोंसे गुणो तो ३६ भेद हुए, इनको पांचों इन्द्रियोंसे गुणो तो १८० भेद हुए इनको १० प्रकारके संसार याने सिंगारोंसे गुणो तो १८०० भेद हुए, इनको १० प्रकारकी काम-चेष्टाओंसे गुणो तो १८००० भेद हुए।

मैथुनके कारण पांचों इंद्रियोंमें चंचलता होती है, इससे पांचोंको शामिल किया तथा कामके उपजनेके १० संस्कार हैं। जैसे १-शरीरसंस्कार (शरीरकी शोभा करनी) २-शृङ्गारसरागसेवा (रागसहित शृङ्गार रसकी सेवा करनी), ३-हास्यक्रीडा (हंसी ठट्टा करना), ४-संसर्गवांछा (संततिकी इच्छा), ५-विषय संकल्प (विषय सेवनका इरादा करना, ६-शरीर निरीक्षण (स्त्रीकी देहको देखना), ७-शरीरमंडन (देहको आभूषण आदिकोंसे सजाना), ८-दान (स्नेह बढ़ानेको परको जो प्रिय वस्तु हो सो देना), ९-पूर्वरत-स्मरण (पहले जो कामसेवन किया हो उसको याद करना) १०-मनश्चिंता (मनमें मैथुनकी चिंता करनी), इन सबके वश हो कामीकी १० तरहकी चेष्टाएं होजाती हैं:—

१-चिंता (स्त्रीकी फिकर), २-दर्शनेच्छा (स्त्रीके देखनेकी चाहना), ३-दीर्घोच्छ्वास (बडे २ श्वास आना जिनको आह कहते हैं), ४-शरीर आर्ति (शरीरमें पीडा मालूम करनी), ५-शरीर दाह (शरीरमें जलन पैदा होनी) ६-मंदाग्नि (अग्नि मंद पड़ जानी जिससे भोजन न पचे न रुचे), ७-मूर्च्छा (बेहोशी होजानी), ८-मदोन्मत्त (बावला होना), ९-प्राणसंदेह (अपने प्राण निकलनेका संदेह करना), १०-शुक्रमोचन (वीर्यका छूट जाना)।

शीलव्रतकी रक्षाके वास्ते ९ बाडोंको बचाना चाहिये:—

१-स्त्रियोंके स्थानोंमें रहना, २-रुचि और प्रेमसे स्त्रियोंका देखना, ३-मीठे वचनोंसे परस्पर भाषण करना, ४-पूर्व भोगोंको चिन्तवन करना, ५-गरिष्ट भोजन मनभरके खाना, ६-शरीरको साफ करके सिंगार करना, ७-स्त्रीकी खाट व आसन पर सुखसे सोना, ८-कामवासनाकी कथाऐं करना, ९-पेट भरके भोजन करना।

इसीलिये श्रावकको योग्य है कि ब्रह्मचारी होकर उदासीन कपड़े पहरे। जैसे कपड़े स्त्री सहित अवस्थामें पहनता था वे न पहने याने पघड़ी जामा आदि रङ्ग बिरङ्गी सर्व कपड़े छोड़े। जिनमें वैराग्य अपनेको व दूसरेको प्रगटे ऐसे सफेद या लाल कपड़े मोटे अल्प मूल्यके रुईके पहने। सरपर कन्टोप पहने या साफा बांधे जिनको देखते ही हरएक समझे कि यह स्त्रीके त्यागी हैं-उदासीन वस्त्र रक्खे। इसी प्रकार आभूषणादि भी कोई न पहरे।

यदि द्रव्यादिके स्वामीपनेसे कुछ रखना पड़े तो शृङ्गार न हो ऐसे कोई अंगूठी आदि शरीर पर रक्खे। यदि घरमें ही रहे तो किसी एकान्त कमरेमें सोए बैठे जहां स्त्री या बालक न आवें न उनके कलकल शब्द सुनाई पड़े अथवा श्रीजिनमन्दिरजीके निकट किसी धर्मशालामें सोए बैठे। सिर्फ घरमें रोटी खानेको आवे व व्यापार करता हो तो व्यापार कर आवे, शेष समय धर्मध्यानमें बितावे।

अपना काम पुत्रादिको सौंपता जावे और निराकुलताकी अभिलाषा करके निश्चय ब्रह्मचर्यकी भावनामें रत रहे।

आध्यात्मिक ग्रन्थोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, आध्यात्मिक चर्चामें अधिक उत्साही रहे, परोपकारमें व साधर्मी वात्सल्यमें दत्तचित्त रहे, गरिष्ट कामोद्दीपक भोजन न करे; सादा, शुद्ध और थोडा भोजन करे, प्रयोजन सिवाय अधिक वार्तालाप न करे, मौन रखकर विवेक व भेदज्ञान बढ़ानेका अधिक यत्न करे। यदि चित्तमें विशेष विचार स्वपर कल्याणका हो जावे तो घरका कारोबार पुत्रादिको सौंप आप अपने लायक धन वस्त्रादि परिग्रहको रखके देशाटन करे, तीर्थयात्रा करे, धर्मोपदेश दे, जिनधर्मकी प्रभावना करे, सामर्थ्य होय तो अपने साथ एक दो नौकर रक्खे जिससे रसोई आदिका काम लेवे। यदि नौकर न रक्खे तो अपने आप अपने धनसे रसोई पानी करे। यदि कोई भक्तिपूर्वक, स्नेहपूर्वक अपनेको निमन्त्रण दे तो हर्षपूर्वक स्वीकार कर ले और आप वृथा आरंभिक हिंसासे बचे, परन्तु कभी भी अपने मुँहसे याचना न करे-याचना करना दीन कायर पुरुषोंका काम है।

इसने तो जिनधर्माचरणरूपी सिंहवृत्तिका आलम्बन किया है। अतएव सदा स्वाधीन रहे-पराधीनताकी बेड़ीमें न पड़े। धर्मवृद्धि व दानके प्रचार हेतु यदि कोई भक्तिवश निमन्त्रण करके संविभाग करावे तो उजर न करे। यदि घरमें ही रहे तब भी किसीके निमन्त्रणको विना कारण अस्वीकार न करे, साधारण नियमकी अपेक्षा यह श्रावक अभी घरसे जुदा नहीं होता है, अपने कुलमें जो आजीविका प्रचलित है उनको भी नहीं त्यागता है, कुटुम्बका पोषण व पुत्रादिकोंका विवाहादि भी करता है, परन्तु अपने परिणाममें व्रतरूप रहता है और अपनी चेष्टा उदासीन रखता है। इस प्रतिमावालेको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामी कार्तिकेयकी संस्कृत टीका तथा पण्डित आशाधरकृत धर्मामृत श्रावकाचारमें ब्रह्मचारीके ५ भेद ये हैं:—

१-उपनय ब्रह्मचारिणः गणधर सूत्रधारिणः समभ्यस्तागमाः गृहधर्मानुष्ठायिनो भवन्ति-अर्थात्—उपनयन ब्रह्मचारी जो जनेऊ लेकर आगमका अभ्यास करके गृह-धर्ममें पड़ते हैं।

जो बालक ८ वर्षके उपनीति संस्कारके बाद गुरुकुलमें जा विद्याभ्यास करते हैं जिनका वर्णन पहले संस्कारोंमे होचुका है उनको उपनयनब्रह्मचारी कहते हैं!

२-अदीक्षा ब्रह्मचारिणः—वेषमंतरेण अभ्यस्तागमा गृहिधर्म-निरताः भवन्ति—अर्थात्-जो विना किसी वेषको धारण किये आगमको पढ़के गृहस्थधर्ममें लवलीन हों सो अदीक्षाब्रह्मचारी हैं।

३-अवलम्ब ब्रह्मचारिणः—क्षुल्लकरूपेण आगमाभ्यस्ताः परिग्रहीतावासा भवन्ति अर्थात् जो क्षुल्लकरूप धारण करके आगमका अभ्यास करें सो अवलम्बन ब्रह्मचारी हैं। यहां ऐसा मालूम होता है कि कोई क्षुल्लक विद्वान हो उनके साथ रहकर विद्या पढ़नी हो तो कोई विद्यार्थी क्षुल्लकके समान साथ२ रहे फिर घरमें जानेकी ईच्छासे घर जाय। उसका प्रयोजन केवल विद्याभ्यास करनेहीका था। इससे वह लौट गया—ऐसेको अवलम्बन ब्रह्मचारी कहते हैं।

४-गुढब्रह्मचारिणः—कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यासाः बन्धुभिः दुःसहपरीषहैः आत्मना नृपतिभिर्वा निरस्त परमेश्वररूपा गृहवासरता भवन्ति-अर्थात् गूढ़ब्रह्मचारी कुमार अवस्थाहीमें मुनि होकर मुनियोंके संघमें विद्याभ्यास करें फिर अपने माता पिता बन्धुओं द्वारा व कठिन क्षुधा, तृषा, शीतादिकी बाधा न सह सकनेके कारण व आपसे ही वा राजाओंके द्वारा प्रेरित होनेपर मुनिभेषको त्याग कर घरवासमें रत होय। इस कथनसे भी यह अभिप्राय निकलता है कि कोई विद्यार्थी किसी विद्वान मुनिके साथ विद्याप्राप्तिके लिये घरसे बाहर निकला हो और मुनिभेषमें रह विद्याभ्यास किया हो तथा उसके मनमें यह अभिलाषा हो कि मैं मुनि ही रहूं, परन्तु अशक्ति व प्रेरणावश अपनी इच्छाको

पूर्ण न कर सके, विद्यालाभके अनन्तर घर चला जावे सो गूढ़ ब्रह्मचारी है।

५-नैष्टिक ब्रह्मचारिणः—समाधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगा गणधरसूत्रोपलक्षिक उरोलिंगाः शुक्लरक्तवसखण्डकोपीनकटिलिंगाः स्नातकाभिक्षाऽभिक्षावृत्तयः भवन्ति देवतार्चनपरा भवन्ति-अर्थात् जिनके मस्तकमें चोटी हो या सिरका चिह्न हो, छातीमें जनेऊ हो, सफेद लाल कपड़े हों, खण्ड व कोपीन करके चिह्नित हो कमर जिनकी, भिक्षावृत्ति और अभिक्षावृत्ति ऐसे दो प्रकारके नैष्टिक होते हैं यह देवपूजनमें तत्पर होते हैं।

सातवी श्रेणीके आचरणको पालनेवाला नैष्टिक ब्रह्मचारी कहलाता है। यह लाल या सफेद रङ्गके वस्त्रोंको उदासीन रूपमें पहन सकता है।

ब्रह्मचारीको नित्य स्नानका नियम नहीं है। यदि श्रीजिनेन्द्रकी पूजन करे तो स्नान करे ही करे नहीं तो अपनी इच्छापर है, तोभी मल मलकर न नहावे, केवल ग्लानि मेटे।

सुखासनं च ताम्बूलं सूक्ष्मवस्त्रमलंकृतिः।
मज्जनं दंतकाष्टं च भोक्तव्यं ब्रह्मचारिणा ॥ ३४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी गद्दे आदि सुखमई आसनोंपर, जिनसे शरीरको बहुत आराम व आलस्य आ जावे, न सोवे न वैठे। ताम्बूल कभी न खावे, महीन कपड़े न पहेरे, अलंकार न पहने, शरीरका मंजन न करे, काष्ठकी दंतौन न करे।

ब्रह्मचर्य अवस्थाका धारक इस वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार स्वपरकल्याण बहुत ही सुगमता और आरामसे कर सकता है।

इस समय जैन जातिमें सैकड़ों ऐसे ब्रह्मचारियोंकी आवश्यकता है जो एक स्थानहीमें रहकर परोपकार करें, चाहे वे किसी भी संस्थाका काम करें-उसमें खूब महिनत करें। जैसे किसी विद्यालय आदिमें व जिनवाणीकी सेवामें व पुस्तकोंको देखकर सारांश

चुननेमें व नवीन ग्रन्थोंकी रचनामें व प्राचीन ग्रन्थोंके प्रकाशनमें व गवर्नमेन्टकी लायब्रेरियोंमें बैठ कर जैन धर्म सम्बन्धी क्या २ खोज की है उनको संग्रह करनेमें व किसी पत्रको दिनरात मिहनत कर उपयोगी लेखोंसे भरकर चलानेमें इत्यादि अनेक परोपकारके कार्य एक ही स्थान पर रहकर कर सकते हैं। तथा जो देशाटन करना चाहे वे ग्राम ग्राममें धर्मोपदेश देनेमें, पाठशालाएं स्थापित करानेमें, सरस्वती भण्डारोंकी सम्हाल करनेमें, दयाधर्मका प्रचार करनेमें, अजैनोंको मांस मदिरा छुड़ाकर जैन धर्मका श्रद्धान करा देनेमें इत्यादि अनेक उत्तमोत्तम कार्योंमें अपने जीवनके अमूल्य समयको बितावें। पर यह ध्यानमें रहे कि इन ब्रह्मचारियोंको अपने नित्य नियम व संयममें शिथिल न होना चाहिये अर्थात् नित्य ही सादा शुद्ध भोजन नियमसे मौनपूर्वक लेनेमें, त्रिकाल सामायिक कमसे कम दो घड़ी व उसके अनुमान करनेमें, सचित्त वस्तु न खानेमें, प्रति अष्टमी व चौदसको उपवास करनेमें व १६ प्रहर धर्मध्यान सहित रह अष्टमी व चौदसको भी एकभुक्त करनेमें इत्यादि जो २ क्रियाएं सप्तम श्रेणीवालेको करनी चाहिये उनके करनेमें कभी भी प्रमाद न करें। क्योंकि जो आत्मीक संयम और आत्मीक बलमें सावधान है वही दूसरोंको सुमार्ग पर चला सकता है तथा अपने आपको शास्त्रोक्त आत्मोन्नतिका दृष्टान्त बना सकता है।

आजकल कोई २ ऊपर कहे हुए चार प्रकारके ब्रह्मचारियोंमेंसे किसीमें न होकर तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी भी क्रियाओंको न पालन कर अपनेको ब्रह्मचारी कहलाते हैं और ऐसी अवस्थामें भी रात्रिभोजन पान, अशुद्ध आहार, सचित्त भोजन करते हैं, नियमसे भोजनादि नहीं करते, न तीन काल सामायिक करते न अष्टमी चौदस उपवास करते, किन्तु मात्र स्त्री सेवनके त्यागको ही ब्रह्मचर्य मान अन्य सर्व क्रियाओंमें स्वच्छन्द रहते हैं; यह प्रथा ठीक नहीं है—शास्त्रोक्त मार्गको उठानेवाली है। जिसको

गृहस्थीमें फंसना है. अभी केवल विद्यार्थी हैं वही और आचरणोंमें ऐसा विचार न कर विद्या पढ़ने तक ब्रह्मचारी रहता है, परन्तु जिसने स्त्रीको होते हुए त्यागा है व स्त्रीके देहांत होने पर फिर स्त्री संसर्गका त्याग किया है-यह नैष्टिक ब्रह्मचारीके सिवाय अन्य संज्ञामें नहीं आ सकता। अतएव स्वच्छन्दता छोड़ नियमानुसार ही वर्तना योग्य है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक प्रवृत्तिका मार्ग है, इसके आगे निवृत्तिका मार्ग है। इसलिये भले प्रकार उद्यम करके स्वतन्त्रताके साथ रहता हुआ यहां तक स्वपर कल्याण कर सकता है। आगे कुछ परतंत्रता है जिसका वर्णन आगे देखिये।

इस प्रतिमा तक तो अपने हाथसे कुल काम कर सकता है, याने अपनी आजीविकाका उपाय व भोजन आदिका बनाना तथा सवारी आदि पर चढ़कर इधर उधर जाना, परन्तु इसके आगे बहुतसी बातोंका परहेज होजाता है। जबतक किसी श्रावकके चित्तमें प्रवृत्तिरूप रह परोपकार करनेकी उत्कृष्ट चेष्टा है तबतक तो वह इसी श्रेणीमें ही रह उद्यम करे और जब अन्तरंगमें प्रवृत्तिरूप परोपकारकी भावना कम होजावे और आत्मध्यानका विशेष अभ्यास बढ़ जावे तब इसके आगे कदम रक्खे। आजकल बहुधा लोग इसके आगेके दरजोंके नियम तो पालने लग जाते हैं, परन्तु आगेकी श्रेणीमें जितने ज्ञान, वैराग्य और आत्मध्यानके अभ्यासकी आवश्यक्ता होती है उनको नहीं रखते हैं। सो ऐसे व्यक्ति बाह्य संयम बहुत कष्टसे पालते हैं तथा जिनकी वैयावृत्यमें बहुधा श्रावक "गले पड़ेकी बात" खयाल करते हैं, परन्तु अपनी हार्दिक रुचि तथा श्रद्धाको नहीं दिखलाते, अतएव आगेकी श्रेणियां निवृत्तिमें तन्मयी आत्मानुभवी श्रावकके ही धारने योग्य हैं। यहांतक आप स्वतंत्र वृत्तिसे हरएक काम कर सकता है जिससे किसी स्थान व कालमें कोई आकुलता नहीं पैदा होती।

अध्याय चौदहवां ।

आरम्भत्याग-प्रतिमा ।

जब गृहस्थी श्रावक जो अभीतक ब्रह्मचर्यकी श्रेणीमें था देखता है कि अब मैंने अपने पुत्रादिकोंको सर्व व्यापार सौंप दिया है व मेरे घरमें मेरे पुत्र व उनकी वधू मुझे हर्षपूर्वक भोजन पान दे दिया करेंगे अथवा साधर्मी भाई मेरे भोजनपानके प्रबन्धमें सावधान रहेंगे तब वह इस आठवें नियमको धारण करता है। इसका स्वरूप इस भांति है—

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥
(र० क०)

भावार्थ—जो श्रावक जीवोंके घातक सेवा, खेती, व्यापार आदि आरम्भ कार्योंसे विरक्त होता है वह आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी है।

जं किंचि गिहारंभं बहुथोवं वा सया विवज्जेई ।
आरंभणिवत्तिमई सो अट्ठमु सावऊ भणिऊ ॥
(वसुनन्दि श्रा०)

भावार्थ—जो गृहका आरम्भ थोड़ा हो या बहुत, सदा ही न करे सो आरम्भसे छूटा हुआ आठवां श्रावक होता है।

निरारम्भः स विज्ञेयो मुनीन्द्रैर्हतकल्मषैः ।
कृपालुः सर्वजीवानां नारम्भं विदधाति यः ॥ ८४० ॥
(अ० ग०)

अर्थ—जो श्रावक सर्व जीवोंपर दयावान हो आरम्भ नहीं करता है वह निरारम्भी है ऐसा जानना चाहिये। यह बात दोषरहित मुनीन्द्रोंने कही है।

आरम्भ दो प्रकारके होते हैं—एक तो व्यापारका आरम्भ। जैसे रोजगारके लिये तरह तरहके उद्योग करना जिनसे बचानेपर हिंसा सर्वथा नहीं बच सकती।

दूसरे घरके कामोंका आरम्भ जैसे पानी भरना, चूल्हा जलाना, चक्कीमें पीसना, ऊखलीमें कूटना, घरको झाड़ना बुहारना, रसोईका बनाना इत्यादि। इन दोनों प्रकारके आरम्भोंको यह नहीं करता है; किन्तु धर्म कार्य निमित्त जो आरम्भ हैं उनका इसके त्याग नहीं है, उन धर्मकार्योंको बहुत यत्नके साथ करेगा। जैसा कि कहा है—

"न करोति न कारयति आरम्भविरतः श्रावकः कान् कृष्यादीन् कृषीसेवावाणिज्यादिव्यापारान् न पुनः स्नपनदानपूजाविधानादि आरम्भान् तेषां अंगिघाते अनंगत्वात्। पुत्रादीन् प्रति अनुमतेः कदाचित् निवारयितुम् अशक्यान् मनोवाक्कायैः कृतकारिताभ्यामेव सावद्यारम्भो निवर्तते इत्यत्र तात्पर्यार्थः॥"

भावार्थ—खेती, सेवा, वाणिज्य आदि व्यापारोंको न करता है न कराता है; परन्तु अभिषेक, दान, पूजा विधानादिके व्यापारका त्याग नहीं है। उनमें हिंसा होते हुए भी इनके त्याग नहीं है तथा अपने पुत्र आदिकोंको जब वे पूछें और आप उनको रोक नहीं सकता है तब सलाह दे सकता है। अभी इसको मन, वचन, कायसे आरम्भको खुद करने तथा करानेका त्याग है, किन्तु अनुमति देनेका त्याग नहीं है—ऐसा प्रयोजन है।

किसी किसीका ऐसा मत है कि यह व्यापारादिको तो त्यागे, परन्तु रसोई बनाना, पानी भरना अपने लिये आवश्यक कामोंको अभी नहीं त्यागे; परन्तु ऐसा खुलासा कहीं देखनेमें नहीं आया। वसुनंदिश्रावकाचारके मतसे तो घरका कुछ भी आरम्भ नहीं कर सकता परन्तु यदि वह अकेला हो और जीविकाका कोई उपाय न हो तो वह पापरहित कोई जीविका कर सकता है। जैसे आरम्भ रहित चाकरी व किसी कारीगरीका बनाना आदि-ऐसा मत पं० मेधावीका है। जैसे—

कदाचिज्जीवनाभावे निःसावद्यं करोत्यपि।
व्यापारं धर्मसापेक्षमारम्भविरतोऽपि वा ॥ ३७ ॥
(धर्मसंग्रह)

भावार्थ—किसी वक्त जीविकाका उपाय न रहे तो पापरहित आरम्भ धर्मकी अपेक्षाको लिये हुए कर भी सकता है। इस वचनसे यह सिद्ध होता है कि जब वह आजीविका कर सकता है तब यदि अकेला हो तो अपने लिये भोजन व पानका भी उपाय कर सके, तथापि यह अपवाद मार्ग दीखता है। राजमार्ग यही श्रेष्ठ है—जो कोई आरम्भ करे, करावे नहीं।

इस श्रेणीमें आकर श्रावक अपना व्यापार पुत्रादिकोंको तो सौंपता ही है, किन्तु अपनी सब परिग्रहका विभाग कर देता है। जिसको जो देना होता है दे देता है व दान करना होता है कर लेता है और अपने योग्य थोड़ा साधन वस्त्र आदि रख लेता है सो भी उनको व्याजमें नहीं लगाता है। इस धनको वह समयर पर धर्मकार्योंमें व परोपकारमें खर्च करता है।

अब वह विशेष उदास रह एकांत सेवन करता है, अपने पुत्रादिक व अन्य साधर्मी जो निमन्त्रण दे जाय वहां जा जीम आता है। जो अपनेको त्याग आखड़ी हो सो बतला देता है। यदि किसी भी घरके कामकाजकी व व्यापार सम्बन्धी कोई सलाह पुत्रादिक पूछे तो सम्मतिरूप कहकर नफा नुकसान बता देवे-प्रेरणा न करे। यदि पुत्रादिक पूछे कि आज रसोईमें क्या२ बने तो वह केवल मात्र उन चीजोंको बतला देवे जिससे शरीरको अनिष्ट होता हो कि यह मेरेको हानिकारक है, परन्तु अपने विषयकी लोलुपतावश किसी भी वस्तुको बनानेके लिये आज्ञा न करे। पानी प्रासुक लेकर थोड़े जलसे अपना आवश्यक काम करे। ७ मी श्रेणीमें स्नानक्रिया अधिक

करता था, यहां बहुत कम करता है। जब पूजनादि आरंभ करना हो तो थोड़े प्राशुक जलसे नहा लेवे। जीवहिंसा बचानेका बहुत उपाय रक्खे। मलमूत्र व जल आदि सूखी जमीनमें क्षेपण करें।

सवारी पर चढ़नेका त्याग करे, घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी, पालकी आदि पर न चढ़े; क्योंकि ऐसा करनेसे जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकता। रात्रिको प्रासुक भूमि पर किसी धर्मकार्यवश चले। यदि जीवोंके संचारकी शंका हो तो चांदनी व दीपकके प्रकाशमें चले। अपने हाथसे दीपक न जलावे, परन्तु स्वाध्यायादि धर्म-कार्योंके लिये दीपक जला सकता है; क्योंकि धर्म सम्बन्धी आरंभका त्याग नहीं है। कपड़े न धोवे, पंखा न करे। अपने कपड़े मैले हों तब पुत्र व कोई साधर्मी ले जाकर धोकर दे देवे तो ग्रहण कर ले। आप आज्ञा करके न धुलवावे। ज्ञानानंद श्रावकाचारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहा है:—

"इसके व्यापार व रसोई आदि आरंभका त्याग है, दूसरेके व अपने घर न्यौता बुलाया जीमें।" यद्यपि सवारी पर चढ़के चलनेका त्याग यहांसे शुरू होकर आगे सर्व स्थानोंमें रहता है तथापि किसी किसीकी यह सम्मति है कि जो ऐसी सवारी है कि वह एक नियत किये हुए मार्ग पर ही अपने नियत काल पर विना हमारी प्रतीक्षाके जाती है याने उस पर यदि हम जाएं तब भी जावे, न जावें तब भी जावे तो ऐसी सवारी पर चढ़के जानेमें कोई हर्ज नहीं है, जैसे रेलगाड़ी व ट्रामगाड़ी। इनकी जानेकी लाइन एक ही मुकर्रर है, उसी पर यह सदा चलती है, जिससे उन लाईनपर जीवोंका संचार नहीं रहता, दूसरे इनके जानेका नियम व समय नियत ही है, खास किसी एकके लिये नहीं जाती है। इन दो कारणोंसे इनपर चढ़के देशसे देशान्तर जानेमें हर्ज नहीं है-ऐसा कहते हैं। यद्यपि वर्तमान स्थितिको देखकर यह युक्ति दी जाती है तथापि वैराग्यमय आत्मध्यानी विरक्तमार्गकी

शोभा पगसे गमन करनेमें ही है-निराकुलता भी उसीमें विशेष है।

आरम्भत्यागी अभी घरको सर्वथा छोड़ नहीं है। अतः घरमें धर्मसाधन करे। यदि तीर्थयात्रादि करनेकी अभिलाषा हो तो अपने पुत्र व साधर्मी भाईको साथ ले पगसे धीरे धीरे धर्मोपदेश करता, नीच ऊँच जैन व अजैन सर्वको धर्म मार्गपर लगाता चले। यदि घरमें न रहता हो और देशाटन भ्रमण ही करता हो तो भी एक दो साधर्मियोंके साथ पगसे घूमें और धर्मका प्रचार करे व ऐसे प्रान्तोंमें घूमें जहां श्रावकोंके घर बीस मीलसे अधिक दूरपर न हों। क्योंकि निवृत्तिके उत्सुकको निवृत्त और निराकुलताके साथमें रहकर विशेष धर्मसेवन करना योग्य है।

रेल व ट्रामपर चढ़ना या नहीं इस विषयपर सर्वथा स्वीकारता व निषेध हम अपनी बुद्धिके अनुसार नहीं कर सक्ते, ज्ञानवान विचार लेवें। तौभी हमारी संमतिमें आरम्भत्यागीके लिये किसी सवारीपर भी चढ़ना योग्य नहीं है। उसकी विरक्तता उसको स्वतंत्र रहनेहीकी आज्ञा देती है।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अध्याय पन्द्रहवां—

परिग्रहत्याग प्रतिमा ।

इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति है:—

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४५ ॥

भावार्थ—जो बाहरके दस प्रकारके परिग्रहोंमें ममताको छोड़ करके मोहरहित होता हुआ अपने स्वरूपमें ठहरता है, सन्तोषमें लीन होता है-वह परिचित परिग्रहसे विरक्त श्रावक है।

यहां वह अपने शेष परिग्रहको विभाजित करके अपने पास कुछ पहनने ओढ़ने योग्य वस्त्र व खाने पीनेका पात्र रखकर और सर्वको त्याग देता है। सागारधर्मामृतमें इस भांति कहा है:—

एवमुत्सृज्य सर्वस्वं मोहाभिभवहानये ।
किंचित्कालं गृहे तिष्ठेदौदास्यं भावयत्सुधीः ॥ ९२ ॥

गृहे तिष्ठति इति अनेन स्वांगाच्छादनार्थं वस्त्रमात्रधारणमतः मूर्छा अस्य लक्षयति ते विना गृहावस्था अनुपपत्तेः ।

मुत्तूण वच्छमेतं परिग्गहं जो विवज्जए सेसं ।
तच्छवि मुच्छं ण करदि जाणसो सावऊ णवमो ॥

भावार्थ—यहां मोहकी हानिके लिये सर्व परिग्रहको छोड़कर घरमें कुछ काल उदासीनताको भावता हुआ रहता है ऐसा कहनेसे यह प्रयोजन है कि अपने अंगको ढकनेके लिये वस्त्र मात्र रखता है।

ज्ञानानन्द श्रावकाचारमें इस भांति है—"अपने पहरनेको धोती, पछेवड़ी पोत्या (सिरपर ढकनेको) आदि राखे है, अवशेष त्यागे है।"

इस प्रतिमामें श्रावक पहलेसे अधिक उदासीन रहे। सामायिकादि ध्यानरूप कार्योंका विशेष उद्यम रक्खे। भोजन अपने

पुत्रादि व अन्य साधर्मियोंद्वारा निमन्त्रित होने पर करे, प्राशुक जल वर्ते और जो क्रिया आठमीमें कही जा चुकी है उन सबको पाले।

सुभाषितरत्नसन्दोहमें यह श्लोक है:—

संसारद्रुममूलेन किमनेन ममेतियः।
निःशेषं त्यजति ग्रन्थं निर्ग्रंथं तं विदुर्जिनाः॥ ८८१॥

भावार्थ—यह परिग्रह संसार रूपी वृक्षका मूल है, इससे मेरा क्या प्रयोजन है-ऐसा समझकर जो सर्व परिग्रहको त्यागता है उसे परिग्रह त्याग प्रतिमावाला कहते हैं।

प्रश्न—परिग्रहसे कार्य तो आठवीं श्रेणीमें ही नहीं लेता था, यहां उसने विशेष क्या किया?

उत्तर—यद्यपि ८ वीं श्रेणीमें आरम्भके कार्य करता नहीं था और परिग्रहको इसने अपने पुत्रादिको सौंप दिया था, तौ भी इसने अपने पास द्रव्य या वस्त्रादि रख छोड़ा था इसमे इसकी मूर्छा नहीं मिटी थी। ९ वीं श्रेणीमें अपनी सब मूर्छाको दूर करता है, केवल बहुत ही जरूरी वस्त्र व भोजन खाने पीनेके लिये पात्र रख लेता है। यह श्रावक एकांत घरमें व धर्मशालामें रहकर रात्रि दिन धर्मध्यानकी चिन्ता रखता है।

अध्याय सोलहवां ।

अनुमतित्याग-प्रतिमा ।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥
(र० क०)

भावार्थ—जो आरम्भमें, परिग्रहमें वा इस लोक सम्बन्धी कार्योंमें अनुमति कहिये सम्मति न देवे वह समान बुद्धिका धारक अनुमति त्यागी है।

सर्वदा पापकार्येषु कुरुतेऽनुमतिं न यः।
तेनानुमननं युक्तं भण्यते बुद्धिशालिना ॥८४२॥
(अ० ग०)

अर्थ—जो सदा ही पापके कार्योंमें अपनी अनुमति नहीं करता है याने सलाह नहीं देता सो अनुमतित्यागी है।

"धनोपार्जनगृहहट्टनिर्माणपणप्रमुखानि तेषु गृहस्थकार्येषु अनुमनने मनसा वाचा श्रद्धानं रुचिं न करोति। आहारादीनां आरम्भाणाम् अनुमननात् विनिवृत्तो भवति। (स्वा० सं० टीका)

भावार्थ—धन पैदा करना, घर, बाजार, हवेली बनाना आदि गृहस्थीके कार्योंमें मनसे व वचनसे रुचि न करे अर्थात् सलाह न देवे तथा आहारादि आरम्भ कार्योंमें भी सलाह न देवे। अर्थात् ९ मीं तक तो वह पुत्रादिके पूछनेपर घरके कामोंमें सलाह बतला देता था व अपने शरीरकी रक्षाके हेतु जिह्वा इन्द्रियके वश न हो आहार करनेकी भी सम्मति पूछनेपर बता देता था, अब यहां यह सब त्यागता है।

पहले तो निमंत्रण हो जानेपर जाता था, अब खास भोजनके

समय जो ले जाय वहां भोजन कर लेता है। पहलेसे निमंत्रण स्वीकार नहीं करता है।

चैत्यालयस्थः स्वाध्यायं कुर्यात् मध्याह्नवंदनात्।
ऊर्ध्वम् आमंत्रितः सोऽश्नात् गृहे स्वस्य परस्य वा ॥३१॥
(सा० ध०)

१० मीं प्रतिमावाला चैत्यालयमें रह स्वाध्याय करे। मध्याह्नकी वन्दनाके ऊपर जो बुलावे अपने या दूसरेके घरमें जीम जावे।

नोट—इससे यह प्रयोजन समझमें नहीं आता कि दोपहरके बाद भोजनको जावे। पर यह अभिप्राय है कि एक दिनके ४ भेद हैं-प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, अपराह्नकाल और सायंकाल। हरएक काल ३ घण्टेका होता है, इस कारण ९ बजेसे मध्याह्नकाल प्रारम्भ होता है। सो वन्दना करके आहारको जावे और सामायिकके समय तक निवट ले।

इसके परिणाम पहिलेसे बहुत विरक्त हैं। घर सम्बन्धी कामोंकी सलाह देना भी नहीं चाहता है। घरके त्यागका उत्सुक है। शेष क्रियाएं पहलेकी भांति पालता है। वस्त्रके परिग्रहको भी यथाशक्त घटाता है। शीत व उष्णकी बाधा सहनेका अभ्यास करता है, क्योंकि यह शीघ्र ही खंड वस्त्रधारी क्षुल्लक होनेका उत्सुक हो रहा है। यह अत्यन्त उदासीनताको चाहनेवाला एकांत गृह व धर्मशाला व नगर बाहर रहकर अपने कर्मोंके नाशका उद्यम करता है।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अध्याय सत्रहवाँ।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा।

क्षुल्लक और ऐलक।

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्त पस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥
(र० क०)

भावार्थ—जो घरको बिलकुल छोड़कर घरसे मुनि महाराजके पास वनमें जाता है और गुरुके निकट व्रतोंको धारण करके भिक्षावृत्तिसे भोजन करता हुआ तप करता है, सो खण्ड वस्त्रका धारी उत्कृष्ट श्रावक है।

स्वनिमित्तं त्रिधा येन कारितोऽनुमतः कृतः।
नाहारो गृह्यते पुंसा त्यक्तोद्दिष्टः स भण्यते ॥ ८४३ ॥
(सु० र०)

अर्थ—जो अपने निमित्त किया हुआ, कराया हुआ व अपनी अनुमति या सलाह या रुचिसे बनाया हुआ ऐसे तीन प्रकारका भोजन नहीं ग्रहण करता है सो उद्दिष्ट आहार त्यागी श्रावक है।

"पात्रं उद्देश्य निर्मायतमुद्दिष्टः स च असौ आहारः उद्दिष्टाहारः तस्मात् विरतः—

स्वोद्दिष्टापिंडोपधिशयनवरासनवसत्यादेः विरतः य अन्नपान खाद्यस्वाद्यादिकं भक्षयति भिक्षाचरणेन मनवचनकायकृतकारित-अनुमोदनारहितः। मह्यं अन्नं देहि इति आहार प्रार्थनार्थे द्वारोद्घाटनं शब्दज्ञापनं इत्यादि प्रार्थनारहितं, मकारत्रयरहितं चर्मजलघृततैल-रामठादिभिः अस्पृष्टं रात्रावाकृतं चांडालनीचलोकमार्जारशुनकादि-स्पर्शरहितं यतियोग्यं भोज्यं। एकादशके स्थाने ह्युत्कृष्टः श्रावको

भवेत् द्विविधः वस्त्रैकधरः प्रथमः कोपीनपरिग्रहोऽन्यस्तु। कोपीनोऽसौ रात्रिप्रतिमायोगं करोति नियमेन लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते हि उपविश्य पाणिपुटे। (स्वा० का० सं० टीका)

किसी पात्रके लिये भोजन बनाना है इस उद्देश्यसे बनाया हुआ भोजन उद्दिष्ट आहार है। इस प्रकारके आहारसे जो विरक्त हो सो उद्दिष्टत्यागी है अर्थात् जो बुलाया हुआ किसी खास जगह भोजन करने न जावे। भोजनके समय जावें, जो भक्तिसे पड़गाहे वही भोजन कर ले।

यह श्रावक खास उसीके लिये बनाया हुआ भोजन, शय्या, आसन, वस्ती आदिसे विरक्त रहता है। अन्न, पान, स्वाद्य, खाद्य चारों ही प्रकारका भोजन भिक्षारूपसे करता है। मन, वचन कायसे भोजन बनता नहीं बनवाता नहीं, न बने हुएकी अनुमोदना करता है। जो श्रावकने खास अपने लिये बनाया है उसीमेंसे विभागरूप जो वह भक्तिसे दे उसे लेता है। मुझे अन्न दो ऐसी आहारके लिये प्रार्थना नहीं करता, न गृहस्थोंके बन्द दरवाजेको खोलता है, न भोजनके लिये शब्द करके पुकारता है। मद्य, मांस, मधुरहित बर्तनमें रक्खा जल, घी, तेल आदिसे बिना छुआ हुआ रात्रिको न बनाया हुआ; चांडाल, नीच आदमी, बिल्ली, कुत्ता आदिसे नहीं स्पर्श किया हुआ मुनियोंके योग्य भोजनको ग्रहण करता है। यह उत्कृष्ट श्रावक दो प्रकारके होते हैं? प्रथम एक ही वस्त्र धारी, द्वितीय केवल कोपीन मात्र धारी। कोपीनधारी रात्रिको मौन सहित प्रतिमा-योग धारे, कायोत्सर्ग करे, नियमसे अपने केशोंका लोंच करे, मोरपीछी रक्खे तथा अपने हाथमें ही ग्रास रखकर बैठकर खावे। प्रथमको क्षुल्लक और दूसरेको ऐलक कहते हैं।

स द्वेधा प्रथमः श्मश्रुमूर्धजानपनाययेत्।
सितकौपीनसंव्यानः कर्तर्या वा क्षुरेण वा॥ ३८॥
स्थानादिषु प्रतिलिखेत् मृदूपकरणेन सः।
कुर्यादेव चतुष्पर्व्यामुपवासं चतुर्विधम्॥ ३९॥

स्वयं समुपविष्टोऽद्यात् पाणिपात्रेऽथ भाजने।
स श्रावकगृहं गत्वा पात्रपाणिस्तदंगणे॥ ४० ॥

स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्वा प्रार्थयेत वा।
मौनेन दर्शयित्वांऽगम् लाभालाभे समोऽचिरात्॥ ४१ ॥

निर्गत्यान्यद्गृहं गच्छेत् भिक्षोद्युक्तस्तु केनचित्।
भोजनायार्थितोऽद्यात् तद्भुक्त्वा यद् भिक्षितं मनाक्॥४२॥

प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां यावत्स्वोदरपूरणीम्।
लभेत प्रासु यत्राम्भस्तत्र संशोध्य तां चरेत्॥ ४३ ॥

आकांक्षन् संयमं भिक्षापात्रप्रक्षालनादिषु।
स्वयं यतेत चादर्पः परथाऽसंयमो महान्॥ ४४ ॥

यस्त्वेकभिक्षानियमो गत्वाऽद्यादनुमुन्यसौ।
भुक्त्यभावे पुनः कुर्यादुपवासमवश्यकम्॥ ४६ ॥

तद्वद् द्वितीयः किन्त्वार्यसंज्ञो लुञ्चत्यसौ कचान्।
कौपीनमात्रयुग्धत्ते यतिवत्प्रतिलेखनम्॥ ४८ ॥

स्वपाणिपात्र एवात्ति संशोध्यान्येन योजितम्।
इच्छाकारं समाचारं मिथः सर्वे तु कुर्वते॥

(सा० ध०)

भावार्थ—ग्यारह प्रतिमाधारी दो प्रकारका होता है। पहला क्षुल्लक जो सफेद कोपीन और उत्तर वस्त्र याने खण्ड वस्त्र रक्खे तथा अपने मूंछ, दाढ़ी और सिरके केशोंका लोंच कातरनी या छुरेसे करावे। कोमल उपकरण याने पीछीसे स्थान आदिको झाड़कर बैठे: तथा मासमें चार पर्वोंके दिन चार प्रकार आहारको त्याग उपवास करे। स्वयं बैठ हाथमें रखवाकर या बर्तनमें लेकर भोजन करे। क्षुल्लक श्रावक हाथमें पात्र लिये हुए गृहस्थीके घरमें आंगन तक जावे। और खड़ा होकर "धर्मलाभ" कहे। मौनसे अपना अङ्ग दिखावे। यदि वे पड़गाह लें तो ठीक नहीं तो लाभ व अलाभमें समभाव रखके दूसरे घर जावे। अपने पास पानीके पात्रके

सिवाय एक भोजन लेनेका भी पात्र होता है उसमें जो भोजन कोई श्रावक दान कर दे उसे लेकर दूसरे घरमें जावे। जहांतक उदर पूर्ति होनेतक न मिले वहांतक जावे फिर किसी घरमें प्राशुक जल लेकर वहां भोजन कर लेवे और भिक्षाके पात्रको आप ही धो लेवे। मद नहीं करे, नहीं तो बड़ा असंयम होवे। जिस क्षुल्लकको एक ही घरमें भिक्षाका नियम हो वह एक ही घरमें जो मिले तो भोजन करलें और जो न मिले तो अवश्य उपवास करे।

दूसरा भेद ऐलकका है सो भी पहलेकी भांति क्रिया करे, किन्तु उसमें विशेष यह है कि यह अपने केशोंका लोंच आप ही करे, केवल कोपीन मात्र धरे। यतीके समान आप प्रकाशमान रहे। अपने हाथमें ही नियमसे भोजन खावे, जो दूसरेने विचारपूर्वक हाथमें रख दिया हो। तथा यह श्रावक परस्पर इच्छाकार करे। इनको कई घरसे लेनेका निषेध है, क्योंकि ऐलकके पास जलका पात्र तो होता है, परन्तु भोजन रखनेका पात्र नहीं होता।

वसुनंदिश्रावकाचारमें भी ऊपरकी भांति ही कथन है। ज्ञानानन्दश्रावकाचारमें इस भांति कथन है—

"उत्कृष्ट श्रावक बुलाया नहीं जीमें, कमंडल पींछी पछेवडी, लंगोटी, स्पर्श शूद्र लोहेका शेष पीतल आदि धातुका और पांच घरा सूं भोजन लेना। अन्तके घर पानी ले वहां बैठ भोजन करे। कातरया करावे, ऐलक कमंडल पीछी करपात्र आहार, लोंच करे। लाल लंगोटी राखे है और लंगोट चाहिये सो भी लेय, श्रावकके घर कहूं अक्षयदान नगर, मन्दिर व मठ मांहीं बसे है।

श्री पार्श्वनाथपुराणमें इस भांति लेख है:—

"जो गुरु निकट जाय व्रत गहैं, पर तज मठ मण्डपमें रहें।
एक वसन तन पीछी साथ, कटि कोपीन कमण्डल हाथ।
भिक्षा भोजन राखे पास, चारों परव करें उपवास।
ले उद्दंड भोजन निर्दोष, लाभ अलाभ राग ना रोष।

उचित काल कतरावे केश, डाढ़ी मूछ न राखे लेश।
तप विधान आगम अभ्यास, शक्ति समान करे गुरु पास।

यह क्षुल्लक श्रावककी रीति, दूजो ऐलक अधिक पुनीत।
जाके एक कमर कोपीन, हाथ कमण्डल पीछी लीन।
विधिसे बैठ लेहि आहार, पानपात्र आगम अनुसार।
करे केश लुंचन अतिधीर, शीत घाम सब सहै शरीर।

सोरठा—पान पात्र आहार, करें जलांजुलि जोड़ मुनि।
खड़े रहो तिहबार, भक्ति रहित भोजन तजै॥

दोहा—एक हाथ पर ग्रास धर, एक हाथमें लेहि।
श्रावकके घर आयके, ऐलक असन करेय॥

क्षुल्लकका खुलासा कर्तव्य।

क्षुल्लक एक लंगोटी और एक खण्डवस्त्र रक्खे, जिससे सर्व शरीरको ढंक न सके ताकि किसी अंगको खुला रखते हुए डांस सर्दी गर्मीकी परिषहोंको सहनेका अभ्यास करे। जलके लिये कमण्डल व एक पात्र भोजनके लिये रक्खे तथा मोरके परोंकी पीछी रक्खे, क्योंकि मोरके बाल ऐसे कोमल होते हैं कि रंचमात्र भी हिंसा नहीं होती। भोजनके समय उदास रूप संतोषके साथ निकले तब यह प्रतिज्ञा करे कि मैं किस २ मुहल्लेमें भोजनार्थ घूमुंगा व कई घरसे थोड़ा २ भोजन लेकर जीमूंगा व एक ही घरमें जो मिलेगा सो ले लूंगा। ऐसा विचार कर श्रावकके घरके द्वार पर व आंगन तक आ जावे जहां सब कोई जा सकते हैं यदि श्रावक देखते ही पड़गाह लेवे और 'आहार पानी शुद्ध' कहे तो श्रावकके साथ होकर घरके भीतर चला जावे, जो सम्मुख न खडा हो तो कायोत्सर्ग करके 'धर्मलाभ' कहे। यदि इतनेमें पड़गाह ले तो चला जावे नहीं तो लौटकर दूसरेके घरमें इसी भांति करे। यदि वह पड़गाह ले और पग धुवाय चौकेमें भक्ति सहित ले जाय और बैठावे तो आप

सन्तोष सहित आहार करले तथा यदि एक ही घर जीम लेनेका नियम न हो तो पात्रमें जो श्रावक डाल दे उसे ले और दूसरे घर जावे।

यहां यह मालूम होता है कि वह पात्र ढका हुआ होना चाहिये। ताकि उसमें कुछ गिर न पड़े, और फिर दूसरे घरमें जावे। जब भोजनके योग्य प्राप्त हो जावे तो किसी श्रावकके यहां केवल प्राशुक जल ले बैठकर भोजन करले और अपने ही हाथसे मांजकर धो लेवे। कई घरोंकी प्रवृत्ति इसीलिये मालूम होती है कि गरीबसे गरीब दातार भी दान कर सके और उसको उद्दिष्ट दोष न लगे परन्तु वर्तमानमें एक घर ही जीमनेकी प्रवृत्ति दूसरेकी अपेक्षा अधिक रुचिकर मालूम होती है अथवा किसी किसीका ऐसा भी कहना है कि पांच घर एक ही सीधमें हो तो इस प्रकार पांचोंके यहांसे भोजन ले आहार करले और फिर निवृत्त हो जावे। क्षुल्लक त्रिकाल सामायिक व प्रोषधोपवास अवश्य करे। अधिक वैराग्य और आत्मज्ञानकी उत्कण्ठा रखकर उद्यम करे।

ऐलकका कर्तव्य।

क्षुल्लकके समान सामायिक व प्रोषधोपवास करे। रात्रिको मौन रख ध्यानमें लीन रहे। एक लंगोटी मात्र वस्त्र व पीछी कमण्डल रक्खे। भोजनके समय मुहल्लोंकी व घरोंकी प्रतिज्ञा कर जावे। यदि कोई जाते ही पड़गाह ले तो ठीक नहीं तो कायोत्सर्ग करके 'अक्षयदान' कहे। इतनेमें वह श्रावक पड़गाह ले तो जाकर चौकेमें बैठ व खड़े हो हाथमें ही भोजन करे अर्थात् श्रावक एक हाथमें रखता जाय और वह दूसरे हाथसे लेता जावे। अपने सिर, डाढ़ी और मूछके केशोंका आप ही लोंच करे। विशेष ध्यान स्वाध्यायमें लीन रहे।

क्षुल्लक तथा ऐलकके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह रोज व्रतसंख्यान तपके अभिप्रायसे ऐसी अटपटी आखड़ी लेवे।

जिससे गृहस्थ लोग खासकर अनेक प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह कर द्वार पर खड़े हो बाट देखें। जब कभी अपने शरीरकी ऐसी स्थिति देखे कि आज आहार नहीं प्राप्त होगा तौ भी मेरे ध्यान व स्वाध्यायमें कोई आकुलता न होगी, तथा आज मुझे अपना अन्तराय कर्म अजमाना है तो कोई अटपटी आखड़ी रख लेवे, जैसे कि पड़गाहने-वाला ऐसी स्थितिमें प्राप्त होगा तो आहार लेंगे, अन्यथा नहीं। यदि प्रतिज्ञाके समान प्राप्त न हो तो आहार न लेवे और अपने ध्यान स्वाध्यायके स्थानको लौट जावे। नियम रूपसे रोज अटपटी आखड़ी क्षुल्लक तथा ऐलकको करना चाहिये यह बात कहीं देखनेमें नहीं आई, किन्तु प्रायः साधारण रीतिसे ही अनुद्दिष्ट भोजन लेकर धर्मध्यान करनेकी आज्ञा पाइ गई है।

अध्याय अठारहवां।

विवाहके पश्चात् आवश्यक गृहस्थके संस्कार।

गत अध्यायोंमें गृहस्थ-श्रावक किस प्रकार अपने धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थोंको भले प्रकार अपनी कषायोंके अनुसार सम्पादन करता हुआ मोक्ष पुरुषार्थका उद्यम करे और अन्तमें ऐलक तक अभ्यास करता हुआ मुनिपनेके योग्य हो यह बात वर्णन कर दी गई है। जो गृहस्थोंका पुत्र गुरुकुलमें विद्याभ्यासके लिये गया था वह जब विद्या अच्छी तरह प्राप्त कर अपने घरमें लौटता है तब मातापिता उसको गृहस्थ धर्मके पालनेके योग्य अभिलाषी जानकर उसका विवाह करते हैं। उसके पश्चात् यह गृहस्थमें किस प्रकार रहे और क्या २ आवश्यक संस्कार उसके लिये हैं, इनका वर्णन आगे किया जाता है।

नं० १८ वर्णलाभक्रिया—जब यह विवाह करके आ जाता है तब सन्तानके अर्थ ही ऋतु समयमें काम सेवन करता है। और अपने कर्तव्यको सीखता है। जब इसकी स्त्री घरके कामकाजमें चतुर होजाती है और यह पुत्र अपने गृहस्थ योग्य सर्व व्यवहारमें प्रवीण हो जाता है और अपने पितासे स्वतंत्र रह आजीविका कर सकता है तब यह वर्णलाभ क्रिया की जाती है, जिससे यह स्वतंत्रताके साथमें अपने पुरुषार्थोंकी सिद्धि कर सके। जब तक इस योग्य नहीं होता है तबतक पिताके ही साथ एक ही घरमें रहता है। जब सब तरह योग्य हो जाता है तब पिता अपनी इच्छासे इसको स्वतंत्रता दे देते हैं। इस समय मंत्रपूर्वक यह क्रिया की जाती है। पिता अपने पुत्रको अच्छी उन्नति करनेके लिये यह स्वतंत्रता देता है न कि बिलकुल छूट जानेके लिये। इनका पिता व पुत्रका

सम्बन्ध नहीं छूटता है। इस क्रियाकी आवश्यक्ता पर महापुराणमें श्रीजिनसेनाचार्य इस भांति कहते हैं—

ऊढ़ भार्योऽप्ययं तावदस्वतंत्रो गुरोर्गृहे।
ततः स्वातंत्र्यसिद्ध्यर्थं वर्णलाभोऽस्य वर्णितः॥ १३७॥

अर्थात्—जबतक इसकी वधू ऊढ़ा है अर्थात् विज्ञ (तजुर्बेकार) नहीं है तबतक यह अपने पिताहीके घरमें माता पिताके सर्वथा आधीन रहे, परन्तु इसके पश्चात् इसको स्वतंत्रताकी सिद्धिके लिये वर्णलाभ-क्रिया की जाती है। जिस तरह एक म्यानमें दो तलवार नहीं रह सकतीं ऐसे ही एक घरमें दो प्रवीण पुरुष व स्त्रियां एक साथ नहीं रह सकतीं-समय २ पर स्वतंत्रताका घात होता है। इसीलिये आजकल घर २ में लड़ाई रहती है, क्योंकि हमने सर्व संस्कारोंको मिटा दिया है और पूर्वाचार्योंकी आज्ञाका लोप कर दिया है।

इस वर्णलाभक्रियासे यह पुत्रवधू पृथक् खाते, पीते, सोते, बैठते हैं; परन्तु एक घरमें न रहें सो नहीं है। एक घरके हातेमें व निकटके ही घरमें रहते हैं।

इस क्रियाकी विधि।

शुभ दिनमें पहलेकी भांति सात पीठिकाके मंत्रोंसे पूजा, होम आदि क्रिया कीजावे, फिर सर्व श्रावक मंडलीके सामने उनकी साक्षीसे पिता पुत्रको धन धान्यादि द्रव्य देवे और यह आज्ञा करे—

धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मन् स्वगृहे पृथक्।
गृहिधर्मस्त्वया धार्यः कृत्स्नो दानादिलक्षणः॥ १४०॥
यथाऽस्मत्पितृदत्तेन धनेनास्माभिरर्जितम्।
यशो धर्मश्च तद्वत्त्वं यशो धर्मानुपार्जय॥ १४१॥

भावार्थ—हे पुत्र! इस धनको ले और इस जुदे अपने घरमें रहकर सम्पूर्ण दान पूजा आदि धर्म करते हुए गृहस्थी धर्मका पालन कर। जैसे हमने अपने पिताके दिये हुए द्रव्यसे यश और धर्मको पैदा किया है तैसे तू भी यश और धर्मका लाभ कर।

उस समय वह जुदे मकानमें जाकर रहे और भोजन करे, करावे, बड़ा आनन्द माने। इस क्रियाके कर लेनेसे पिता पुत्रका सम्बन्ध नहीं टूटता है, पिता पुत्रकी रक्षा व पुत्र पिताकी भक्तिमें लवलीन रहता है तथा पिताकी जायदादमें पुत्रका सम्बन्ध फिर भी बना रहता है ऐसा भाव समझमें आता है। क्योंकि पिताके गृहत्याग करनेपर उसका पुत्र ही उसकी जायदादका स्वामी बनता है।

इस वर्णलाभ-क्रियासे यह भी विदित होता है कि यदि एक पिताके कई पुत्र हैं तो वे सर्व स्वतंत्रतासे रहें, धनोपार्जन करें और-परस्पर धनके अर्थ कोई तकरार न करें! स्वतंत्रतासे जो उपार्जन करें उसके स्वामी अलग २ रहें। यदि एक ही व्यापार करें तो व्यापारके लाभमें अपनी २ पूंजी व शर्तोंके अनुसार जो फायदा हो उसका विभाग कर लेवें। इसमें सन्देह नहीं कि सामर्थ्य होनेपर यदि परतंत्रताकी बेड़ीमें पड़ा रहे तो कदापि धन, धर्म और यशकी बढ़वारी नहीं कर सकता। स्वतंत्रता ही अपनी मानसिक व शारीरिक शक्तियोंका उपयोग कराती है तथा अपने उद्योगमें जो विघ्न आवें उनको धीरजके साथ सहने और दूर करनेका साहस प्रदान करती है। जो धनिक पुत्र पिताकी जायदादको ही खाते और स्वयं उद्यम करके परिश्रम नहीं करते हैं वे आलसी, सुस्त, विषयानुरागी, मदांध और अधर्मी बन जाते हैं और अपने मनुष्य-जन्मको वृथा गमा देते हैं। अतएव यह १८ वां संस्कार मनुष्यकी उन्नतिके लिये अतिशय उपयोगी है।

१९-कुलचर्या क्रिया—इसप्रकार स्वतंत्रतासे रहता हुआ यह गृहस्थी होकर गृहस्थके कुलका आचरण करे अर्थात् नीचे लिखे षट्कर्म साधन करे—

१-इज्या—श्री अरहंतकी नित्य पूजा करे।

२-वार्ता—आजीविका अपने वर्णके योग्य ६ प्रकार करे यानि असि, मसि, व्यापार, कृषि, शिल्प व पशुपालन या विद्या।

ब्राह्मणके लिये कोई आजीविका नहीं है। उसको जिन-पूजन व जिन-शास्त्रोंका पठनपाठन करना ही योग्य है और यही उसका मुख्य कार्य है।

३-दत्ति—चार प्रकारका दान करे, दयासे सर्वका उपकार करे, भक्तिसे पात्रोंको देवे, अपने समान जैनियोंको औषधि, शास्त्र, अभय, भूमि, सुवर्ण इत्यादि भी देवे, जिसमें वे निराकुल हो गृहस्थके कर्त्तव्य कर सकें।

४-स्वाध्याय—शास्त्रोंको पढ़े सुने व सुनावे।

५-संयम—प्राणिसंयम और इन्द्रिय संयम पाले, जितेन्द्री रहे।

६-तप—ध्यान व उपवास व्रत आदिक कार्य करे।

२०-गृहीशिता—(गृहस्थाचार्यकी क्रिया) जब यह गृहस्थी अपने उद्योगसे धन, धर्म, यशको बढ़ा ले तथा लोकमान्यता प्राप्त कर ले और यह देखे कि मेरेमें अन्य गृहस्थियोंको गृहस्थ धर्ममें चलानेकी योग्यता है तब यह गृहस्थाचार्यके पदको ग्रहण करे उस समय प्रथमकी भांति पूजा आदि होकर यह मुख्य होवे और तबसे इसको श्रावक लोग वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विज-सत्तम, निस्तारक, ग्रामपती, मान योग्य ऐसे नामोंसे सत्कार करें। तबसे यह अन्य गृहस्थियोंके गर्भाधानादि संस्कारोंको करावे, उनकी प्रतिपालना करे, न्याय और धर्ममें औरोंसे अधिक सूक्ष्मतासे वर्ते। अपने शुभाचरणसे अपना प्रभाव प्रगटावे। आजकल पंचायतियोंमें बहुधा चौधरी, सेठ, मुखिया व पंच होते हैं। ऐसे चौधरी, सेठ व मुखिया पहले गृहस्थाचार्य ही हुआ करते थे। इनकी सर्व व्यवहार क्रिया औरोंसे उत्तम बढ़कर रहती थीं।

अनन्यसदृशैरेभिः श्रतवृत्तिक्रियादिभिः।
स्वमुन्नतिं नयन्नेष तदाऽर्हति गृहीशिताम् ॥ १४७ ॥

भावार्थ—जब गृहस्थीमें शास्त्रज्ञान, आजीविका व धर्मादि क्रियाकी ऐसी उन्नति हो जाती है जो दूसरोंमें न हो, तब यह गृहीशिता क्रियाके योग्य होता है। अब भी यह रिवाज है कि

चौधरियोंके विना विवाहादि कार्य नहीं होते, परंतु अबके चौधरी केवल रीतिरिवाज पुरानी लकीरके अनुसार जानते हैं; परंतु पूजा, पाठादि संस्कार नहीं करा सकते और न अपना प्रभाव जमा सकते हैं। अतएव जैन समाजको शास्त्रानुसार धर्मके मार्ग पर चलानेके लिये गृहीशिता क्रियाको प्राप्त ऐसे प्रभावशाली गृहस्थाचार्योंकी आवश्यक्ता है।

हमारे भाइयोंको इस सनातनके मार्गको देख इसके पालनेके लिये तुरन्त उत्साही हो जाना चाहिये। क्योंकि निराकुलताका यही मार्ग है। जब गृहस्थी कुलचर्यामें प्रवीण हो यश और धर्म बढ़ा ले तब अन्य गृहस्थियोंका अधिपति हो उनको कुमार्गसे बचावे और सुमार्ग पर चलावे।

२१-प्रशांतता क्रिया—यह गृहस्थी जैसे जैसे उन्नति करता जाता है वैसे वैसे प्रतिमा सम्बन्धी क्रियाओंको दृढ़ करता जाता है। जब इस गृहस्थाचार्यके चित्तमें पूर्ण शांति स्थापनेकी इच्छा होती है तब वह अपने समान समर्थ जो पुत्र उसको गृहस्थपनेका सारा भार दे देता है। और आप शांतताका आश्रय कर विषयोंसे विरक्त रह स्वाध्याय व उपवास सहित घरमें ही रह अपना जीवन विताता है। इस कथनसे यह विदित होता है कि यह धीरे धीरे आरम्भका त्याग करता है और ८ वीं प्रतिमाके नियम पालने लग जाता है।

२२-गृहत्याग क्रिया—जब गृहस्थीको पुत्र पौत्रादिकोंके व धनादि परिग्रहके सम्बन्धमें रहना भी अपनी आत्मोन्नतिमें बाधक मालूम होता है तब यह साधर्मी जनोंको बुलाकर उनके सामने पूर्वोक्त पूजा आदि कर पुत्रको नीचे लिखे भांति शिक्षा दे व स्वयं दानादि धर्ममें अपने द्रव्यका विभाग कर घरको त्याग देता है।

"कुलक्रमस्त्वया तात सम्पाल्योऽस्मत्परोक्षतः।
त्रिधा कृतं च नो द्रव्यं त्वयेत्थं विनियोज्यताम् ॥१५३॥

एकांशो धर्मकार्येऽतो द्वितीयः स्वगृहव्यये।
तृतीयः संविभागाय भवेत्त्वत्सहजन्मनाम् ॥ १५४ ॥
पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः।
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठः सन्तति नोऽनुपालय ॥ १५५ ॥
श्रुतवृत्तिक्रियामंत्रविधिज्ञस्त्वमतन्द्रितः।
प्रपालय कुलाम्नायं गुरुदेवांश्च पूजयन् ॥ १५६ ॥
इत्येवमनुशिष्य त्वं ज्येष्ठं सूनुमनाकुलः।
ततो दीक्षां समादातु द्विजः स्वगृहमुत्सृजेत् ॥ १५७ ॥

भावार्थ—हे पुत्र! हमारे कुलकी रीतिको हमारे पीछे भले प्रकार पालियो तथा मैंने जो अपने द्रव्यके तीन भाग कर दिये हैं उसी प्रमाण उसका उपयोग करियो। इन तीन भागोंमें एक भाग तो धर्मकार्यके लिये, दूसरा भाग घरखर्चके लिये और तीसरा भाग तुम्हारे सहजन्मोंके लिये हैं। पुत्रोंके विभागके समान पुत्रियोंका भी हिस्सा है अर्थात् सर्व पुत्र पुत्रियोंको बराबर २ द्रव्यका भाग करना योग्य है। तू कुलमें बड़ा है–इससे सर्वकी रक्षा कर, तू शास्त्र, सदाचार क्रिया, मन्त्र व विधिको जाननेवाला है. इससे आलस्य त्याग कर कुलकी रीतिकी रक्षा कर और अपने इष्टदेव और गुरुकी पूजा कर। इस तरह अपने बड़े पुत्रको शिक्षा दे क्रम २ से आकुलता छोड़कर दीक्षा लेनेके अभिप्रायसे घरको त्याग करे।

२३–दीक्षाद्यक्रिया—ऊपरके कथनसे विदित होता है कि गृहस्थी परिग्रहका त्याग कर घरसे अलग मठ व धर्मशालामें रहे, फिर अनुमतिको भी त्यागे। इस तरह ९ मीं और १० मीं प्रतिमाके व्रतोंको पालता हुआ दीक्षाद्यक्रिया धारण करे अर्थात् क्षुल्लक और ऐलकके व्रत पाले। मुनिकी दीक्षाके पहलेकी यह ग्यारहवीं प्रतिमाकी क्रिया है, इससे इसको दीक्षाद्यक्रिया कहते हैं। क्योंकि जो विरक्त पुरुष दीक्षाद्यक्रियामें अभ्यास कर लेगा वही मुनिव्रतको धारकर सुगमतासे पाल सकेगा।

२४-जिनरूपता क्रिया—अर्थात नग्न हो मुनिका रूप धारण करे।

त्यक्तचेलादिसङ्गस्य जैनीं दीक्षामुपेयुषः।
धारणं जातरूपस्य यत्तत्स्याज्जिनरूपता ॥ १६० ॥

भावार्थ—सर्व वस्त्र आदि परिग्रहको छोड़कर मुनि दीक्षाको ले। यथाजात अर्थात् जिस रूपमें जन्म लिया था उस रूपको धारण कर जिनरूपता अर्थात् नग्न दिगम्बरत्वको प्राप्त होवे।

२५-मौनाध्ययन व तत्त्वक्रिया।

कृत दीक्षोपवासस्य प्रवृत्ते पारणाविधौ।
मौनाध्ययनवृत्तित्वमिष्टमाश्रुत निष्ठिते ॥ १६२ ॥

भावार्थ—दीक्षा लेनेके दिन उपवास करके पारणाकी विधि मुनिके समान करे तथा मौन धर विनयवान हो निर्मल मन, वचन, कायसे गुरुके समीप सकलश्रुत पढ़े। शास्त्र समाप्ति तक मौन सहित पढ़े। आप परके उपदेशमें न प्रवर्ते। यहां तककी क्रियाओंका जानना गृहस्थीके लिये बहुत जरूरी है, इसलिये इनका खुलासा लिखा गया है।

आगे २८ क्रियाएँ मुनि-दीक्षासे लेकर सिद्ध अवस्था प्राप्ति करने तककी हैं जिनका हाल इस पुस्तकमें लिखना आवश्यक नहीं समझा गया। जिनको देखना हो आदिपुराणके ३८ वें पर्वको पढ़ें।

अध्याय उन्नीसवां

संस्कारोंका असर ।

हरएक वस्तु उत्तम २ निमित्तोंको पाकर शोभनीक और उपयोगी अवस्थाको प्राप्त होती है। जैसे खानसे निकला हुआ ही एक माणिक, नीलमका पत्थर प्रवीण कारीगर और घिसनेके योग्य शान व मसालेका सम्बन्ध पाने पर बहुत ही मूल्यवान और उपयोगी होजाता है व ईंट, पत्थर, लकड़ी, चूना आदि मसाला प्रवीण शिल्पीका संयोग पाकर एक अच्छे शोभनीक महलकी सूरतमें बदल जाता है, इसी तरह जिस मनुष्य-गतिमें ये बालक व बालिकाएं आते हैं उस समयके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे वे अज्ञान होते हैं, उनकी आत्मामें शक्ति व्यक्तरूप होनेको भी सन्मुख होती है, जिस कार्यके लिये गर्भ अवस्थासे ही उपयोगी निमित्तोंका मिलाना जरूरी है। यदि योग्य निमित्त मिलें तो ये बालक व बालिकाएं बहुत ही उपयोगी पुरुष और स्त्रीके भावको प्राप्त होजाते हैं।

गर्भावस्थामें गर्भस्थानमें जिस समय जीव आता है उस समय वह एक पिंडके भीतर प्राप्त होता है। यह पिण्ड माताके रुधिर और पिताके वीर्यसे बनता है। इस पिण्डका सम्बन्ध होना ही पहला संस्कार है। यदि माता पिता मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यके त्यागी, सुआचरणी, धर्मबुद्धि, सन्तोषी, परिमित आहारी, शुद्ध भोजनपानके कर्त्ता और शुद्ध विचारोंके धारक होते हैं तो उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका असर भी उनके रुधिर और वीर्यमें वैसा ही उत्तम पड़ता है और इन्हींसे बने हुए पिण्डका असर उस बालकके पौद्गलिक शरीर पर पड़ता है।

पहले जो गर्भाधानादि संस्कार वर्णन किये गये हैं वे गर्भके समयसे ही प्रारम्भ होते हैं। इन संस्कारोंको जब सुआचरणी

माता और पिता बालकके साथमें करते हैं तब उनके परिणामोंमें जो धार्मिक व सुव्यवहारिक असर पड़ता है उससे बालक बालिकाके विचार एक खास अवस्थामें बदलते जाते हैं। संस्कारोंके प्रताप और माता पिताकी सम्हालसे बालककी शक्तियां बहुत प्रौढ़ और मजबूत होजाती हैं। जैसे—कच्चे गेहूं और चनेको सूर्यकी धूपकी किरणोंका संस्कार पक्का देता है। गृहस्थका कर्तव्य संस्कारित पुरुष और स्त्रीके द्वारा ही यथायोग्य पाला जा सकता है और ऐसे सुकर्तव्यके वर्तावमें दोनोंका जीवन सुखमई देव और देवीके तुल्य परस्पर हितरूप होजाता है तथा ऐसे गृहस्थ ही पहले कही हुई प्रतिमाओंकी रीतिसे धर्माचरण करते हुए आत्मोन्नति करते चले जाते हैं और क्षुल्लक व ऐलक होकर फिर मुनि होने योग्य हो सकते हैं।

अतएव यदि मनुष्य-जन्मकी सफलता करना हो तो अवश्य अपने बालक-बालिकाओंको संस्कारित करो और पहले कही हुई रीतिसे गृहधर्मको पालो और पलवाओ। इसमें शंका नहीं कि बालकका संस्कार ठीक होनेके लिये सुसंस्कारित और सुशिक्षित माताकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। अतएव जैसे बालकको संस्कारित व सुरक्षित किया जाता है वैसे ही बालिकाको उसके योग्य संस्कारोंसे विभूषित करना चाहिये और सुशिक्षित बनाना चाहिये।

अध्याय वीसवां

संस्कारित माताका उपाय।

जब बालक गर्भमें आता है तब यह तो निश्चय नहीं हो सकता कि पुत्र होगा या पुत्री। अतएव बालकके जन्मसे पहले गर्भाधानसे लेकर मोदक्रिया तकके संस्कार तो किये ही जाते हैं, परन्तु यदि पुत्र न जन्मकर पुत्री जन्मे तो उसके लिये क्या संस्कार किये जावें तथा उसके क्या २ मन्त्र हैं, इनका विधान किसी शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया। तो भी जो जो संस्कार पुत्रके लिये हैं उनमेंसे वे संस्कार पुत्र के लिये भी किये जावे जो कि पुत्रीके लिये सम्भव है—ऐसा करनेमें कोई हर्जकी बात नहीं है। जबतक खास विधि व खास मन्त्र न मिलें तबतक नीचे प्रमाणे क्रियाएं की जावें ताकि पुत्रीके चित्तपर भी असर पड़े।

जन्म समयकी प्रियोद्भवक्रिया उसी विधिसे करे जैसे पुत्रके लिये कहा है। नित्यपूजाके बाद सात पीठिकाके मंत्रोंसे होम किया जावे। आगे चलकर पहले कहे हुए मंत्रोंसे बालिकाका सिर गंधोदक छिड़क कर पिताद्वारा स्पर्श किया जावे। उस समय पिता आशीर्वाद देवे। पहली विधिमें पुत्रके कहनेको तो शब्द हैं, परन्तु पुत्रीके लिये नहीं हैं। अतएव जब तक वे शब्द न मिलें तब तक चिरंजीव रहे, सौभाग्यवती रहे, तीर्थंश्वरकी माता हो इत्यादि शब्द कहे जावें।

फिर बालककी नाभिनाल काटनेसे लेकर नाभि गाड़ने तककी क्रिया पहलेकी भांति करे, परन्तु क्रियाओंके मन्त्र न पढ़े। क्योंकि वे सर्व पुत्र सम्बन्धी हैं। इन मंत्रोंके स्थानमें "नमः अर्हद्भ्यः" गृहस्थाचार्यद्वारा कहा जावे। बालककी माताको स्नान करानेका जो मंत्र है उसीको पढ़ स्नान कराया जावे। तीसरे दिन तारामण्डल

आकाश दिखाया जावे, तब "नमः अर्हद्भ्यः" ही मंत्र पढ़ लिया जावे। फिर नामकर्म क्रियामें पहलेकी भांति सात पीठिकाके मंत्रोंतक होम करे और कुछ शुभ नाम सतियों व धर्मात्मा स्त्रियोंके व त्रेसठशलाका पुरुषोंकी माताओंके प्रत्येक पत्रपर अलग २ लिखकर रक्खे, और किसी शुचि बालकसे उठवावे, जो नाम आवे वही रक्खा जावे।

बहिर्यानक्रियामें-पूर्वकी तरह प्रसूतिघरसे बाहर लाया जावे। पूजा केवल सात पीठिकाके मंत्रोंतक ही की जावे। इस क्रियाके खास मंत्र पुत्रकी अपेक्षा हैं, तिनको न पढ़ केवल 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे। इसी भांति निषद्याक्रिया, व्युष्टिक्रिया भी की जावे। केवल खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे। पुत्रीके लिये चौलक्रियाकी आवश्यक्ता नहीं है। यदि किसी कुलमें इसका रिवाज हो तो की जावे। खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्यः, कहा जावे अथवा पुत्रीके साथ पुत्रकी चौलक्रिया की जावे।

जब बालिका ५ वर्षकी हो जावे तब उसको सुशिक्षित अध्यापिका व वयोवृद्ध सुशील अध्यापकके द्वारा लिपिकी शिक्षा देनेके लिये "लिपिसंख्यान क्रिया" करानी चाहिये। इस समय भी सात पीठिकाके मंत्रोंतक पूजा की जाय। शेष मंत्रोंके स्थानपर 'नमः अर्हद्भ्यः' से काम लिया जाय। इस समयसे बालिकाके योग्य लिखने, पढ़ने गणित आदिकी ऐसी प्राथमिक शिक्षा दी जावे जिससे उसे आगामी ज्ञानके साधनोंमें व गृहस्थी सम्बन्धी क्रियाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेमें सुगमता मालूम हो। ८ वर्ष तक साधारण शिक्षा देकर फिर विशेष शिक्षार्थ अर्थ किसी योग्य कन्या विद्यालयमें पढ़ने भेजे अथवा अन्य शालाओंसे काम लेवे।

इस समय धर्मका भले प्रकार ज्ञान कराया जावे और साथमें सीना पीरोना, रसोई-बनाना, गृह-पालन, वैद्यक आदिकी शिक्षा

शिक्षाएं दी जावें तथा कन्याओंको गाना, बजाना व नृत्य भी सिखाना चाहिये; क्योंकि गृहधर्ममें प्राप्त वधूके लिये इनका जानना अपने पतिके चित्तके प्रसन्नार्थ जरूरी है। जब यह कन्या सच्ची माता होने योग्य शिक्षाको प्राप्त कर लेवे तब इसकी रक्षिका अथवा माता व पिता यह देखें कि अब भी इस कन्याको पढ़नेमें अधिक रुचि है तथा इसका काम-विकार दबा हुआ है तो और अधिक प्रयोजनीय शिक्षा दी जावे। कमसे कम १४ वर्षकी अवस्था तक तो पढ़ाना ही चाहिये। यदि सुशिक्षित कन्या धर्मके स्वरूपको जानकर यह कहे कि मैं आजन्म ब्रह्मचर्य पालकर अपना जीवन स्वपरकल्याणमें ब्राह्मी तथा सुन्दरीकी तरह बिताऊंगी, तो माता पिताको इसके लग्नका हठ नहीं करना चाहिये, परन्तु उसकी योग्यता और परिणामोंकी जांच किसी एक दो वयोवृद्ध धर्मात्मा सुशिक्षित श्राविकाओंसे कराई जाय। यदि यथार्थमें उसके भाव इसी प्रकारके दृढ़ हों तो वह कन्या अपने घरमें न रह किसी श्राविकाश्रममें अथवा किसी धर्मात्मा विरक्तचित्त ब्रह्मचारिणी श्राविकाके साथ रह ज्ञान, तप और उपकारकी वृद्धि करे।

यदि कन्याके परिणाम विरक्त न हों तो गृहधर्म-प्रेमी कन्याकी लग्न योग्य वरके साथ उसी विधिके साथ की जावे जिसका वर्णन विवाह संस्कारमें किया जा चुका है। और तब वह कन्या वधू भावको प्राप्त हो अपने पतिको अपना स्वामी, रक्षक, व परम प्रीतम समझे, उसकी आज्ञामें चले, अपने सत्य जिनधर्मकी क्रियाओंको रुचिसे पाले। यदि अपना पति धर्मसे विमुख हो तो उसको प्रिय वचनोंसे उपदेश देकर धर्ममें दृढ़ करे। यदि कदाचित् पति धर्मकी तरफ ध्यान न दे तो आप कभी भी धर्माचरणसे विमुख न हो, किंतु धर्माचरणको इस तरह पाले जिससे परिणामोंमें आकुलता न हो।

पतिकी सेवामें किसी प्रकारकी त्रुटि न रहे, जिससे पतिको संक्लेशपना हो जावे तथा पुत्रादिकोंकी योग्य सम्हाल

करे. भोजन शास्त्रानुसार क्रियासे बनावे, प्रमाद न करे तथा अपनी सास, ननद आदिसे प्रेम रक्खे और एक घरमें वास करनेवालोंको अपने निमित्तसे आकुलता पैदा हो जाय इस तरह वर्ताव न करे। जिस कन्या पर बाल्यावस्थासे संस्कारोंका और फिर सुशिक्षाका असर पड़ेगा वह अवश्य योग्य माता हो सकती है और उसकी सन्तान भी अवश्य सन्मार्ग पर चलनेवाली होगी। अतएव अपनी कन्याओंको धार्मिक संस्कार और विद्यासे सुसज्जित करना चाहिये। यही एक कारण वीजस्व वीर पुत्रोंकी प्राप्तिका है।

अध्याय इक्कीसवां

गृहस्त्री-धर्माचरण।

स्त्री अपने पति और पुत्रादिकोंके साथमें रहती हुई उसी प्रकार श्राविकाके व्रत पाल सकती है जिस तरह एक पुरुष अपनी स्त्री पुरुषोंके साथमें रहता हुआ श्रावकके व्रत पाल सकता है। पहले पाक्षिकश्रावकके व्रत पाले। जब उनका अभ्यास हो जावे तब दर्शन-प्रतिमा व व्रत प्रतिमाके नियमोंको पाले। यहांतकके नियम हरएक गृहस्थ स्त्री सुगमतासे पाल सकती है। फिर जब अधिक धर्मध्यान करनेकी शक्ति और आवकाश हो तब सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, रात्रिभोजन व दिवामैथुन त्याग प्रतिमाके नियम पाले। यहांतकके नियम अपने पतिके साथमें मेलसे रहते हुए श्राविका पाल सकती है।

इसके आगे ब्रह्मचर्य प्रतिमाके नियमोंको वह श्राविका उसी वक्त पाले जब पति भी पालने लग जावे अथवा अपने पतिकी आज्ञा लेकर पाले और तब घरमें किसी एकांत कमरेमें सोये बैठे। इसके आगे आरम्भ त्यागका नियम उसी समय धारे जबकि वह श्राविका यह देख ले कि मेरे घरमें पुत्रवधू आदि हर्षपूर्वक मेरी आवश्यकताओंका प्रबन्ध कर देवेंगे अथवा स्थानीय श्राविका मण्डली पर विश्वास करके इस श्रेणीके नियम पाले। पश्चात् ९ वीं श्रेणीके नियम रखते हुए वस्त्र व पात्र मात्र रक्खे, शेष परिग्रहको और उसके ममत्वको त्यागे। इसके आगे दो श्राविकाएं मिलकर किसी मठ या धर्मशालामें रहें और तब १० वीं श्रेणी याने अनुमति त्यागके नियम पालें।

वर्तमान अवस्थामें यहां तकके नियम पालना श्राविकाके लिये कुछ कठिन नहीं हैं। इसके आगे ग्यारहवीं प्रतिमामें अर्जिकाके व्रत है। यदि दो या तीन श्राविकाएं मिलकर आर्जिकाके व्रत धारें

तो धार सकती है। परन्तु यह व्रत उसी समय लेना योग्य है जब शीत और उष्णकी बाधा सहनेके लिये शरीर तैयार हो जावें; क्योंकि अर्जिका केवल १ सफेद साड़ी, पीछी और कमण्डल रखती है, क्षुल्लकके समान भिक्षावृत्तिसे भोजन लेती हैं; परन्तु केशोंका लोंच करती है।

विधवा कर्तव्य।

जब स्त्रीका पति देहांत कर जावे तब उसको विधवा अवस्थामें रहकर अपना जीवन श्राविकाके व्रतके पालनेमें बिताना चाहिये।

विधवाको किस प्रकार रहना चाहिये, इस विषयमें सोमसेन त्रिवर्णाचारके कुछ श्लोक लिखे जाते हैं:—

> तत्र वैधव्यदीक्षायां देशव्रतपरिग्रहः।
> कण्ठसूत्रपरित्यागः कर्णभूषणवर्जनम् ॥ १९८ ॥
> शेषभूषानिवृत्तिश्च वस्त्रखण्डान्तरीयकम।
> उत्तरीयेण वस्त्रेण मस्तकाच्छादनं तथा ॥ १९९ ॥
> खट्वाशय्याञ्जनालेपहारिद्रद्रववर्जनम्।
> शोकाक्रन्दनिवृत्तिश्च विकथानां विवर्जनम् ॥ २०० ॥
> त्रिसंध्यं देवतास्तोत्रं जपः शास्त्रश्रुतिः स्मृतिः।
> भावना चानुप्रेक्षाणां तथात्मप्रतिभावना ॥ २०१ ॥
> पात्रदानं यथाशक्ति चैकभक्तिमगृद्धितः।
> ताम्बूलवर्जनं चैव सर्वमेतद्विधीयते ॥ २०२ ॥

अर्थ—विधवा श्राविकाके देशव्रत ग्रहण करे, कंठमेंसे मंगल सूत्र उतारे, कानके गहने व अन्य आभूषण न पहरे, धोती पहरे, ऊपरके वस्त्रसे मस्तकको ढके, खाट व शय्यापर न सोवे, सुरमा न लगावे, हल्दी लगाकर न नहावे, पतिके लिये शोक न करे—न रोवे, खोटी कथाएं न कहे, तीनों संध्याओंमें श्रीजिनेन्द्रका स्तोत्र पढ़े, जाप देवे तथा शास्त्र सुने, १२ भावनाओंका विचार करे, तथा आत्मस्वरूपकी भावना करे, यथाशक्ति पात्रदान करे, गृद्धता

न करके एक समय भोजन करे तथा पान ताम्बूल न खावे।

विधवा स्त्री यदि शृङ्गार करे, पान खावे, गहने पहने, कामकथाएं करे, खोटे गीत गावे, दोनों वक्त कई समय भोजन करे, खोटी संगति करे, रागरंग व नाच देखे तो वह अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन कैसे रख सकती है? यही कारण है कि बहुधा विधवा स्त्रियां अपने शीलको भ्रष्ट कर बैठती हैं।

यह तन क्षणभंगुर है तो भी यह बड़े कामका है। यदि इस तनसे तप किया जाय, स्वाध्याय, पूजा व परोपकार किया जाय तो इस मनुष्य देहसे यह आत्मा स्वर्गादिक व परम्परा मोक्षको प्राप्त कर सकता है। इसलिये विधवा स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने जीवनको सफल कर लेवें। आप विद्यासहित और सुचारित्रवान होकर दूसरोंके साथ उपकार करें व उनका भला करें। विषयोंकी तृष्णामें पड़ा हुआ यह आत्मा कभी भी शांतिको नहीं पा सकता। सो ये सब बातें उसी वक्त सम्भव हैं कि जब विधवा स्त्री ब्रह्मचारिणीकी रीतिके अनुसार रहकर अपना जीवन बितावे, ध्यान स्वाध्याय और परोपकारमें ही अपना दिन रातका समय खर्च करे। जिस तरह पुरुष श्रावक अपना धर्म पाल सकते हैं उसी तरह स्त्री श्राविकाएं भी पाल सकती हैं।

रजस्वला धर्म।

स्त्री पर्यायमें प्रति मासमें रजोधर्म होता है, उससे खराब रुधिर बहने लगता है। ऐसी हालतमें स्त्रीके शरीरमेंसे केवल योनिस्थानसे ही नहीं; किन्तु सर्व शरीरके रोओंसे ऐसे अशुद्ध परमाणुओंका निकास होता है कि उनके कारण छुई हुई चीजें भी खराब और अशुद्ध हो जाती हैं। अतएव ऐसी हालतमें स्त्रीको एकान्त स्थानमें गुप्त रीतिसे मौन धारे हुए बैठना चाहिये, ताकि उसका स्पर्श वहीं पर रहे। रजस्वला स्त्रीको जिस दिनसे यह विकार हो उस दिनसे लेकर तीन दिन तक एकान्तमें रहना चाहिये, वहीं पर भोजन हाथमें या मिट्टी व पत्तेके बर्तनमें करना चाहिये। यदि कांसे

आदिके वर्तनोंमें करे तो उनकी शुद्धि अग्निमें डालनेसे ही हो सकती है।

किसी पुरुषके मुखको न देखे, न अपने पतिको देखे, किसीसे बात न करे। स्त्रियोंसे भी बातें नहीं करना चाहिये। ३ दिन बराबर पंचपरमेष्टीकी याद मन ही मनमें करे या बारह भावनाओंका व स्त्री पर्यायका व सिद्ध सुखका इत्यादि शुभ धर्मध्यान करे। कहीं फिरे नहीं। शौचके लिये जहां घरके और लोग जाते हैं वहां शौच न करे, अन्य स्थानमें करे। चौथे दिन स्नान करके केवल वस्त्र व सूखी चीजें छू सकती है। रात्रिको पतिके सन्मुख जा सकती है। पांचवें दिन श्री जिनेन्द्र पूजन, दान, धर्म व भोजनादि बनानेका काम कर सकती है। यदि रजस्वला सूर्यके अस्त होनेके पीछे होवे तो दूसरे दिनसे ३ दिन गिनने चाहिये।

रजस्वला धर्मके विषयमें त्रिवर्णाचार अध्याय १३ में इस भांति कथन है:—रजस्वला धर्म स्त्रियोंको दो प्रकारसे होता है। एक प्राकृत याने स्वाभाविक प्रति मासमें, दूसरा विकृत याने रोगादिके होने पर। यदि ५० वर्षसे ऊपरकी स्त्रीके अकालमें रजोधर्म हो तो उसका कुछ दोष नहीं है! प्रकृतिके नियम कहते हैं कि स्त्रियोंको रजके देखनेके दिनसे ३ दिन तक अशुद्धपना रहता है। रजदर्शन यदि आधी रातसे पहले हो तो पहलेका दिन गिन लेना ऐसा भी किसी किसीका मत है। यदि मासिक रजोधर्मके बाद फिर १८ दिनके अन्दर ही रज स्रवे तो केवल स्नान मात्रहीसे शुद्धि हो जाती है। उसके बाद यदि १८ दिन होजायें तो दो दिन अशुद्धि, यदि २१ दिन होवें तो मासिक धर्मके समान ३ दिन अशुद्धि माननी ऐसा भी मत है। किसीका मत है कि १८ दिन होनेपर ही ३ दिनकी अशुद्धि माननी चाहिये। ऋतुमतीको कैसे वर्तना चाहिये, इस विषयमें ये श्लोक हैं—

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेदसौ।
एकांतस्थानके स्वस्था जनस्पर्शनवर्जिता ॥ १६ ॥

मौनयुक्ताऽथवा देवधर्मवार्ताविवर्जिता।
मालती माधवी वल्ली कुन्दादिलतिका करा ॥ १७ ॥
रक्षेच्छीलं दिनत्रयं चैकभक्तं विगोरसम्।
अञ्जनाभ्यङ्गस्रग्गन्धलेपनमंडनोज्झिता ॥ १८ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेऽपि वा।
न च पश्येत्कुदेवं च नैव भाषेत तैः समम् ॥ १९ ॥
वृक्षमूले स्वपेन्नैव खट्वाशय्यासने दिने।
मन्त्रपञ्चनमस्कारं जिनस्मृतिं स्मरेत् हृदि ॥ २० ॥
अञ्जलावश्नीयात् पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले।
भुक्ते चेत्कांस्यजे पात्रे तत्तु शुद्धयति वह्निना ॥ २१ ॥

भावार्थ—योग्य कालमें रजधर्मको पानेवाली स्त्री दर्भके आसन पर सोवे, स्वस्थ मन हो एकान्तमें बैठे, किसीको स्पर्श न करे, तीन दिन मौन रक्खे, देव धर्मकी कथा न कहे। मालती, मोगरी व कुन्दफूलकी बेल तीन दिन तक हाथमें रक्खे।

नोट—इसका क्या प्रयोजन है सो समझमें नहीं आया।

अपने शीलकी रक्षा करे (पूरा शीलव्रत पाले), तीन दिन दही घी व दूधके विना एकवार भोजन करे, आंखोंमें अंजन न लगावे, अंगमें तेल न चुपड़े, माला व गहने न पहरे, देव, गुरु, राजाको न देखे, न अपने मुखको दर्पणमें देखे, किसी कुदेवको भी न देखे, न राजा, गुरु आदिसे भाषण करे, वृक्षके नीचे व खाट या शय्या पर न सोवे, दिनमें शयन न करे, पंच णमोकार व जिनदेवकी मनमें याद करे, तीन दिन अपने हाथों पर व पत्ते पर तांबे या पीतलके बर्तनमें अन्न लेकर खावे। यदि कांसेके बर्तनमें खावे तो उसे अग्निमें डालकर शुद्ध करना होगा।

रजस्वलाकी शुद्धि कब होती है इस विषयमें यह मत है—

चतुर्थे दिवसे स्नायात्प्रातर्गोसर्गतः पुरा।
पूर्वाह्णे घटिका षट्कं गोसर्ग इति भाषितः ॥ २२ ॥

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि भोजने रन्धनेऽपि वा ।
देवपूजागुरूपास्ति होमसेवासु पंचमे ॥ २३ ॥

भावार्थ—चौथे दिन ६ घडी दिन चढ़े याने २ घण्टे ५४ मिनट दिन चढ़े पर स्नान करे तथा उस दिन केवल अपने पतिके लिये भोजन अन्न बना सकती है। शेष देवपूजा, गुरुसेवा, दान आदि कार्योंके लिये पांचवें दिन शुद्ध समझनी चाहिये। रजस्वला स्त्रीको उचित है कि वह परस्पर दूसरी रजस्वलासे भी बात न करे।

अस्नाते यदि संलापं कुरुतस्त्रीभयोस्तयोः ।
अतिमात्रमघं तस्माद्वर्ज्यं सम्भाषणादिकम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—बिना स्नान किये यदि एक स्त्री दूसरेसे बात करले तो बहुत पापका बन्ध होता है। यदि भोजन करते हुए रजस्वलाकी शंका हो तो फिर स्नान करके शुद्ध हो भोजन करे। ऐसी स्त्री तालाब व नदीमें डुबकी न लगावे, पानी बाहर लेकर स्नान करे।

यदि रजस्वलाको दूध पीनेवाला बच्चा छुए तो वह जल छिड़कनेसे और जो इससे बड़ा लड़का १२ वर्ष तकका छुए तो स्नान करनेसे शुद्ध होगा। जिस स्त्रीको ऋतुका ज्ञान न हो और रजस्वला हो जाय तो उससे १ हाथकी दूरी तकके पदार्थ अशुद्ध समझने चाहिये। जो कोई ऐसी स्त्रीके हाथका भोजन करे उसको एक या दो दिनका उपवास करना चाहिये।

जो स्त्रियां आरम्भ-त्यागी हैं वे भी रजस्वला होजावें तो दूसरी स्त्रियां उनको जल व वस्त्र आदि देवें। अर्जिकाको भी रजस्वला होने पर तीन दिन एकान्तमें रहकर उपवास करना होता है। चौथे दिन दूसरी अर्जिका व श्राविका पानी दे स्नान कराती है तथा साड़ी बदलवाती है। अर्जिका रजस्वला अवस्थामें भोजन लेवे या नहीं तथा और किस प्रकार वर्ते इसका कथन अन्य किसी स्थलमें जानना योग्य है। जिन धर्मको पालनेके हकदार जैसे पुरुष हैं वैसे स्त्रियां भी हैं। अतएव स्त्रियोंको भी शक्तिसे अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये।

अध्याय बाईसवां।

समाधिमरण तथा मरणकी क्रिया।

श्रावक श्राविकाओंको १२ व्रत जन्म पर्यंत बड़ी श्रद्धा और सावधानीसे पालना योग्य है तथा जब असाध्य रोग व अन्य कोई कारणसे अपना मरण निकट आवे तब सल्लेखना करनी योग्य है।

सूत्र—मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता (उमा०)

अर्थात्—मरणके समय समाधिमरणको सेवना चाहिये।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥ १२१॥

(र० क०)

भावार्थ—उपसर्ग याने कोई अग्नि, जल, वायु आदिकी आफत आ जानेपर, दुष्काल पड़नेपर, बुढ़ापा होनेपर, रोगी होनेपर, यदि इलाज रहित हो तो अपने आत्मिक धर्मकी रक्षाके वास्ते शरीरका त्यागना सो सल्लेखना कही गई है। सल्लेखनाका अर्थ कषायोंका भले प्रकार क्षीण करना है और इसीलिये शरीरको कृश करते हुए वीतराग अवस्थामें मरना सो समाधिमरण है।

नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम्॥ १७९॥

(पु० सि०)

भावार्थ—हिंसाके कारण कषाय भावोंको जहां कम किया जाता है इसलिये यह सल्लेखना अहिंसा धर्मकी सिद्धिके लिये ही की जाती है। इसमें आत्मघातका दोष नहीं है। क्योंकि कषाय भावोंसे अपनेको मारना ही आत्मघात हो सकता है। यह शरीर धर्म साधनेका निमित्त सहायक है, इसलिये जबतक आत्मीक धर्म सधे तबतक इसकी रक्षाके झगड़ेमें पड़नेसे अपना धर्म डूबता हो

तब ऐसे शरीरका छोड़ देना ही अच्छा है। श्रावकके समाधि-मरणकी विधि इस प्रकार है:—

> स्नेहं वैरं संगं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
> स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥ १२४॥
> आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
> आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम्॥ १२५॥
> शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
> सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥ १२६॥
> आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
> स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥ १२७॥
> खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
> पंचनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन॥ १२८॥
>
> (र० क०)

भावार्थ—सबसे स्नेह छोड़े, द्वेष हटावे, सम्बन्ध तोड़े, परिग्रहको दूर करे और शुद्ध मन हो मीठे वचन कह अपने कुटुम्बी तथा अन्योंको क्षमा करावे और आप भी क्षमा कर देवे। छल-कपट रहित हो, कृत, कारित, अनुमोदनासे किये हुए सर्व पापोंकी आलोचना करके मरण पर्यन्तके लिये पांच पापोंके सर्वथा त्यागरूप महाव्रतको धारण करे। शोक, भय, चिन्ता, ग्लानि, कलुषता तथा अरतिको भी त्याग करके और अपने बल तथा उत्साहको प्रगट करके शास्त्ररूपी अमृतसे अपने मनको आनंदित करे अर्थात् तत्त्वज्ञानके चिन्तवनमें हर्ष मानें।

शरीरको क्रम क्रमसे त्यागनेके अर्थ पहले भोजन करना छोड़े, केवल दूध, दही या छाछको ही लेवे। फिर इसको भी छोड़ता हुआ कांजी या गर्म जलको ही पीता रहे, फिर गर्म जलको भी त्याग करके शक्तिसे उपवास करके मन वचनके साथ पंच णमोकार मन्त्रको जपता हुआ शरीरको छोड़े। मतलब यह है कि आत्म-बल धीरे धीरे बढ़ावे ताकि कोई आकुलता न पैदा हो और समाधि

अवस्थाके लिये परिणाम चढ़ते चले जावें। यदि अपनी शक्ति हो तो वस्त्रादि सब परिग्रहको छोड़कर मुनिके समान नग्न दिगम्बर होजावे, केवल एक चटाई पर आसनसे बैठा या लेटा हुआ आत्म-स्वरूपका शांततासे अनुभव करे, परन्तु यदि शक्ति न हो तो आवश्यक कपड़े, स्थानको प्रमाण करके शेषको त्यागे। जघन्य रूपसे ऐसा भी किया जा सकता है कि एक२ दो२ चार२ दिनोंके प्रमाणसे भोजन व परिग्रहको छोड़े, कि यदि इस बीचमें जीता रहा तो फिर शक्ति देखकर प्रमाण कर लूंगा। जो समाधिमरण करे वह घरके झगड़ोंसे अलग एकांतमें रहे, अपने पास ४ साधर्मी ज्ञानी भाइयोंकी संगति रक्खे ताकि वे शास्त्रोपदेश करके परिणामोंको वैराग्यमें स्थिर करें। स्त्री, पुत्रादि मोहकारक चेतन अचेतन पदार्थोंकी संगति न करे। यदि शक्ति न हो तो चटाईके साथरे पर लेटा लेटा ही णमोकार सुने व अर्थको विचारे।

बहुधा कुटुम्बी जन अज्ञानतासे मरते हुएको कष्ट होते हुए भी ऊपरसे नीचे लाते हैं—यह बड़ी निर्दयता है और उसके परिणामोंको दुःखानेवाला है। जब वह सुगमतासे आ सके तो पहले लाओ नहीं तो केवल रूढ़िवश ऊपरसे उतारनेकी जरूरत नहीं है। सम्हाल इस बातकी रखना चाहिये कि मरनेवालेके मनमें शांति पैदा हो। दुःख, शोक व ग्लानि उत्पन्न न हो।

समाधिमरणके समय ५ प्रकार शुद्धि रखनी चाहिये।

" शय्योपध्यालोचनान्नवैयावृत्त्येषु पंचधा।
शुद्धिः स्याद् दृष्टिधीवृत्तविनयावश्यकेषु वा ॥ ४१ ॥
(सा० ध०)

भावार्थ—शय्या, संयमके साधन, उपकरण, आलोचना, अन्न और वैय्यावृत्तमें तथा अन्तरंग दर्शन, ज्ञान, चारित्र, विनय और छह आवश्यकों (सामायिकादि) में शुद्धि रखनी चाहिये तथा इन पांच बातोंका विवेक या भेदविज्ञान रक्खे।

विवेकोऽक्षकषायांगभक्तोपधिषु पंचधा।
स्याच्छय्योपधिकायाऽन्न वैय्यावृत्त्यकरेषु वा॥ ४३॥
(सा० ध०)

भावार्थ—इन्द्रिय विषय, कषाय, शरीर, भोजन और संयमके उपकरणोंमें तथा शय्या, परिग्रह, शरीर, अन्न और वैयावृत्यमें विवेक रक्खे।

सल्लेखनाव्रतके पांच अतीचार हैं सो बचाना चाहिये—

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि।
(त० सूत्र०)

भावार्थ—१-अपने अधिक जीनेकी इच्छा करनी कि किसी तरह जी जाऊं तो सर्व सम्बन्ध बना रहे सो जीविताशंसा है। २-अपना शीघ्र मरण चाहना कि रोगादिकी विशेष बाधा हो रही है वह सही नहीं जा सकती सो मरणाशंसा है। ३-अपने विषयोंके मिलानेमें सहाई मित्रोंकी ओर रागभाव करना सो मित्रानुराग है। ४-पहले भोगे हुए सुखोंका वारवार चिन्तवन करना सो सुखानुबन्ध है। ५-मरणके पीछे भोगोंकी प्राप्ति हो ऐसी चाहना करनी सो निदान है।

जैसे पुरुष समाधिमरण करे ऐसे स्त्री भी कर सकती है।

मरनेपर क्या किया करनी चाहिये?

मृतक शरीरको प्रेत भी कहते हैं। प्रेतको रखनेके लिये सुशोभित विमान बनाकर तथा उसे धोकर नए वस्त्रादिसे भूषित करके इस तरह लिटाना चाहिये जिसमें वह हिले नहीं, अंग तथा मुख सर्व शरीरको नवीन वस्त्रोंसे ढक देवे, उसके ऊपर फूलकी माला डाले और अपनी जातिके ४ विवेकी जन प्रेतके मस्तकको गांवकी ओर रखते हुए अपने कन्धोंपर इस विमानको इस तरह ले जावें कि वह हिले नहीं तथा एक मनुष्य दग्ध करनेके लिये अग्नि ले जावे। यदि कोई ब्रह्मचारी व धर्मात्मा गृहस्थ मरे तो उसके

लिये जो अग्नि जावे वह होम की हुई अग्नि होनी चाहिये अर्थात् क्रिया करानेवाला कुण्डमें मन्त्रोंसे होम करे, उन मन्त्रोंसे होम की हुई अग्निको ले जावे। कौनसे मन्त्रसे होम हो यह देखनेमें नहीं आया, तो भी यदि नीचे लिखा हुआ मन्त्र काममें लाया जावे तो कुछ हर्ज नहीं।

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्व शान्ति कुरु २ स्वाहा।"

१०८ बार इस मन्त्र द्वारा होम करे।

कन्या या विधवा मरे तो उसके लिये ऐसी अग्नि ले जावे जो ५ बार दर्भको रखकर काष्ठद्वारा सिलगाई गई हो और सर्व स्त्रियोंके लिये ऐसी अग्नि ले जाई जाय, जो जली हुई लकडीमें इस तरह जलाई गई हो कि चूल्हेमें अग्नि रखकर ऊपर थाली रखकर उसकी गर्मीसे जले। इसका क्या अभिप्राय है सो समझमें नहीं आया। इनके सिवाय तीन वर्णके और पुरुषोंके व शूद्र वर्णके सर्वके लिये वही अग्नि काममें लेवे जो रसोई आदि बनानेके काममें आती है। श्मशानको जाते हुए जब आधा मार्ग हो जावे तब किसी स्थानपर प्रेतको रक्खे और उसका पुत्र व अन्य सम्बन्धी प्रेतका मुख खोल मुँहमें कुछ पानी सींचे. इससे शायद प्रयोजन मुर्दाकी जांच करनेका होना चाहिये। फिर जाति सम्बन्धी तो उस शवके आगे और शेष जन और सर्व स्त्रियां पीछेर जावें।

उसके मरणमें किसी प्रकार शंका न रहे ऐसी परीक्षा करके उस लाशको श्मशानभूमिमें ले जाकर रक्खे, फिर चन्दन और काठकी लकड़ियोंसे बनी हुई चिताके ऊपर शवको पूर्व या उत्तरकी ओर मुंह करके रख देवे और तब घी और दूध सात स्थानोंमें डाले अर्थात् मुंह, दो नाकोंके छेद, दो आंखें और दो कानोंमें तथा तिल और अक्षत मस्तकपर डाले। यह भी शायद परीक्षाके लिये ही करना होता होगा! फिर चिताको दग्ध करनेवाला तीन प्रदक्षिणा करके और उस चिताके एक तरफ एक हाथ चौड़ा

खैरकी लकड़ीका दूसरी ओर ईंधनका मंडल कर देवे, फिर जो अंगीठीमें लाई हुई अग्नि है उसको जलाकर घीकी आहुति देकर मंडलपर अग्नि लगा देवे तथा चारों ओर लकडियां इकट्ठी कर देवे और चिताके चारों ओर आग करके शवको दहन करावे।

चिता रचनेके लिये जब काष्ट रक्खे तब यह मंत्र पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठसंचयं करोमि स्वाहा" जब प्रेतको उस काष्टपर रक्खे तब यह पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्टे शवं स्थापयामि स्वाहा।" फिर अग्नि बढ़ानेको जब घी डाले तब यह पढ़े "ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा।" खूब घी चन्दनादि द्रव्य डाल दे जिससे वह शव जल जावे। फिर तालावमें जा स्नान करे तथा चार ले जानेवाले व अन्य मंडली चिताकी प्रदक्षिणा करके जलाशयमें जावे व जिसको दग्ध करनेका अधिकार हो वह अपना सिर मुन्डन कराकर स्नान करे। कन्याके मरनेपर सिरके मुन्डनकी आवश्यकता नहीं है।

दूसरे दिन बंधुजन सहित आकर उस चिताकी आगपर दूध डाल जावें। तीसरे दिन सवेरे अग्निको शांत करें। चौथे दिन सवेरे हड्डी जमा करें। जो मृतकको जलावे वह १४ दिन तक और शेष भाई बन्धु १२ दिन तक इस प्रमाण व्रत रक्खें; देव-पूजा और गृहस्थाश्रमके कार्य्य न करें, शास्त्र पढ़ना पढ़ाना न करें, पान न खावें, चन्दनादि न लगावें, पलंगपर न सोवें, सभामें न जावें, क्षौर न करावें, दो दफे न खावें, दूध व घी न लेवें, स्त्री समागम न करें, तेल लगाकर न नहावें, देशांतर न जावें, तास गंजीफा न खेलें, धर्मध्यान सहित १२ भावना विचारते हुए रहें।

दाहक्रिया करनेका अधिकार क्रमसे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, उनकी सन्तान व जिनके १० दिन तकका ऐसा पातक है उनको है। पुरुषका कोई सम्बन्धी न हो तो पत्नी करे तथा पत्नीका पति करे। पत्नीके

अभावमें कोई उसका सजातीय करे। मृतककी हड्डी पर्वतकी गुफामें व जमीनमें एक पुरुषभर या ३॥ हाथका खड्डा करके गाड़ देना चाहिये नदीमें बहाना न चाहिये। १२ दिनके पश्चात् श्री जिनेन्द्रकी पूजा कराके पात्रोंको श्रद्धापूर्वक दान करे।

यह विधि सामान्यसे सोमसेनकृत त्रिवर्णाचार अध्याय १३ वें के अनुसार चुन करके लिखी गई है, क्योंकि मरनेके पीछे क्या क्रिया करनी इसका वर्णन अन्य किसी आर्ष ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया।

यह प्रत्यक्ष प्रगट है कि जिनको मरणका पातक लगता है उनको १२ दिन तक न रोजगार करना चाहिये, न देवपूजा, न दान, परन्तु सिर्फ ब्रह्मचर्य्य पालते रहकर १२ भावनाओंका विचार करते रहना चाहिये और जब तेरहवां दिन हो तब १२ मुनियोंको व श्रावकोंको व अविरत श्रद्धालु जैनियोंको भक्तिपूर्वक बुलाकर दान करना चाहिये और तब अपना जन्म कृतार्थ मानना चाहिये। यह प्रवृत्ति हानिकारक है कि मरणका बिरादरीभरका जीमन किया जाय। ऐसा करना दान नहीं है, किन्तु मान बड़ाई पुष्ट करना है व रीतिके अनुसार जातिका दंड भुगतना है। इसलिये केवल धर्मात्माओंको ही बुलाकर भक्ति सहित प्रेमसे दान करे।
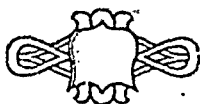
अध्याय तेईसवां।

जन्म मरण अशौचका विचार।

व्यवहारमें यह प्रवृत्ति हो रही है कि जब कोई जन्मता है या मरता है तो उसके कुटुम्बी जन कितनेक काल तकके लिये देवपूजा व पात्रको आहार दान आदि कार्योंके करनेके लिये रोक दिये जाते हैं। इस सम्बन्धमें कितने काल तक किस अवसरमें अटक माननी चाहिये, इसका वर्णन किसी अती प्राचीन संस्कृत शास्त्रमें देखनेमें नहीं आया। केवल सोमसेन त्रिवर्णाचारमें जो देखा गया उसीका संक्षेप सर्वसाधारण जैनियोंके जाननेके लिये लिखा जाता है। जातक याने जन्मका अशौच (सूतक) तीन प्रकारका होता है—स्राव, पात और प्रसूत।

जो गर्भ तीसरे या चौथे महीने तक गिरे उसे स्राव; पांचवें या छठे महीनेमें निकले तो पात तथा सातवें माहसे आगे तकको प्रसूति कहते हैं।

गर्भस्राव और गर्भपातमें केवल माताको उतने दिनोंका सूतक है जितने मासका गर्भ गिरा हो, परन्तु पिता व भाई बन्धुओंको गर्भस्रावमें स्नान मात्रसे शुद्धि और गर्भपातमें एक दिनका अशौच होता है।

साधारण नियम है कि प्रसूतिमें याने जन्ममें मा-बाप व भाई बन्धुओंको सबको १० दिनका सूतक होता है, परन्तु क्षत्रियोंको १२ और शूद्रोंको १५ दिनका होता है।

सूतकका हिसाब यह है कि जब ब्राह्मणको ३ दिनका सूतक होगा तब वैश्योंको ४, क्षत्रियोंको ५ और शूद्रोंको ८ दिनका होगा। यदि बच्चा जीता पैदा होकर नालि काटनेके पहले मर जावे तो माताको १० दिनका, परन्तु पिता आदिको ३ दिनका होता है। यदि बच्चा मरा पैदा हो व नालि काटनेके बाद मर

जावे तो माता-पिता सबको १० दिनका पूरा सूतक लगेगा। यदि बच्चा १० दिनके अन्दर मर जावे तो मा-बापको १० दिनका अशौच होता है। सो जन्मके अशौचकी समाप्ति होनेपर समाप्त होता है अर्थात् जो बाकी रहेंगे सो सूतक पालना होगा।

नाम रखनेके पहले बच्चा मरे तो जमीनमें गाड़े तथा नाम संस्कार होनेपर अन्न-प्राशन क्रिया होनेतक बालकको गाड़े या दाह करे। दांत निकलने पर यदि मरे तो उसे जलावे। दांतवाले बालकके मरनेका अशौच मा-बाप और उसके सगे भाइयोंको १० दिनका, निकटके भाई-बन्धुओंको १ दिनका और दूरके भाई-बन्धुओंको केवल स्नान करना चाहिये। चौथी पीढ़ी तक निकटके और उससे आगेवालोंको दूरके कहते हैं।

चौलकर्म याने जिसका मुण्डन हो गया हो ऐसे बालकके मरनेपर माबाप और सगे भाइयोंको १० दिन, निकटवालोंको ५ दिन और दूरवालोंको १ दिनका अशौच होता है। उपनीति प्राप्त याने जनेऊ संस्कार जिसका होगया है ऐसे बालक (८ वर्षसे ऊपर) के मरनेपर मा-बाप, भाई व निकटके भाइयोंको १० दिन और पांचवीं पीढ़ीवालोंको ६ दिन, छठीको ४ दिन, सातवींको ३ दिनका अशौच होता है, इसके आगेवाले स्नान मात्रसे शुद्ध होते हैं।

जन्म और मरणके अशौचमें यह फर्क है कि बालककी नालि काटनेके बाद बालकको जीते हुए उसके बाप या भाई वस्त्र व सुवर्ण आदिका लौकिक दान कर सकते हैं और इनको लेने-वाले भी अशुद्ध नहीं होते।

बालक जन्मे तब माताको १० दिनतक किसीका मुख नहीं देखना चाहिये। पीछे यदि पुत्र हो तो २० दिनतक और पुत्री हो तो ३० दिनतक गृहकार्य न करे। एक अशौच होते होते दूसरा हो तो उसीमें गर्भित हो जाता है। यदि एकके बाद दूसरा हो तो दूसरा पूरा पालन होगा।

देशांतरमें गये हुए पुत्रको अपने माता व पिताका मरण जिस दिन सुन पड़े उससे १० दिनतक पातक मानना पड़ेगा। देशांतरसे मतलब यहां नदी व पहाड़ बीचमें आ जानेसे या भाषाभेद हो जानेसे है अथवा ३० योजन याने १२० कोस दूर जो क्षेत्र हो उसे देशांतर कहते हैं। ऐसा ही १० दिनका अशौच परदेशमें स्थित पति या पत्नीको होगा जिस दिन एक दूसरेकी मृत्युको सुने। यदि माताके १० दिनके अशौचके अन्दर पिताका मरण हो जावे तो मरनेके दिनसे १० दिन तक अशौच मानना होगा। यदि दोनों माता पिताओंका मरण एक ही दिन होवे या सुने तो दोनोंका केवल २० दिन तक ही अशौच रहेगा।

जो कोई विष शस्त्रादिसे अपघात करके मर जावे तो वह नर्कका पात्र है। उससे मृतक शरीरको राजाकी आज्ञासे जलाना चाहिये तथा एक वर्ष पूर्ण होनेपर उसका प्रायश्चित्त शांतिविधान व प्रोषधोपवास आदिसे करना योग्य है। गर्भिणी स्त्री यदि ६ माससे पहलेके गर्भ सहित मरे तो दग्ध कर दे। यदि ६ माससे अधिक हो तो स्मशानमें उदर काट बालकको निकाल फिर दग्ध करे।

कन्या मरण अशौच।

चौलसंस्कार याने मुण्डन विधान होनेके पहले यदि कोई कन्या मरे तो मा, बाप, भाई, बन्धु केवल स्नान कर लेवें। मुण्डन होनेके बाद व्रत लेनेतक याने ८ वर्ष तक १ दिनका, इसके आगे विवाह होनेके पहले तकका ३ दिनका सूतक है। विवाहके पीछे माता पिताको दो दिन एक रात्रिका अशौच है, परंतु भाईबन्धु केवल स्नान करें, पति और उसके भाई बन्धुओंको १० दिनका अशौच होगा। अपने बापके घरमें यदि विवाहित कन्या प्रसूतिको प्राप्त हो या मरण कर जावे तो माता पिताको ३ दिनका और शेष कन्याके बन्धु आदिकको १ दिनका अशौच होगा। कन्याके माता पिता कन्याके घरमें वा अन्य कहीं

मर जावें और १० दिनके अन्दर कन्या सुन ले तो ३ दिनका अशौच होगा। बहनके घरमें भाई व भाईके घरमें बहन मरे तो एक दूसरेको ३ दिनका अशौच है, यदि अन्य कहीं मरे तो २ दिन और एक रात्रिका अशौच होगा। बहनका सूतक भाईकी स्त्रीको तथा भाईकी स्त्रीका सूतक बहनके पतिको नहीं होता, किन्तु बहनके पतिको अपनी स्त्रीके भाई बन्धुका मरण सुनने पर, तैसे ही भाईकी स्त्रीको अपने पतिकी बहनका मरण सुनने पर केवल स्नान करना चाहिये।

अपनी माताका पिता या उसकी माता याने नाना, नानी, मामा या मामी, लड़कीका पुत्र, बहनका पुत्र, बापकी बहन, माताकी बहन इनमेंसे कोई यदि उसके घरमें मरे तो ३ दिनका अशौच है। यदि बाहर कहीं भी मरे तो २ दिन एक रात्रिका है तथा १० दिन बीतने पर यदि सुना जाय तो केवल स्नानमात्र है।

व्रती, दीक्षाप्राप्त, यज्ञकर्म करनेवाले तथा ब्रह्मचारी इनको अशौच नहीं होता, केवल पिताके मरणका ही अशौच होता है।

आचार्य, गुरु, शिष्य, मित्र धर्मात्मा, सहपाठी, अध्यापक इनके मरण होनेका अशौच स्नानमात्र है।

यदि कोई महान् धर्म कार्य्य प्रारम्भ कर लिया हो व एकदम बहुत भारी द्रव्यकी हानि हो तो हरएक शौच तुरन्त ही शुद्ध हो सकता है।

अध्याय चौवीसवां।

समयका कदर।

मनुष्योंको उचित है कि अपनी आयुको बहुत ही अमूल्य समझें। हमारी आयु समयोंसे मिल करके बनी है। कालका एक एक समय बीतता चला जाता है। हमारा यह कर्तव्य है कि कोई समय विना उपयोगके न जाने देवें, हमें हरएक समयमें उपयोगी काम करना चाहिये।

मनुष्य मात्रके जीवनकी दो व्यवस्थाएं हो सकती हैं—एक मुनि सम्बन्धी, दूसरी गृहस्थ सम्बन्धी। जो मनुष्य मुनि अवस्थामें रहते हैं वे अपने समयकी बड़ी भारी सम्हाल रखते हैं, रात्रि दिन संयमके साधनमें समयको विताते हैं। श्री दशलाक्षणी पूजाकी रैधू कविकृत प्राकृत जयमालाके इस पदके अनुसार कि "संयम विन घड़िय वयस्थ जाहु" अर्थात् संयमके विना एक घड़ी वेकार न रह जावे, वे मुनि अपने धर्मकी रक्षाके समान समयकी रक्षा करते हैं। रात्रि दिनमें शयन भी बहुत ही कम करते हैं। शेष समय ध्यान, स्वाध्याय व आवश्यक क्रियाओंके करनेमें विताते हैं। इसी तरह हरएक गृहस्थको चाहे वह श्रेणीयुक्त हो या पाक्षिक हो या अव्रत श्रद्धालु हो या श्रद्धाके सन्मुख मिथ्यादृष्टी हो, अपना समय व्यर्थ नहीं विताना चाहिये।

अपनी२ पदवीके अनुकूल लौकिक और धार्मिक कार्योंके किये जानेका समयविभाग कर रखना चाहिये और कोई विशेष कारणके अभावमें उसी तरह नित्य प्रवर्तन करना चाहिये। ऐसे खोटे व्यसनोंकी आदत हरगिज नहीं रखनी चाहिये, जिससे समय तो व्यर्थ जावे ही और साथमें अपने शरीरका बल, धन,

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

और धर्म भी नष्ट हो जावे। इसलिये गृहस्थको जुएके खेलसे, सर्व प्रकारके नशोंसे और खोटी कहानी किस्सोंके पढ़नेसे व खोटे खेल तमाशोंके देखनेसे अपनेको सदा बचाना चाहिये। जो लोग रुपये पैसेका दाव लगाकर व यों ही तास गंजीफा, सतरंज खेलकर अपने जीवनके भागका विनाश करते हैं वे अपने अमूल्य समयके खोनेके सिवाय अनेक लौकिक और पारलौकिक व्याधियोंको प्राप्त होते हैं।

जो लोग भांग, तम्बाकू, चरस, गांजा अफीम आदि किसी भी नशेके खाने पानेकी टेव डाल लेते हैं उनका बहुमूल्य काल ही वृथा नहीं जाता, किन्तु वे अपने शरीरके साथ आप ही शत्रुता बांध लेते हैं। जो लोग खोटे कामकथामें लीन उपन्यासोंकी बहार देखते व ऐसे ही शृङ्गार रससे भरे खेल तमाशे देखते हैं उनकी बहुतसी जिंदगी वृथाके विचारोंमें उलझ जाती है और बहुधा ऐसा हो जाता है कि वे अपनी सारी जिन्दगीके लिये इश्कके बीमार बन जाते हैं। धन, धर्म व यशको गमाकर परलोकमें दुःखके भाजन बनते हैं। अतएव वृथाके हानिकारक कार्योंसे मुँह मोड़ फायदेमन्द दुनियवी व धार्मिक कामोंके लिये अपनी आयुके एक२ भागको बिताना चाहिये। हमारी आयुका एक भाग वह सूक्ष्म समय हैं जिसका असंख्यातगुणा काल एक पलक मारने मात्रका होता है।

समय विभाग।

एक मामूली गृहस्थको मामूली ऋतुमें अपना समय-विभाग इसप्रकार करना योग्य है:—

समय—					कार्य—
सवेरे	५	बजेसे	६	तक	भगवत्‌भजन व विचार
,,	६	से	६॥	तक	शारीरिक क्रिया व व्यायाम
,,	६॥	से	८॥	तक	मन्दिरजीमें पूजन, स्वाध्याय
,,	८॥	से	९॥	तक	पत्रादि व मामूली गृहस्थकार्य व कोई विद्या व कलाका अभ्यास
,,	९॥	से	१०	तक	भोजन
,,	१०	से	४॥	तक	आजीविकाका उपाय
मध्य	१२	से	१२॥	तक	आराम व भगवत्‌भजन
,,	४॥	से	५	तक	शारीरिक क्रिया
,,	५	से	५॥	तक	भोजन
,,	५॥	से	६	तक	शुद्ध हवामें साधर्मी मित्रसहित टहलना
,,	६	से	७	तक	भगवत्‌भजन व विचार
रात्रिको	७	से	९	तक	धर्मसेवन स्वाध्यायादि या आजीविका साधनका शेष कार्य
,,	९	से	१०	तक	स्त्री पुत्रादिकोंसे वार्तालाप व शिक्षा प्रदान
,,	१०	से	१०॥	तक	किसी उपयोगी पुस्तकका विचार
,,	१०।	से	५	तक	शयन

हरएक मनुष्यकी स्थितिके अनुसार कुछ फेरफारसे भी समय-विभाग हो सकता है। परन्तु खयाल यह रखना चाहिये कि हम केवल ६ घंटा शयन करें तथा मध्यके कार्योंके लिये जो समय नियत करें उस समयमें हम उन्हीं कार्योंकी ओर दिल लगावें और यदि उन कार्योंके बीचका समय बचे तो उसका भी उपयोग करें। उसके उपयोगके लिये हमको चाहिये कि हम लौकिक तथा पारलौकिक

याने धार्मिक समाचारपत्र मंगाते रहें व नई मुद्रित पुस्तकें लेते रहें और उनको अपने बचे हुए समयमें पढ़ते रहें व कोई उपयोगी पुस्तक लिखते रहें।

मामूली गृहस्थ चित्त प्रसन्नार्थ गाना बजाना सीखकर उसके द्वारा श्रीजिनगुणगानादिसे अपना और दूसरोंका मन प्रफुल्लित कर सकता है। आलस्य, प्रमाद, नींद व वृथाकी बकवादमें अपना समय बिताना बड़ी भारी भूल है। यदि प्रमादवश किसी दिनका कोई समय व्यर्थ हो जावे तो उसका बहुत पश्चात्ताप करना चाहिये और आगामी ऐसा न होसके इसका ध्यान रखना चाहिये। जैसे हमको अपने गांठके रुपये पैसेकी सम्हाल होती है और इसलिये रोज उसकी विधि मिलाते हैं, ऐसे ही हमको अपने समयकी सम्हाल रखनी उचित है। पैसा तो खोजाने पर व यों ही गायब होजाने पर फिर भी कमा लिया जा सकता है; परन्तु समय जो चला जाता है वह अनन्तकालमें भी लौट करके नहीं आता है।

अध्याय पच्चीसवां।

जैनधर्म एक प्रकार है और यही सनातन है।

कोई भी कार्य हो उसका कारण एक ही प्रकारका होता है। भिन्न २ कारण भिन्न २ कार्योंकी उत्पत्ति नहीं करते हैं। जबकि साधनेयोग्य आत्माका रागादि रहित शुद्ध स्वभाव है अर्थात् परमात्म अवस्था है तब उसकी सिद्धिका उपाय भी एक शुद्ध वीतराग स्वरूपकी भावना, उसका अनुभव तथा उसका ध्यान है। शुद्ध वीतराग स्वरूपका निर्मल ध्यान ही आत्मशुद्धिका निकट साधन है। इसी अभिप्रायसे ही अमृतचन्द्र आचार्यने समयसार नाटक कलशामें यह कहा है—

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—यह ज्ञानका समूह आत्मा ही साध्य साधक भावसे दो प्रकार तथा वास्तवमें एक प्रकार सिद्धिके इच्छुकोंसे उपासना करने योग्य है।

आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान ज्ञान और उसीमें आचरण ये तीन रूप एक समयमें होनेवाली क्रिया ही आत्माकी शुद्धताका कारण है। अभ्यासीके लिये बाह्य अवलम्बनोंके विना ऐसी आत्मक्रियाका पा लेना कठिन है। इसलिये वे अवलम्बन याने सहारे भी ऐसे ही होने चाहिये जो वीतराग, विज्ञानता रूप आत्माको परिणमन करनेमें परम प्रबल कारण हों। सर्वसे प्रबल कारण मुनिधर्म है, जो कि सर्व परिग्रह त्यागरूप है, जहां वस्त्रमात्र भी नहीं रक्खा जाता। दिशाओंको ही वस्त्र मानकर बालकके समान निर्भय और बेपरवाह रह जाता है। जो पर्वत, वन आदि

एकांत स्थानोंमें रह ध्यान करते हैं, भोजन मात्रके लिये वस्तीमें आ भोजन ले लौट जाते हैं।

जबतक इस अवस्थाका निमित्त न मिलायेगा तबतक कदापि मोक्षसाधक शुद्धताको नहीं पा सकता। इसलिये दिगम्बर आचार्य कथित ग्रन्थोंमें तो इस अवस्थाकी उत्तमताका वर्णन है ही, परन्तु श्वेताम्बर आचार्योंके ग्रन्थोंमें इस मुनिके दिगम्बर भेषकी ही महिमा लिखी है। देखो, आचारांग सूत्र टीका प्रो० रावजीभाई देवराज सं० १०६२ पत्रा ९७ में।

एयं खु मुणी आयाणं सया सु अक्खाय।
धम्मे विधूतकप्पे णिज्झो सईत्ता ॥ ३५९ ॥

अर्थ—हंमेशा पवित्रपणे धर्म साचवनार अने आचारने पाळनार मुनि धर्मोपकरण सिवाय सर्व वस्त्रादिक वस्तुनो त्याग करे छे.

अदुवातत्थ परकमं तं भुज्जो अचेलं तृणफासा फुसंति तेउफासा फुसंति दंसमसग फासा फसति, एगयरे अन्नयरे विरूप रूवे फासे अहिया सेति अचेले लाघवं आगम माणे तवेसे अभि सन्न राणागए भवति ॥ ३६१ ॥

अर्थ—वस्त्ररहित रहेता तेवा मुनियोने कदाच वारंवार शरीरमां तणखला के कांटा भराया करे अथवा टाढ़ वायु अथवा ताप लागे अथवा डांस के मच्छर करडे, ए विगेरे अणगमता परीषहो सहेता रहे छे, एम कर्याथी तप करेलुं गणाय छे ॥ ३६१ ॥

श्रीमहावीरस्वामी नग्न रहे। परीषह सही। यह वर्णन आचारांग सूत्र अध्याय ९ पत्रा १३५-१४१ में है।

अहासुयं विदिस्सामि—जहासे समणे भगवंउट्ठाय-संखाय तंसि हेमंते-अहुणापव्व इए रीयत्था ॥ ४६२ ॥

अर्थ—हे जम्बु! मैं जेम सांभळ्युं छे तेम कहुंछुं के श्रमण भगवाने (महावीरे) दीक्षा लईने हेमन्त ऋतुमां तरतज विहार कर्यो.

णोचे विमेण वत्थेण, विहिस्सामि तं सि हेमन्तो से पारए आवकहाए एवं खु अणु धम्मियं तस्स ॥ ४१३ ॥

अर्थ—(तेमने इन्द्रे एक देवदूष्य वस्त्र आपेलुं हतुं पण) भगवाने नथी विचार्युं के ए वस्त्रने हुं शियाळामां पहेरीश ! ते भगवान तो जीवित पर्यंत परीषहोना सहनार हता. मात्र बधा तीर्थंकरोना रीवाजने अनुसरीने तेमणे (इन्द्रे आपेलुं) वस्त्र धर्युं हतुं ॥ ४६३ ॥

संवच्छरं साहियं मास। जणरिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलए ततो चाई। तं वोसज्ज वत्थमणगारे ॥ ४६५ ॥

अर्थ—भगवानने लगभग तेरह महिना सुधी वस्त्र स्कन्ध पर धर्युं हतुं पछी ते वस्त्र छोडीने वस्त्ररहित अणगार थया ॥ ४६५ ॥

भगवनं च एव-मन्नेसीं सो वहिएहु लुप्यती वाले।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडिया इक्खे पावगं भगवं ॥४७५॥

अर्थ—अने एम भगवान महावीर देवे विचारीने जाण्युं के उपधि (उपधि बे प्रकारनी छे, द्रव्योपधि तथा भावोपधि) सहित अज्ञानी जीव कर्मोथी बन्धाय छे माटे सर्व रीते कर्मोने जाणीने ते कर्मो तथा तेना हेतु पापनो भगवान त्याग करता हता ॥४७५॥

सिसि रसि अद्धपडिवन्ने। तं वोसज्ज वत्थणगारे।
पसारित्तुबाहू परक्कमें णो अवलं विपाण कंधंसि ॥ ४८२ ॥

अर्थ—भगवाने बीजे वर्षे ज्यारे अधी शिशिर ऋतु बेठी त्यारे ते (इन्द्रदत्त) वस्त्रने छांडी दईने छूट बाहुथी विहार कर्यो हतो (अर्थात्) ताढना माटे बाहुने संकोचता नहिं तथा स्कन्ध ऊपर पण बाहु धरता नहिं ॥ ४८२ ॥

ऐसा ही प्रवचनसारोद्धार भाग ३ छपी सं० १९३४ सफा १३४ में कहा है कि "आउरण वज्जियाणं विसुद्ध जिणकप्पियाणं तु" अर्थात् जे आवरण एटले कपडा वर्जित छे ते स्वल्पोपधिपणे करी विशुद्ध जिनकल्पी कहेवाय छे।

मुनि धर्मके आलम्बनोंको जबतक न मिला सके तबतक वह धर्मात्मा जीव गृहस्थ धर्मके आलम्बनोंको मिलावे, जिनका वर्णन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

पहले पाक्षिक-श्रावकसे ले ग्यारहवीं प्रतिमाके लंगोट मात्र ऐलकके भेद रूपसे कहा है। इनको बढ़ाता हुआ तरक्की करता चला जावे। जैसे २ बाहर आचरणमें तरक्की करेगा वैसे २ ही अन्तरंग परिणामोंमें कषायोंका घटाव और विशुद्ध भावोंका झलकाव होगा। गृहस्थी लोग अपनेमें इसी भावके लिये वीतराग ध्यानाकार प्रतिमाको पुनः पुनः देखकर व उसके द्वारा वीतराग भावोंके गुणोंका अनुभव कर शुद्ध स्वरूपी भावनाका मनन करते हैं।

वास्तवमें कोई भी प्रतिमा हो वह सामान्यतासे दर्शकके भावोंको उन्हीं भावोंमें पलटा देगी, जिन भावोंकी वह झलकानेवाली हो। वीर रसकी वीर रसको, शृङ्गार रसकी शृङ्गार रसको, काम रसकी काम रसको ऐसे ही वैराग्य रसकी प्रतिमा वैराग्यको पैदा कर सकती है। इसलिये गृहस्थीके लिये सर्व प्रकार शृङ्गार व वस्त्र अलंकारसे रहित परम शांत ध्यानाकार अर्हन्तकी प्रतिमा वीतराग भावोंके लिये बड़ा भारी आलम्बन है।

एक मुनि २८ मूलगुणोंमें नित्य ६ आवश्यक कर्मोंको करता है उसीतरह गृहस्थ छह कर्म नित्य करता है। १-श्री जिनेन्द्रदेवकी उनकी प्रतिमाके द्वारा पूजन, २-परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ साधुकी उपासना; ३-जैनशास्त्रोंका अभ्यास व जैनशास्त्रोंके द्वारा तत्त्वोंका मनन; ४-मन और इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना तथा सर्व प्राणियों पर दयाभाव रखना; ५-अपनी इच्छाओंको रोकनेके लिये सामायिक व जप द्वारा तपका करना; ६-परका उपकार करनेके लिये दानका करना। ऐसा ही कहा है:—

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने॥

यही आलम्बन आत्माके शुद्ध स्वभावकी भावना करानेवाले हैं। अतएव इन आलम्बनों करके सहित यह जिन धर्म अनादि कालसे सनातन है।

यह लोक अर्थात् जगत् छह द्रव्योंका* समुदाय (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश) है। ये छहों द्रव्य अनादि अनन्त हैं। क्योंकि प्रत्यक्षमें किसी भी नये द्रव्यकी न उत्पत्ति दीखती है न विनाश; जो कुछ है उसीकी अवस्थाओंका पलटन है-वही देखनेमें आता है। जैसे बीजके साथ अन्य पदार्थोंके सम्बन्धसे वृक्ष होता है, वृक्षके टुकडे करनेसे काष्ठ होता है। काष्ठको जलानेसे कोयला और कोयलोंको जलानेसे राख होती है। राख हवामें उड़कर व कहीं जमकर किसी रूपमें पलट जाती है।

जब असत्‌की उत्पत्ति नहीं देखी जाती तब जो कुछ है वह सत् रूपसे ही है और ऐसा ही था व ऐसा ही रहेगा, यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। जब लोक अनादि और आत्मा अनादि, तब आत्माका स्वभाव और परिणमन भी अनादि है। आत्माका स्वभाव यद्यपि शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुखरूप है तथापि अनादि-कालसे यह विभाव अवस्थामें दीख रहा है तथा परिणमन स्वभाव होनेसे यह विभावपना घटते २ स्वभावपना हो सकता है—यह भी प्रगट है। अतएव आत्माका परमात्मा होना व उसके लिये यत्नका किया जाना भी अनादि है।

परमात्माका स्वरूप वीतराग आनन्दमय, पर द्रव्यके कर्ता भोक्तापनेसे रहित है तथा उसका यत्न भी ज्ञान वैराग्यमय वीतराग धर्मरूप है तथा ऐसा ही जिनधर्म मानता है। इसलिये जिनधर्म किसी खास समयमें नहीं जन्मा, किन्तु अनादिकालसे चला आया सनातन धर्म है। जिन धर्मका अर्थ "रागद्वेषान् अजयत् सः जिनः" ऐसा जो वीतरागी आत्मा उसीका धर्म कहिये स्वभाव है। बस जब आत्मा अनादि तब उसका स्वभाव भी अनादि। इसलिये यह जिनधर्म अनादिकालका सनातन है।

---

* इसका वर्णन द्वितीय भागमें किया जा चुका है।

अध्याय छब्बीसवाँ।

जैन गृहस्थधर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका सहायक है न कि बाधक।

देश या समाज कोई खास व्यक्ति नहीं है, किन्तु अनेक मनुष्योंके संगठनको ही देश या समाज कहते हैं। इसलिये अनेकोंकी उन्नति देश या समाजकी उन्नति है।

जैन गृहस्थ समयका दुरुपयोग और आलस्यको अपना शत्रु समझता है। वह धर्म अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंको एक दूसरेके साधनमें विना हानि पहुंचाये न्यायपूर्वक सम्पादन करता है।

राजकीय उन्नति उस उन्नतिको कहते हैं जिससे देशकी प्रजा बलवान, विद्वान्, सुशील, सुआचरणी, धर्मात्मा, सत्यवादी, परोपकारी, धनयुक्त और कर्तव्यनिष्ट हो। प्रजाके भीतर ऐक्यता, स्वास्थ्य, व्यापार, कलाकौशल्य, धनसाम्राज्य, सत्य व्यवहार, न्यायरूप विषय सेवनमें सन्तोष, परोपकारता और धर्मात्मापना बढ़ना ही उन्नतिका चिह्न है।

यदि किसी राज्यकी प्रजामें विद्या, कला व धन तो बढ़ता जाय, परन्तु स्वास्थ्य, सन्तोष, सत्य-व्यवहार घटता जाय और इन्द्रिय विषयोंकी तल्लीनता व क्रोध, मान, माया, लोभ बढ़े व धर्मसे अरुचि बढ़ती जाय तो वह उन्नति प्रजाकी दिखलावेकी उन्नति है—सच्ची राज्यकीय उन्नति नहीं।

राज्यकीय उन्नतिकी एकदेशीय उन्नतिका नाम सामाजिक उन्नति है। एक देशमें सर्व प्रजा ही सामाजिक बन्धनमें बन्धी हो ऐसा

प्रायः होना कठिन हैं। अतएव भिन्न२ एक नियमसे वर्तनेवाले समूहोंको समाज कहते हैं।

यदि समाजके लोग ऐक्यता व सत्यतासे रहते हुए एक दूसरेका उपकार करें, विद्याका प्रचार करें, परस्पर धर्म, स्वास्थ्य और सन्तोषकी रक्षाके हेतु जन्म, मरण, शादीके योग्य नियमोंका पालन करें तथा जिससे समाजमें कर्जा बढ़े, दोष फैले, निर्धनता आवे, शरीर बिगड़े व विषयपरायणताकी आदत पड़ जावे ऐसे कुनियमोंको रोक देवें तो समाजकी उन्नति अवश्य हो।

जैन गृहस्थियोंके ४ वर्ण हैं:— ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। ये चारों ही वर्ण अनेक प्रकारकी कला व विद्याएं यथायोग्य सीख सकते हैं। परन्तु आजीविकाका साधन क्षत्रीके लिये देशकी रक्षा अर्थात् असिकर्म, वैश्यके लिये मसि (लिखना), कृषि और वाणिज्य तथा शूद्रके लिये विद्या व शिल्प है। ब्राह्मणोंके लिये परोपकारतासे पठनपाठन धर्माचरण करना कराना है व जो दान अन्य तीनों वर्णवाले भक्तिसे देवें उनको लेकर अपना व अपने गृहका पालन करना है।

जब क्षत्री जैनधर्मी होगा तो श्रीरामचन्द्रजीकी भांति निर्बलोंकी रक्षा करेगा, प्रजाको सुखी रखनेके लिये अपना शारीरिक स्वार्थ भी त्याग दे। (जैसे श्रीरामने लोगोंको अधर्मकी प्रवृत्तिसे बचानेके लिये अपने दिलमें निश्चय रखते हुए भी कि सती सीता पतिव्रता है उसको घरसे निकाल दिया) तथा प्रजाके कष्टको दूर करने व धर्मात्माओंकी रक्षाके हेतु युद्ध भी करेगा। परन्तु वृथा किसीके प्राणोंको न दुखाएगा और न बेमतलब शत्रुके प्राण लेगा, जैसा श्रीरामने राजा सिंहोदरको जब वह आधीन हो गया तब छोड़ दिया और बहुत सम्मानित किया।

जैनी राजा न केवल मनुष्योंकी रक्षा करेगा, परन्तु पशुओंकी भी रक्षा करेगा। जैसा कि राजा चन्द्रगुप्त जैनी राजाके इतिहाससे प्रगट है कि उसने पशुओंके लिये स्थान स्थानपर पशुशालाएं

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

खुलवा दी थीं तथा रोगी पशुओंकी चिकित्साका पूरा प्रबंध किया था। जैनी राजा तुरन्त उस हिंसाको बंद करा सकता है जो वृथा पशुओंका बलिदान देकर धर्मके नामसे की जाती हो तथा मांस व मादक वस्तुओंके प्रचारको बंद कराकर शुद्ध भोजन-पानकी प्रवृत्ति कराएगा। जैनी राजा अपने आपको प्रजाका सेवक समझेगा व जिस तरहसे प्रजामें धन, बल, स्वास्थ्य, सत्यता व धर्म बढ़े वैसा उपाय कर देगा।

इसी तरह जैनी वैश्य नीतिपूर्वक व्यापार करता हुआ असत्य बोल कर व चोरी करके प्राणोंको नहीं दुखाएगा, सदा दयाको सामने रखता हुआ दूसरोंका मन दुखाकर द्रव्य पैदा करूं, यह बात कभी नहीं ठानेगा। जिससे कभी कुछ कर्ज लेगा उसको उसका कर्जा ठीक कहे हुए समयपर अदा कर देगा, धनका लाभ कर परोपकारतामें खर्च करेगा; दीन, दुःखी, अनाथ पुरुष, स्त्री और बालकोंकी तो रक्षा करेहीगा, किंतु पशुओंकी भी पालना करेगा। ऐसे गृहस्थियोंसे जगतको न तो दुःख पहुंचेगा न अदालती मुकद्दमें उठेंगे। सदा ऐक्य और सन्तोष उनके मनको सुखी रक्खेगा।

जैनधर्मी शूद्र भी अपना कार्य परिश्रमसे करता हुआ इस बातका ख्याल रक्खेगा कि दूसरोंका मन पीडित न करूं। सत्यता और सन्तोषको अपना भूषण बनाता हुआ कभी लडाई झगडा न करेगा और सुखसे जीवन बिताएगा। मूढताईमें पड जैसे आजकलके शूद्र अपनी बनी बचाई कमाई देवियोंको बलि चढ़ाने व नदीमें स्नान करनेसे पुण्य मानकर यात्रा करनेमें बिता देते हैं अथवा तरह २ के नशेखानेमें बरबाद कर देते हैं-ऐसे नहीं करेगा। उस शूद्रका जीवन भी स्वपर लाभकारी हो जायगा, वह पशुओंको कभी मांसाहारी, कसाई आदिकोंके हाथ नहीं बेचेगा, करोड़ों गाय, भैंसें, बकरी, भेडें जो शूद्रोंकी मूढ़ताईसे मारी जाती हैं अपने प्राणोंको उस समय बचा सकेंगी, यदि शूद्र

लोग जैन धर्म पालने लग जावें। अतएव इस बातके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं। यह तो स्वयं सिद्ध है कि जैन धर्मके आश्रयसे राजा व प्रजा सब उन्नतिके सचे मार्ग पर चलेंगे और लौकिक सातांके साथ साथ आत्मानुभवरूपी आनन्दको भी भोगेंगे। इसलिये यह जैनधर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका हर तरह सहायक है-बाधक नहीं।
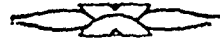
अध्याय सत्ताइसवाँ।

जैन पञ्चायती सभाओंकी आवश्यक्ता।

समाजमें सुनीति और सुरीतिका प्रचार हो तथा कुनीति और कुरीतिका विनाश हो इसके लिये हरएक मंडलीमें पञ्चायती सभाओंकी मजबूती होनी चाहिये। इस पञ्चायती सभाकी एक अन्तरंग सभा हो, जिसके ५ सभासद ऐसे हों जो गृहीसिता याने गृहस्थाचार्यके गुणोंसे विभूषित हों। हरएक विषयको यह अन्तरंग-सभा जांचकर व विचारकर सर्व पंचायतसे मन्जूर करावे। आज-कल गृहस्थी लोग जरासी तकरारमें अदालतको दौड जाते हैं, इससे महा हानि उठाते हैं। जैसे अगर किसीको किसीसे सौ रुपया लेने हों तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों दो दो सौ रुपया अदालतमें खर्च कर देते हैं अथवा किसी जायदादकी हककी मिलकियत तो एक लाखकी हो और करीब १ लाखके अदालती झघड़ोंमें ही लगा देते हैं, इससे सिवाय मूर्खताके और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। यह सब माल सम्बन्धी झघडे पंचायतमे तय होना चाहिये, ताकि खर्च तो कुछ न पडे और फैसला सुगमतासे हो जावे।

आजकल यह भी देखनेमें आता है कि कोई २ लोग ऐसे २

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

निद्यकर्म कर बैठते हैं कि जिससे वे दण्ड भोगे विना एक नियम-रूप समाजके साथ खान पान व्यवहार करनेके अधिकारी नहीं होसकते। परन्तु पंचायतोंकी शिथिलतासे व पंचायतोंमें धर्मात्मा परोपकारी मुखियाओंके विना उन ऐसे लोगोंको कुछ प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता और न रोका जाता है; बस निद्यकर्म समाजमें बढ़ते चले जाते हैं। इसलिये दृढ़ पंचायतियोंकी अन्तरंग सभाके मेम्बर अपनी समाजके हरएक व्यक्तिकी सम्हाल रक्खें तो समाजमें निंद्यकर्मसे भय बना रहे और हरएक काम जो पञ्चायती करना चाहे वह सुगमतासे होसके, अदालतोंमें लाखों रुपये बचें और कष्टोंसे रक्षा हो। इस पंचायती सभाके अन्तरंग मुख्य सभासद ज्ञानवान समझदार होने चाहिये जो अपना फसला अदालतकी अपेक्षा भी बढ़िया कर सकें। ये पंचायतें ही समाजमें विद्योन्नति आदिके अनेक उपायोंसे समाजका उपकार कर सकती हैं।

अध्याय अट्ठाइसवां।

सनातन जैन धर्मकी उन्नतिका सुगम उपाय।

इस पवित्र जैन धर्मकी उन्नतिका सर्वसे सुगम उपाय यह है कि पढ़े लिखे गृहस्थियोंको ब्रह्मचारी होकर देशाटन करना चाहिये। जबतक समाजको अपना कर्तव्य विदित न हो तबतक यह प्रथा होनी चाहिये कि शास्त्र ज्ञाता गृहस्थ अपने २ पुत्रोंको काम सौंप स्त्रीको त्याग ब्रह्मचारी हो भ्रमण करते हुए उपदेश करें तथा स्वाधीनतासे अपना खर्च आप चला सकें इसके लिये कुछ रुपया बैंकमें जमा करा देवें। ऐसे लोग किसीसे कहीं कुछ याचना न करें केवल परोपकारवृत्ति धार कष्ट सहें और जैनधर्मका प्रचार करें। आप खूब ध्यानके साथ ७ वीं प्रतिमा तकके नियमोंके पालनेका अभ्यास करें, क्योंकि जिसका चारित्र ठीक होगा उसीका असर समाज पर पड़ सकता है। ऐसे ब्रह्मचारी दस पांच नहीं सौ दोसौ पांचसौकी तुरन्त आवश्यकता है जो ग्राम २ में घूमें और लोगोंका कल्याण करें, आत्मानुभवके रससे जीवोंको तृप्त करें। जब तक किसी धर्मके उपदेष्टा बहुतायतसे नहीं होते तब तक उसका प्रचार हरगिज नहीं हो सकता। जैसे आजकल श्वेताम्बरी साधु व ढूंढ़िये साधुओंकी अधिकता है ऐसे ही ब्रह्मचारियोंकी अधिकता होनी चाहिये। वर्तमानमें दिगम्बर मुनियोंका संघ अधिकतासे होकर भ्रमण करें—यह बात बननी अभी कष्टसाध्य है, परन्तु ब्रह्मचारीगण वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार देशाटन कर जगत्का बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं और इस सनातन पवित्र जैनधर्मके प्रचारका सर्वसे सुगम यही उपाय है।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अध्याय उन्तीसवां

पानी व्यवहारका विचार ।

श्रावकको पानी कैसा काममें लेना चाहिये इस विषय पर विचार करना अतिशय जरूरी है।

कुछ संस्कृत शास्त्रोंमें पानी छानने, प्राशुक करने आदिके जो श्लोक देखनेमें आये वे नीचे दिये जाते हैं:—

(यशस्तिलकचम्पू काव्य लम्ब ७ पृष्ठ ३३४.)

गृहकार्याणि सर्वाणि दृष्टिपूतानि कारयेत् ।
द्रव्यद्रव्याणि सर्वाणि पटपूतानि योजयेत् ॥
वातातपादि संस्पृष्टे भूरितोये जलाशये ।
अवगाह्य आचरेत् स्नानमतोऽन्यद्गालितं भजेत् ॥

अर्थ—घरके काम देख करके करे, सर्व बहती हुई चीजें कपड़ेसे छानकर काममें लेवे। हवा धूप आदिसे छूए हुए गहरे भरे हुए तालाब या नदीके पानीमें स्नान कर सकता है। मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें इस भांति कहा है:—

गालितैर्निर्मलैर्नीरैः सन् मंत्रेण पवित्रतैः ।
प्रत्यह जिनपूजार्थं स्नानं कुर्यात् यथाविधिः ॥ ५१ ॥
सरतां सरसां वारि यदगाधं भवेत् क्वचित् ।
सुवातातापसंस्पृष्टं स्नानार्हं तदपि स्मृतम् ॥ ५२ ॥
नभस्वताहतं ग्राव घटीयंत्रादि ताडितम् ।
तप्तं सूर्यांशुभिर्वाप्यां मुनयः प्राशुकं विदुः ॥ ५३ ॥
यद्यप्यस्ति जल प्राशु प्रोक्तलक्षणमागमे ।
तथाप्यति प्रसंगाय स्नायात् तेनाऽत्र नो बुधः ॥ ५४ ॥

अर्थ—छने हुए निर्मल मन्त्रसे पवित्रित जलसे रोज जिन-पूजाके लिये स्नान करे। नदी व तालावका जल यदि बहुत गहरा हो तथा हवा, धूपसे स्पर्शित हो तो स्नानके लिये योग्य कहा

गया है। जो जल हवासे छिन्नभिन्न किया गया हो तथा पत्थरकी घटी व यन्त्र वगैरहसे दलमला गया हो व धूपकी किरणोंसे गर्म हो, ऐसे वापीके जलको मुनियोंने प्राशुक जल कहा है। यद्यपि आगमके अनुसार यह जल प्राशुक है, तौभी विद्वान इस जलसे स्नान न करें। क्योंकि अतिप्रसंग हो जायगा, जिससे अजैनोंकी तरह जैनी भी बिना विचारे नदी व तालावोंमें नहाने लग जावेंगे।

श्री अमितगति आचार्यकृत सुभाषितरत्नसंदोहमें इस प्रकार है:—

स्पर्शेन वर्णेन रसेन गन्धाद्यदन्यथा वारिगतं स्वभावम्।
तत्प्राशुकं साधुजनस्य योग्यं पातुं मुनीन्द्रा निगदंति जैनाः ॥२१४॥
उष्णोदकं साधुजनाः पिबन्ति मनोवचःकायविशुद्धिलब्धम्।
एकांततस्तत्पिबतां मुनीनां षडजीवघातं कथयंति सन्तः ॥ २१५ ॥
हतं घटीयंत्रचतुष्पदादिसूर्येन्दुवाताग्निकरैर्मुनीन्द्राः।
प्रत्यन्तवातेन हतं वहच्च यत्प्राशुकं तन्निगदन्ति वारि ॥ २१६ ॥

भावार्थ—यदि पानीका स्पर्श, वर्ण, रस, गन्ध अन्य रूप होजावे तो वह पानी प्राशुक है और साधुजनोंके पीने योग्य है-ऐसा जैन मुनियोंने कहा है। मन, वचन, कायकी विशुद्धतासे याने अपने बिना किसी संकल्पके प्राप्त हुए गर्म जलको मुनिजन पीते हैं। यदि तीनों विशुद्धतामें एककी भी हानि हो तो पीनेवाले मुनिको छह कायके जीवोंके घातका पाप होता है-ऐसा सन्तोंने कहा है। जो पानी घटीसे, यंत्रसे व चौपायों आदिसे छिन्नभिन्न किया जावे व सूर्यकी किरण व वायु व अग्निके कणोंसे बहता जावे व जो बहता हुआ पानी उल्टी ओरकी वायुसे हता जाय वह सब पानी प्राशुक है-ऐसा कहते हैं।

पानीके छाननेकी क्या विधि है? इसका वर्णन किसी भी संस्कृत शास्त्रमें नहीं देखा गया। केवल सागारधर्मामृतमें इतना मात्र है:—

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

मुहूर्त्तयुग्मोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालनमम्बुनो वा।
अन्यत्र वा गालित शेषितस्यन्यासोनिपानेऽस्य न तद्व्रतेऽर्च्यः॥१६॥

अथ तू–दो मुहूर्तके ऊपर बिना छना व मैले खराब कपडेसे छना पानी व्रती न पीवे तथा पानी छानकर उसका बिलछन उसी स्थानपर पहुंचा देवे।

भाषाके श्रावकाचारोंमें जो पानी छाननेकी विधि है सो नीचे दी जाती है—

बहता हुआ नदी व कूप व तालाबका पानी लोटे या डोलसे भरे और दूसरे बर्तनमें बिना सूराखदार गाढ़े सफेद दोहरे कपडेको रखकर धीरे २ पानी छाने ताकि अनछना पानी बाहर न गिरे। यह कपड़ा दुहरा किये जानेपर ३६ अंगुल लम्बा और २४ अंगुल चौड़ा हो अर्थात् जिस बर्तनमें छन्ना लगावे उसके मुंहसे तीन गुणा चौड़ा हो। छाननेके बाद जो छन्नेमें बचता है उसको बिलछन कहते हैं। इसमें कूड़ा करकटके सिवाय बहुतसे महीन त्रस जीव बेगिनती होते हैं, जो एकाएक देखनेमें नहीं आते। एक डाक्टरसे मालूम हुआ कि एक इंचके १०० वें भागसे छोटे त्रस जीव होते हैं। इस सर्व बिलछनको उसीमें पहुंचा देना चाहिये जहांसे पानी भरा हो। जिस डोल व लोटेसे पानी भरा जाय उसके नीचे कुंडा लगा रहना चाहिये, ताकि बिलछनको छने पानीसे छननेमेंसे धो उस लोटे डोलमें करले तथा उल्टो ओर कुंडेमें उस डोरको अटकावे तथा एक छोटीसी लकड़ीकी डंडो मुँहमें अटका लोटा नीचे गेरकर हिला दे तब वह उल्टा हो जावेगा और बिलछन कुएमें गिर पड़ेगा। अथवा बिलछनको किसी बर्तनमें रहने दे, जब दूसरी दफे फिर पानी भरे तो भरनेवाले पात्रमें बिलछन कुएमें पहुंचा दे। इस तरह भी बिलछन्न सुगमतासे नीचे पहुंच सकता है। इस प्रकारका छना पानी एक महूर्त याने दो घड़ीकी म्याद रखता है। उसीके अंदर काममें लाया जा सकता है। यदि ४८ मिनटका समय हो जावे तो फिर छानके काममें लेता रहे और बिलछन एक बर्तनमें जमा

करता रहे और दिनभरका इकट्ठा करके उसी जलके स्थान पर पहुँचा देवे जहांसे पानी भरा था। परन्तु इस छने हुए पानीमेंसे खाली त्रस जीव दूर हुए हैं, जलकायिक जीव मौजूद हैं। पानीको जलके जीवोंसे रहित करनेके लिये नीचे लिखी विधि है:—

यदि कषायला पदार्थ जैसे पीसी हुई लौंग, मिरच, इलायची, इमली, बारीक राख आदि चीजें डालकर पानीका स्पर्श, रस, रङ्ग व गन्ध बदल लिया जावे तो यह पानी उस बदले हुए समयसे ६ घण्टे तक प्राशुक याने जलकायिक जीवोंसे भी रहित हो जाता है।

यदि छने पानीको गर्म करलें और उबालें नहीं तो १२ घण्टे तकके लिये प्राशुक हो जाता है। यदि छने पानीको अधनके समान औंटा लेवें तो २४ घंटेके लिये प्राशुक हो जाता है। इन तीनों तरहके प्राशुक किये हुए जलको उसकी म्यादके अन्दर ही वर्त लेना चाहिये। म्यादके बाद वह छाननेसे भी काममें नहीं आ सकता। पानीकी म्यादके विषयमें किसी शास्त्रका जो श्लोक सुननेमें आया सो दिया जाता है:—

"मुहूर्तं गालितं तोयं प्राशुकं प्रहरद्वयं।
कोराहं चतुष्कामं च विशेषोष्णं तथाऽष्टकं॥"

अर्थात्—छना हुआ दो मुहूर्त, प्राशुक किया दो प्रहर, गर्म किया हुआ ४ प्रहर व विशेष गर्म किया हुआ ८ प्रहर याने २४ घण्टे चलता है।
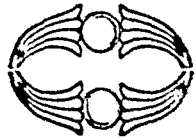
अध्याय तीसवां।

हम क्या खाएं और पिएं?

इस अध्यायमें हमको शारीरिक स्वास्थ्यकी ओर विचार करके इस बात पर नमूनेकी रीतिसे कुछ दिखलाना है कि हम गृहस्थ लोग क्या खाएं और पिएं।

इस विषयकी खोज करते हुए हमको जर्मनीके एक प्रसिद्ध डॉक्टर लुई कोहनी (Louis Kohne) की बनाई हुई किताब "New Science of Healing" अर्थात् "भला करनेके लिये नई विद्या" का उर्दूमें तर्जुमा श्रीव्रजकृष्णप्रसादजी बी० ए० गवर्नमेन्ट प्लीडर, बदायूं जिला विजनौरकृत देखनेमें आया है। इस तर्जुमेका नाम "नया इल्म शफाबख्श" है और सन् १९०४ में कैसरहिंद प्रेस, बदायूंमें छपा है। यही पुस्तक जर्मनी भाषामें ५० दफे छप चुकी है तथा इसका तर्जुमा पचीस भाषाओंमें हो चुका है। यह किताब हरएकके पढ़ने योग्य है तथा इसका पूरा उलथा हिन्दी भाषामें भी होना चाहिये। इस किताबके दफा ११९ से १५२ तक इसी बातका वर्णन है कि हम क्या खाएं और क्या पीएं? उसीके अनुसार नीचे कुछ कहा जाता है:—

सर्व बीमारियोंको रोकनेकी तरकीब जब तक पहलेका खाया खाया हुआ ठीक तौर पर हजम न हो जावे दूसरी बार भोजन मत करो। क्योंकि सर्व रोगोंका मूल कारण भोजनका नहीं पचना यानै हजम न होना और अनुचित आहारका करना है।

भोजन ठीक पच जानेकी पहचान-जब दस्त (पाखाना) थोड़ा व भूरे रंगका मुलायम और बंधा हुआ हो और उस पर लेसदार एक तह पाई जावे तथा जो झटसे अलग हो जावे-पाखानेके स्थान पर लगा न रहे तो जानना चाहिये कि भोजन ठीक पचा है।

∴ एक भोजन करनेके बाद दूसरा भोजन कब ले? एक भोजनके ठीकर पच जानेके लिये पूरा वक्त देना चाहिये। संसारमें पशु पक्षियों तकमें नियम है कि एक खाना खानेके बाद दूसरा खाना बहुत देर बाद लेते हैं। बहुधा व्रत उपवास करनेसे शरीरका हाजमा ठीक हो जाता है। यह देखा गया है कि एक दफा पूरी खुराक खानेके बाद सर्प बहुधा कई सप्ताह तक खाना नहीं खाता। यह भी जांचा गया है कि हिरण और खरगोश हफ्तों और महीनों तक बहुत कमती भोजन पर रहते हैं। इसलिये जब भोजन भले प्रकार पच जावे तब दूसरा भोजन करे।

कौनसे खाने जल्दी पचते हैं और लाभकारी होते हैं?

जो भोजन अपनी असली दशामें स्वादिष्ट और चित्तको आकर्षण करनेवाले हों जल्दी हजम होते हैं और जो यही भोजन नमक व मसाला लगाकर पकाकर खाए जावें तो देरमें हजम होते हैं और असली हालतकी अपेक्षा कम लाभकारी होते हैं। पकाए व तैयार किये हुए भोजनोंमें वे भोजन जल्दी पचते हैं जो सादे तौर पर पकाए जावें व जिनमें नमक मसाला कम लगा हो। पतले भोजन जैसे सुगन्धित शर्बत वगैरह असली दशामें चबाए जानेवाले भोजनकी अपेक्षा देरसे हजम होते हैं। जो भोजन अपनी असली हालतमें मनुष्यमें घृणा पैदा करें हमेशा स्वास्थ्य याने तन्दुरुस्तीको हानिकारक होते हैं, चाहे वे कितने ही स्वादिष्ट क्यों न बनाए गये हों? और सबसे अधिक मांस ही इस प्रकारका भोजन है। कोई भी मांस खानेवाला मनुष्य जिन्दे पशु पर दांत नहीं मार सकता न भेड़का कच्चा मांस खा सकता है; क्योंकि दर असलमें कच्चा मांस घृणा पैदा करानेवाला है। कच्चे मेवे पके मेवेकी अपेक्षा जल्द हजम होते हैं जैसे पकी हुई किसमिसकी अपेक्षा गीले तरअंगूर जल्दी हजम होते हैं। यदि देरमें हजम होनेवाला भोजन किया हो और ऊपरसे कच्चा मेवा खा ले तो सब खाना जल्द

हजम हो जावेगा। बहुधा वे कुत्ते जो कभी ज्यादा खाते हैं पीछे घास खाते हैं जिससे अपनी खुराक जल्द हजम कर लेते हैं। पिसे हुए अनाजकी अपेक्षा साबुत या तला हुआ अनाज यदि चबाकर खाया जाय तो जल्दी हजम होता है, क्योंकि चबानेमें मुँहकी राल साथमें मिल जाती है।

पिसे हुए गेहूँका आटा चूकरसहित बिना छना जल्दी पचता है और चूकर अलग करनेसे कब्ज होता है और देरमें हजम होता है। यह बात प्रसिद्ध है कि मैदेकी चीज़ काबिज़ होती है; क्योंकि वह बिलकुल चूकरसे रहित होती है। यदि घोड़ेको जई गेहूँके चूकरसे साथ दी जाय व छिलके सहित जई दी जाय तो जल्द हजम हो, मतलब कहनेका यही है कि ठीक २ जिस हालतमें खुराकको कोई चीज़ नेचरने पैदा की है उसी हालतमें हमेशा वह हाजमेके वास्ते सबसे अच्छी होती है। दाल पतलीकी अपेक्षा मटर जल्दी हजम होते हैं। यह बात अच्छी तरह जांच की गई है कि एक मजदूर तीन महीने तक रोज मुट्ठीभर कच्चे मटर खाकर अपनी सारी जिंदगीमें सबसे अधिक तन्दुरुस्त मालूम पड़ा।

यह बात सर्व जैनियोंमें प्रसिद्ध है कि त्यागी महाचन्दजी ताजे मूंग कूटे हुए खाते थे। उनकी आवाज बहुत तेज और बुलन्द थी। मुहल्लों तक उनके व्याख्यानकी आवाज फैल जाती थी, त्यागी लालमनजी ताजे धान्य कुटवाकर खाया करते थे।

उमदासे उमदा अंग्रेजी शराब, बड़ा कीमती गोश्त, अंडे या पनीर ये सब चीजें शरीरमें बहुत कठिनतासे हजम होती हैं। जब कि बिना छने हुए आटेकी रोटी, ताजे फल, हरी तरकारियां और आटेके बने हुए पदार्थ व पानीमें पके हुए चिकनई, शकर या नमकसे बिना मिले हुए भोजन बहुत जल्द हजम होते हैं। अन्न व तरकारी जिस पानीमें पके उस गर्म पानीको फैलना नहीं चाहिये, क्योंकि उसमें बलकारक पदार्थ रहता है। तरकारियोंको बहुत कम पानीसे या केवल भाफसे पकाना चाहिये और जितना

पानी वे सोख लेवें उसको निकाला न जावे। बीमार आदमियोंके लिये तो यह बहुत ही आवश्यक है कि वे बिना छने हुए चूकर सहित मोटे आटेकी रोटी चबा २ कर खावें ताकि मुँहका लुआब मिल जावे जिसमें जल्दी हजम हों। तथा जईके आटेकी लपसी भी बहुत फायदेमन्द होती है, परन्तु उसमें सिवाय कुदरती नमक (पानी जमा कर जमाया नहीं हो) या बिना गर्म किये हुए दूधके और कुछ न मिलाया जावे। दूध ठण्डा और बिना गर्म किये हुए ही पीना चाहिये, परन्तु यह देख लो कि उसमें दुर्गन्ध तो नहीं है या उनका स्वाद तो नहीं बिगड़ा। गर्म दूध देरसे हजम होता है और बलदायक नहीं होता और न गर्म करनेसे हानिकारक पदार्थ उसमेंसे निकलते हैं। ऐसा दूध दुहे जानेके दो घड़ी याने ४८ मिनटके भीतर पी लेना चाहिये। भोजन करते समय ताजा मेवा खाना चाहिये तथा चांवल जौ वगैरह खाना ठीक है। जिसका स्वास्थ्य अच्छा है वह इसी प्रकारकी बहुतसी चीजें खा सकता है। जिस आदमीको बदहजमीकी शिकायत हो उसे बहुत ही सादा भोजन खाना चाहिये जो भले प्रकार चबाया जाय, जैसे बिना छने आटेकी रोटी और फल।

एक साधारण आदमी सवेरे यदि नास्ता करे तो बिना छने आटेकी लपसी और फल खाए और फिर चावल, जौ, गेहूं, जईका आटा पानी या घीमें तैयार किया हुआ या थोड़ा मेवा मिला हुआ, दालके अनाज याने मटर, सेम, लोभियां, मोठ और मसूर इन सबको पानीमें खूब पका ले, घुटे हुए व कुचले हुए न हों; पानी इतना डाले कि सब सूख जावे, परन्तु उनकी असली सूरत न बिगड़े।

तरकारियां ऐसी गलाना चाहिये जो पतली न हों चबाई जा सकें। मसालोंमेंसे जीरा सफेद, राई, मेथी, धनियां, अजवाइन तरकारियोंमें डाली जा सकती हैं। गर्म मसाले जैसे लौंग, मिर्च, हींग नहीं डालने चाहिये।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

एकसाथ एक वक्तमें एक रोटी और एक तरकारी खाओ। साथमें दूसरी तरकारी या दाल न हो। खाना भूख रखकर खाओ, बारबारके खानेसे परहेज करो; क्योंकि इससे हाजमा बिगड़ता है। जबतक पहला खाना हजम न हो जावे, दूसरी चीज दूसरीवार मत खाओ।

हम क्या पीवें ?—हमको ताजा पानी पीना चाहिये। जानवर हमेशा बहते हुए पानीको ही तलाश करते हैं और नदी-धाराओंसे पानी पीना, पहाड़ोंसे निकलते हुए झरनोंकी अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। जिस पानीपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं और जो पत्थरके टुकड़ोंपर बहता आया है वह पहाड़के झरनोंके पानीसे अच्छा होता है।

पानी कम पीना—जो जानवर रसदार भोजन खाते हैं वे पानी कम पीते हैं। मनुष्य यदि रसदार फलोंको खाय तो प्यास कम लगे। यदि हम बीमारीसे छूटना चाहते हैं तो यह जरूरी है कि उसी ही पानीको जैसा कि नेचरमें मिलता है पियें और सिर्फ पानीसे ही अपनी प्यास बुझावें।

डॉक्टर साहबके इस कथनसे साफ प्रकट होता है कि हमको बनावटी पानी जैसा कि नलका व बर्फका व सोडावाटर व लेमो-नेडको हरगिज नहीं पीना चाहिये। जो पानी असली हालतमें बहता हुआ हो और जहां सूर्य्यकी किरणें भी पड़ें वह पीनेके लिये सबसे अच्छा है।

पेटकी रक्षाके दो दरबान हैं-नाक और जबान। जिसको अच्छी हवा लेनेकी आदत रहती है वह अपनी नासिकाके द्वारा बुरी हवाको पहचान कर भीतर जाने नहीं देता, है। बुरी गन्दी हवासे बचना शरीर रक्षाका अति उत्तम उपाय है। जो अपनी नाकसे काम नहीं लेते और उसके बार २ चिताने पर भी खयाल नहीं करते उनकी नासिका अपना काम करना छोड़ देती है। इसी तरह जो वस्तु जिह्वापर रखनेसे बिगड़े स्वादकी मालूम पड़े उसे कभी न खाओ। जो लोग लड़कईसे जांचकर खाते हैं उनके

लिये जिह्वा बड़ा काम करती है-सदा ही सडी, बुसी, गली, चीजको पेटमें जानेसे बचाती है; परन्तु जिनकी आदत खराब हो जाती है उनकी जबान अपना काम देना बन्द कर देती है। फिर उनको सडे व बुसे व बासी चीजकी कुछ परवाह ही नहीं होती। इसीलिये हमको शरीररक्षाके लिये इन दोनों दरवानोंसे आप भी काम लेना चाहिये और अपने लड़कोंको सिखलाना चाहिये कि वे इनसे मदद लेते हुए खाया-पिया करें व रहासहा करें।

डॉक्टर साहब मांसाहारको मनुष्यके लिये बहुत बड़ा हानिकारक बतलाते हैं और आपने इस बातको बड़े वादानुवादके साथ सिद्ध किया है कि मनुष्य कभी मांसाहारी नहीं हो सकता।

मांसपर विचार।

डॉक्टर साहबने दांत, पेट, भोजनकी रक्षा, बच्चोंका भोज्य इन चार बातोंका मुकाबला किया है और यह फल निकाला है कि (१) मनुष्यके दांत मांसाहारी जानवरोंसे नहीं मिलते, इसलिये वह मांसखोर जानवर नहीं है, न साग व घास खानेवाले जानवरोंसे मिलते हैं, क्योंकि वह घास खानेवाला जानवर नहीं है और न उन जानवरोंसे मिलते हैं जो मांस और घास दोनों खाते हैं; परन्तु मनुष्यके दांत फल खानेवाले बन्दरोंके दांतोंसे करीबर मिलते हैं। इसलिये यह सिद्ध है कि मनुष्य फल खानेवाली किस्मका जानवर है। (२) पेटकी अपेक्षासे भी देखा जावे तो मनुष्य फल खानेवालोंसे मिलता है, मांसाहारियोंसे नहीं। (३) भोजनकी रक्षाका कारण नाक और जबानकी शक्तियां हैं। प्रगट है कि शिकारी जानवर शिकारकी बू पाते ही उधर दौड़ेगा और उसका खून

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

फल खानेवाले पशु भी खेत और फलदार वृक्षों ही पर रहना पसन्द करते हैं। एक बच्चेको जिसने कभी पशुओंका मारा जाना सुना नहीं है कभी खयाल नहीं आ सकता कि पशुको मारो, इसका मांस अच्छा होगा। कच्चा मांस किसीकी भी आंख व नाकको पसन्द नहीं आएगा, खानेके वास्ते तो लोग मसाले डालकर स्वादयुक्त बनाते हैं; जबकि फलोंको देखकर दिल खुश होता है। अन्नको काटने और जमा करनेमें किसीको भी घृणा नहीं होती।

(४) नये जन्म प्राप्त बच्चे माताका दूध ही पसन्द करते हैं। असली भोजनके सामने कोई चीज ठीक नहीं है। मांसाहारी माताओंके दूध कम होता है। जर्मनीमें बच्चोंके लिये बहुधा उन गांवोंकी धायें बुलाई जाती हैं जो मांस नहीं खातीं व बहुत कम मांस खाती हैं। समुद्रकी यात्राओंमें धाओंको जईके आटेकी पकी हुई लपसी दी जाती है। इससे यह साफ २ प्रगट है कि मांस माताके दूधके बनानेमें कुछ भी मदद नहीं देता। जो लोग कहते हैं कि जानवरोंसे मनुष्यका मुकाबला न करो, मनुष्य तो मुद्दतसे मांस खानेकी आदत डाल चुके हैं, उनके लिये डॉक्टर साहबने अपने तजुर्बेसे लिखा है कि "कई घरोंमें बच्चे जन्मसे ही बिना मांसकी खुराकके पले गए और उनके शरीरकी ऊँचाईकी जांच मैंने स्वयं ही की तो बहुत अच्छा फल रहा, वे बच्चे हर तरह अच्छे रहे। इससे यह बात सिद्ध है कि मनुष्यके लिये मांसकी जरूरत नहीं है।"

इन्द्रियोंकी तृष्णाके बढ़नेसे ही बदचलनी होती है। जो बच्चे मांसादिके भोजन पर रहते हैं वे अपनी इच्छाओंको रोक नहीं सकते, इसलिये जल्द बदचलन होजाते हैं। अतः यदि बदचलनीको रोकना होवे तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि बच्चोंका पालन-पोषण असली खुराकसे हो, इस बातको डॉक्टर साहब कहते हैं कि हमने पूरी२ जांच कर ली है। जिन लोगोंने कुसंगतिमें

पड़ मांस खाना स्वीकार कर लिया वे लोग बीमार होगए। और लाचार उनको मांस रहित भोजन लेना हुआ।

थियोडवर हान साहब २९ वर्षकी उम्रमें मरण किनारे होगए थे, परन्तु मांसके त्यागने और फलाहार करनेसे ३० वर्ष और जी सके। "जो लोग मांस और शराबको छोड़नेके लिये अपना दिल मजबूत नहीं करते वे बराबर खराब मैला भीतर जमा करते जाते हैं, जिसको तन्दुरुस्तीके लिये फिर दूर करना पड़ेगा।" इस तरह बहुत वादानुवादके साथ डॉक्टर साहबने दिखलाया है कि मनुष्यको शुद्ध अन्न, फल, तरकारी, ताजा दूध, ताजा असली पानी, इन चीजोंका आहार ही करना चाहिये।

बस जैनी भाइयो! तुम आप और अपने स्त्री बच्चोंको शुद्ध ताजे खानपानकी आदत डलवाओ। बासा, मर्यादा रहित भोजन-पान कभी न करो, हर वस्तुको खानेपीनेके पहले अच्छी तरह देखलो और सूंघलो। यदि रस चलित न हों और अपने दिलमें घृणा नहीं आवे तब ही ग्रहण करो।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अध्याय इकतीसवां।

फुटकर सूचनाएं।

स्वास्थ्य रक्षा—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीर ही निश्चय करके धर्म-सिद्धिके लिये निमित्त कारण है। इस नियमके अनुसार गृहस्थियोंको उचित है कि अपने और अपने कुटुम्बके शरीर मजबूत, निरालसो और निरोगी रहें इसपर पूरा पूरा ध्यान देवें। इस स्वास्थ्य रक्षाके लिये ब्रह्मचर्यकी रक्षा और शुद्ध निरोगकारक पदार्थोंका खानपान कारण है। देखनेमें आता है कि गृहस्थ घी और दूधका व्यवहार अधिकतासे करते हैं, परन्तु यह नहीं विचारते कि जिनको हम काममें लेते हैं वे रोगवर्द्धक हैं या शरीरको बल-प्रदाता हैं। इस वर्तमान समयमें जब कि—गायें, भैंसे मांसाहार, चर्म और हड्डीके लिये अधिकतासे वध की जाती हैं, तब घी व दूधकी महगी होनेसे लोभवश इनके विक्रेता घीमें चर्बी व तैलादि तथा दूधमें पानी अवश्य मिला देते हैं और वही बाजारोंमें मिलता है। यहांतक कि ग्रामवाले दूधमेंसे यंत्र द्वारा मलाई निकालकर फिर उसे वेचने लाते हैं तथा मलाई अंग्रेजोंको देते हैं। ऐसा घी दूध शरीरको पुष्टिकारक नहीं हो सकता।

अतएव गृहस्थियोंको स्वास्थ्य रक्षाके लिये अपने यहां घरमें स्वच्छ पक्के स्थानमें गाय भैंसोंको पालना चाहिये और उनका थन धोकर उचित प्रमाणमें दूध निकालना चाहिये, ताकि उनके बछड़ोंको कष्ट न हो। इस दूधको अच्छे दोहरे छन्नेमे तुरन्त छान लेना चाहिये और उसी समय अग्निपर गर्म करनेको रख देना चाहिये, नहीं तो दोहनेसे दो घड़ी याने ४८ मिनटके होते ही गाय भैंस जातिके सन्मूर्छन पंचेन्द्री त्रस जीव पैदा होने लग जायंगे। यदि कच्चा ठण्डा दूध पीना हो जो कि वास्तवमें बहुत

लाभदायक होता है, तो दो घड़ीके भीतर ही पी लेना चाहिये। यदि दूध औटा लिया जावे तो जलके समान २४ घँटे तक चल सकता है। इसी दूधसे दही व घी बनाना चाहिये। इसलिये जिस मक्खनमें घी होता है उसको उसी समय निकलते ही तालेना चाहिये। ऐसा ताजा घी शरीरको लाभकारी और शुद्ध होता है। बहुतसे जैनी लोग प्रमादके वश इन पशुओंको रक्षित रख शुद्ध घी दूध लेनेका यत्न नहीं करते और अनेक आरम्भिक हिंसाजनित काम करते हुए भी गाय भैंस रखनेमें हिंसा होती है इतना मानकर रह जाते हैं। प्राचीन कालमें हरएक गृहस्थ उनको रखता था और यही धन नामका परिग्रह कहलाता था। जिसके पास यह नहीं होते थे उसको ही निर्धन कहा जाता था। श्रावक धर्म पालनेवाले अपने घरमें इस परिग्रहको उस समय तक रख सकते हैं जबतक वे परिग्रहका त्याग करके श्रावककी नौमीं श्रेणीमें न जावें।

अस्पर्श्य शूद्र—जो शूद्र मलीन कर्म करते हैं ऐसे अस्पर्श्य शूद्र भी जैन धर्मको धारण कर सकते हैं और ये शूद्र श्रावकके १२ व्रतोंको पाल सकते हैं। प्राचीन जैन इतिहाससे प्रगट है कि अनेकोंने श्रावकव्रत पाल स्वर्ग गति प्राप्त की और फिर वहांसे आकर उत्तम क्षत्री कुलमें जन्म ले मोक्षके पात्र हुए। ऐसा शूद्र कौनसी प्रतिमा तकके नियम पाले, सो किसी संस्कृत शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया।

इस कालमें पति धर्मका निर्वाह कैसे हो ?—इस नियमका

उर

आ:

मुं

वह

हैं।

करनेमें किसीको बाधा देनेकी जरूरत नहीं है। हिन्दुओंमें श्री परमहंस नागा साधु होते हैं, जो विना रोकटोक घूमते हैं तो जैन साधुओंके भ्रमणमें क्यों कोई रुकावट हो सकती है? मुनियोंका प्रचार कम रहनेसे सरकारी कर्मचारी रुकावट डालते हैं। रुकावटका रुकना कठिन नहीं है। कर्मचारियोंको समझानेसे अवश्य मान सकेंगे। वे ऐसे ध्यानी वीतरागी साधुओंसे अपने राज्यको पवित्र समझेंगे। देशी रजवाड़ोंमें तो मुनिगण सुगमतासे विहार कर ही सकते हैं। इसमें भी कोई हर्ज न होगा यदि एक २ विशेष २ प्रान्तके ग्रामोंमें १-१ मुनि विहार करें।

नित्यनियम पूजा।

देव-शास्त्र-गुरु पूजा।

ॐ जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं॥
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
ॐ अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः।
(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं-अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंत लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहुलोगुत्तमा, केवलिपणत्तो धम्मो लोगुत्ता। चत्तारिसरणं पवज्जामि-अरहंतसरणं पवज्जामि, सिद्धसरणं पवज्जामि, साहुसरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये।)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥ २॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः॥ ३॥
एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं॥ ४॥

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्वीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।)

(यदि अवकाश हो तो यहां पर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये, नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढ़ाना चाहिये।)

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं.
स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु-
र्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय,
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय-
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय।
स्वस्ति त्रिलोकसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं।
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ॥ ११ ॥
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य बल्गन्।
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ १२ ॥

अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि।
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ॥
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ।
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १३ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः। श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः। श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः। श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः। श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः। श्रीश्रेयान्स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः। श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः। श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः। श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः। श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण)

(आगे प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।)

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं, संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ २ ॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा, दास्वादनघ्राणविलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ३ ॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ४ ॥
जङ्घावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तु प्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ५ ॥

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि ।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥
सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ७ ॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्था ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो न ॥ ८ ॥
आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ९ ॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १० ॥

इति स्वस्तिमंगल विधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता ।
त्रैलोक्याक्रांतकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ॥
श्रीमन्निर्वाणसंपद्वरयुवतिकरालीढकण्ठः सुकण्ठै—
र्देवेन्द्रैर्वन्द्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥ १ ॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते !
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जतां ।
जय जय महामोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनम् ।
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । (इत्याह्वाननम्)
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । (इति स्थापनम्)
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।
(इति सन्निधिकरणम्)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पादपंकेरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं सम्पूजयामोऽधुना ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

संपूजयामि पूज्यस्य, पादपद्मयुगं गुरोः।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य, गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्
देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान् शुम्भत्पदान् शोभितसारवर्णान्।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्-चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्म-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।
ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाऽहितहारिवाक्यान्।
श्री चन्दनैर्गन्धविलुब्धभृंगैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्-चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुदर्पकन्दर्पविसर्पसर्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

ध्वस्तोद्यमान्धं कृतविश्वविश्वमं हान्धकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगन्धगन्धैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि०।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान्।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनंतान्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भिद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्टिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते-
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥१॥

इत्याशीर्वादः।

(पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च सम्भवश्चाभिनन्दनः।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥
अनन्तो धर्मनामा च शांतिः कुन्थुर्जिनोत्तमः।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥ ४ ॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसम्भवः।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः।
चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥ ६ ॥

जिनें भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥
(पुष्पांजलि क्षेपण करना।)
श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ८ ॥
(पुष्पांजलि क्षेपण करना।)
गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ९ ॥

अथ देवजयमाला प्राकृत।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु।
तुहु चरणविहाणे केवलणाणे, तुहु परमप्पउ परमपरु ॥ १ ॥
जय रिसह रिसीसर णमियपाय, जय अजिय जियंगमरोसराय।
जय संभव संभवकयविओय, जय अहिणंदण णंदिय पओय ॥ २ ॥
जय सुमइ सुमइ सम्मय पयास, जय पउमप्पह पउमाणिवास।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त, जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥ ३ ॥
जय पुप्फयंत दन्तंतरंग, जय सीयल सीयलवयणभंग।
जय सेय सेय किरणोहसुज्ज, जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥ ४ ॥
जय विमल विमलगुणसेढिठाण, जय जयहि अणंताणंतणाण।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत, जय संति संति विहियायवत्त ॥ ५ ॥
जय कुँथु कुँथु पहु अंगिसदय, जय अर अर माहर विहियसमय।
जय मल्लि मल्लि आदामगंध, जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥ ६ ॥
जय णमि णमि यामरणियर सामि, जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि।
जय पास पासछिंदणकिवाण, जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥ ७ ॥

घत्ता।

इह जाणिय णामहिं, दुरियविरामहिं, परहिंविणमिय सुरावलिहिं।
अणहणहिं अणाइहिं, समियकुवाइहिं, पणविमि अरहंतावलिहिं ॥
ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अथ शास्त्रजयमाला प्राकृत ।

संपइ सुहकारण, कम्मवियारण, भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि, सत्तपयस्समि, सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥ १ ॥
जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार, गणिंदविगुंफिय गंधपयार ।
तिलोयहिमण्डण धम्महखाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥२॥
अवग्गहईहअवायजुएहि, सुधारणभेयहिं तिण्णसएहि ।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥ ३ ॥
सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार, सुबारहभेय जगत्तयसार ।
सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि, सयापणमामि जिणिंदह वाणि ॥ ४ ॥
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि, पयासइ पुण्णपुराकिउलद्धि ।
णिउग्गुपहिल्लउ एहु वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥५॥
जु लोयअलोयह जुत्ति जणेइ, जु तिण्णवि कालसरूव भणेइ ।
चउग्गइलक्खण दुज्जउ जाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥६॥
जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ, सुसावयधम्मह जुत्ति जणेइ ।
णिउग्गुचितिज्ज इत्थु वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।७।
सुजीवअजीवह तच्चह चक्खु, सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु ।
चउत्थुणिउग्गु विभासिय णाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥८॥
तिभेयहिं ओहि विणाण विचित्तु, चउत्थु रिजोविउलं मयउत्तु ।
सुखाइय केवलणाण वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥९॥
जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु, महातमणासिय सुक्खणिहाणु ।
पयच्चहुभत्तिभरेण वियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१०॥
पयाणि सुबारहकोडिसयेण, सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण ।
सहसअट्ठावण पंचवियाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥११॥
इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव, सहस चुलसीदिसया छक्केव ।
सढाइगवीसह गंधपयाणि, सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१२॥
घत्ता—इह जिणवरवाणि विसुद्धमई, जो भवियण णियमण धरई ।
सो सुरणरिंदसंपय लहई, केवलणाण वि उत्तरई ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अर्घं नि०।

अथ गुरुजयमाला प्राकृत।

भवियह भवतारण, सोलह कारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं।
तव कम्म असंगई दयधम्मंगइ, पालवि पंच महव्वयई ॥ १ ॥
वंदामि महारिसि सीलवंत, पंचेंदियसंजम जोगजुत्त।
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति, जे चउदहपुव्वह मुणि थुणंति ॥ २ ॥
पादाणुसारवर कुट्ठबुद्धि, उप्पण्णजाह आयासरिद्धि।
जे पाणाहारी तोरणीय, जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥
जे मोणिधाय चंद्राहणीय, जे जत्थत्थवणि णिवासणीय।
जे पंचमहव्वय धरणधीर, जे समिदिगुत्तिपालणहिं वीर ॥ ४ ॥
जे वड्ढहिं देह विरत्तचित्त, जे रायरोसभयमोहचत्त।
जे कुगइहि संवरु विगयलोइ, जे दुरियविणासण कामकोह ॥५॥
जे जल्लमल्लतणलित्त गत्त, आरंभ परिग्गह जे विरत्त।
जे तिण्णकाल बाहर गमंति, छट्ठट्ठम दसमउ तउचरंति ॥ ६ ॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरसभोयण रइ करंति।
जे मुणिवर वंदउं ठियमसाण, जे कम्म डहइवरसुक्कझाण ॥ ७ ॥
बारहविह संजम जे धरंति, जे चारिउ विकहा परिहरंति।
बाव्वीस परीषह जे सहंति, संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥
जे धम्मबुद्ध महियलिथुणंति, जे काउस्सग्गो णिस गमंति।
जे सिद्धविलासणि अहिलसंति, जे पक्खमास आहार लिंति ॥ ९ ॥
गोदूहण जे वीरासणीय, जे धणुह सेज वज्जासणीय।
जे तववलेण आयास जंति, जे गिरिगुह कंदर विवर थंति ॥१०॥
जे सत्तुमित्त समभावचित्त, ते मुणिवर वंदउं दिढचरित्त।
चउवीसह गन्थह जे विरत्त, ते मुणिवर वंदउं जगपवित्त ॥११॥
जे सुज्झाणिज्झा एकचित्त, वंदामि महारिसि मोक्खपत्त।
रयणत्तयरंजिय सुद्ध भाव, ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥१२॥
घत्ता-जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधूअणुराईया।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते रिसिवर मई झाईया ॥१३॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा।

प्रथम देव अरहन्त, सुश्रुत सिद्धांतजू।
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त, मुकतिपुरपन्थजू ॥
तीन रतन जगमाहिं सो, ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद, परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा—पूजों पद अरहन्तके, पूजों गुरु पद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भवर वषट्।

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपद प्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरुनिरग्रन्थ, नित पूजा रचूँ ॥ १ ॥

दोहा—मलिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदरमझार प्रानी, तप्त अति दुर्द्धर खरे।
तिन अहित हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूँ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥ २ ॥

दोहा—चन्दन शीतलता करे, तप्त वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपा-मीति स्वाहा ॥ २ ॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,-के निमित्त सुविधि ठई ।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥ ३ ॥

दोहा—तन्दुल सालि सुगन्धि अति, परम अखंडित बीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपा० ॥३॥

जे विनयवन्त सुभव्य उर, अम्बुज प्रकाशन भान हैं ।
जे एकमुख चारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुन्दकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूँ ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥ ४ ॥

दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
तासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपा० ॥४॥

अति सबल मद कन्दर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु, नाशनको सु गरुड़ समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृतमें पचूँ ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥ ५ ॥

दोहा—नानाविध संयुक्तरस, व्यञ्जन सरस नवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योः क्षुधारोगविनाशनाय चरुं निर्वपा० ॥५॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने, मोह तिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघाती ज्ञान दीप, प्रकाश जोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल, कंचनके सुभाजनमें खचूँ ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरु, निग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥ ६ ॥

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

दोहा—स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपा० ॥६॥
जो कर्म-ईंधन दहन अग्नि, समूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धि ताकरि, सकल परिमलता हँसै॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमांहि नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥ ७ ।

दोहा—अग्निमांहि परिमल दहन, चन्दनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ७॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥७॥
लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार है।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार॥ है॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहन्त श्रुतसिद्धांतगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥ ८॥

दोहा—जे प्रधान फल फलविषैं, पञ्चकरण-रसलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ८॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥८॥
जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निरमल फल विविध, बहुजनमके पातक हरूँ॥
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूँ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्तगुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥ ९॥
दोहा—वसुविधि अर्घ संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ९॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥९॥

अथ जयमाला ।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥ १॥

घातकर्मकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवतके छयालिस गुण गंभीर ॥२॥
शुभ समवशरण शोभा अपार, शतइन्द्र नमत कर शीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, वन्दौं मनवचतनकरि सु सेव ॥ ३ ॥
जिनकी धुनी है ॐकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महा भाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥
सो स्याद्वादमय सप्त भंग, गणधर गूँथे बारह सु अङ्ग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥५॥
गुरु आचारज उपझाय साधु, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध।
संसारदेह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भव तारनतरन जिहाज ईस।
गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥८॥
सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै। ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता स्थिरता हो वह बीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करे। यदि स्थिरता नहीं हो, तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ावै।

अथ विद्यमान बीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभाननअनन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननचन्द्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ।

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीं गतान्।
वन्दे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान्कल्पामरान्सर्वगान् ॥

सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै-
नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये ॥१॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ सिद्धपूजा प्रारभ्यते।

ऊर्द्ध्वाधोरयुतं सबिन्दुसपरं, ब्रह्मस्वरावेष्टितम्।
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं, तत्सन्धितत्त्वान्वितम् ॥
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं, ह्रींकारसंवेष्टितम्।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते, सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते, सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया।
सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

सहजकर्मकलङ्कविनाशनै-रमलभावसुभावितचंदनैः।
अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

सहजभावसुनिर्मलतन्दुलैः, सकलदोषविशालविशोधनैः।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

समयसारसुपुष्पसुमालया, सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अकृतबोधसुदिव्यनैवेद्यकैर्विहितजातजरामरणान्तकैः ।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये क्षुधारोगविनाशाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः, रुचिविभूतितमः प्रविनाशनैः ।
निरवधिस्वविकाशविकाशनैः, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोहान्धकारविनाश दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः, स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः ।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अष्टकर्मविध्वंशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

परमभावफलावलिसम्पदा, सहजभावकुभावविशोधया ।
निजगुणाऽऽस्फुरणात्मनिरञ्जनं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहै-रत्यन्तबोधाय वै ।
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः, सद्दीपधूपैः फलैः ॥
यश्चिन्तामणिशुद्धभावपरमं-ज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं, संचर्चयामो वयम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं ।
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ॥
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं ।
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥ १० ॥

5648

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं ।
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः, सन्तोऽपि तीर्थंकराः ॥
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै–
र्युक्तांस्तानिहतोष्टवीमि सततं, सिद्धान विशुद्धोदयान् ॥११॥

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शान्त निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस ।
सुधाम विबोधनिधानविमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥
विदूरितसंसृतभाव निरङ्ग, समामृतपूरित देव विसङ्ग ।
अबन्ध कषायविहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥
निवारितदुष्कृतकर्मविपाश, सदामलकेवलकेलिनिवास ।
भवोदधिपारग शान्त विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ३ ॥
अनन्तसुखामृतसागरधीर, कलङ्करजोमलभूरिसमीर ।
विखण्डितकाम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥
विकार विवर्जित तर्जितशोक, विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ।
विहार विराव विरङ्ग विमोह, प्रसीद विशुद्धसुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥
रजोमलखेदविमुक्त विगात्र, निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ।
सुदर्शनराजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ६ ॥
नरामरवन्दित निर्मलभाव, अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव ।
सदोदय विश्वमहेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ७ ॥
विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापर शङ्कर सार वितन्द्र ।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८ ॥
जरामरणोज्झित वीतविहार, विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार ।
अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ९ ॥
विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१०॥

घत्ता—असमयसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्म-नन्दीन्द्रवन्द्यम्। निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम्॥ ११॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो॥
शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो।
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त हो॥ १॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सर्वे दहे।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे॥
ज्ञायकके आकार ममत्व निवारिके।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं॥ २॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतें, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरे सो पाइये, परमसिद्ध भगवान॥ ३॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ शान्तिपाठः प्रारभ्यते।

(शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये)

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्॥ १॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः, षोडशतीर्थकरं प्रणमामि॥ २॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ ३॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च॥ ४॥

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।

848/55

ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा-
स्तीर्थंकराः सततशान्तिकरा भवन्तु ॥ ५ ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोति शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः ॥६॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां, भास्मभूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतः शान्ति, वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे—
सम्पद्यतां मम भव भवे. यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तवापदद्वये लीनम् ॥
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तः ॥ १० ॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं, च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य, मज्झवि दुःखक्खयं दितु ॥ ११ ॥

दुःखक्खओ कम्मक्खओ, समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ जगतबंधव तव, जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ विसर्जनम्।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि, शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु, त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वरः ॥ १ ॥

आह्वानं नैव जानामि, नैव जानासि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि, क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं, द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव, रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥ ३॥
आहूता ये पुरा देवा, लब्धभागा यथाक्रमम्।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या, सर्वे यान्तु यथास्थितिम्॥ ४॥

स्तुतिपाठ।

तुम तरनतारन भवनिवारन, भविकमन आनंदनो।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो॥ १॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं।
कैलासगिरि पर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं॥ २॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली।
यह विरुद सुनकर सरन आयो, कृपा कीजे नाथजी॥ ३॥
तुम चन्द्रवदन सु चन्द्रलच्छन, चन्द्रपुरी परमेश्वरो।
महासेननन्दन जगतवन्दन, चन्द्रनाथ जिनेश्वरो॥ ४॥
तुम शांति पाँच कल्याण पूजों, शुद्ध मनवचकायजू।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू॥ ५॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो॥ ६॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी।
चारित्ररथ चढ़ि भये दुलह, जाय शिवरमणी वरी॥ ७॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो।
अश्वसेननन्दन जगतवन्दन, सकलसंघ मंगल कियो॥ ८॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठ मान विदारकैं।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रके पद, मैं नमों सिर धारकैं॥ ९॥
तुम कर्मघाता मोखदाता, दीन जानि दया करो।
सिद्धार्थनन्दन जगतवन्दन, महावीर जिनेश्वरो॥१०॥

त्रय छत्र सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये ।
कर जोड़ि सेवक वीनवै, प्रभु आवागमन निवारिये ॥११॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं ।
कर जोड़ यो वरदान मांगो, मोक्षफल जावत लहौं ॥१२॥
जो एकमांही एक राजै, एकमांहि अनेकनो ।
इक अनेककी नहीं संख्या, नमो सिद्ध निरंजनो ॥१३॥

चौपाई–मैं तुम चरणकमलगुण गाय, बहुविध भक्ति करी मन लाय ।
जनम जनम प्रभु पाऊँ तोही, यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४॥
कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय ।
बार बार मैं विनती करूं, तुम सेये भवसागर तरूं ॥१५॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय, तुम दर्शन देख्या प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवनके देव, मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥
मैं आयो पूजनके काज, मेरो जन्म सफल भयो आज ।
पूजा करके नवाऊं शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥१७॥

दोहा–सुख देना दुःख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीबकी वीनती, सुन लीज्यो भगवान ॥१८॥
दर्शन करते देवका, आदि मध्य अवसान ।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥१९॥
जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।
जो सूरजमें ज्योति है, तारनमें नहिं सोय ॥२०॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥२१॥
बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजाविधि जानूँ नहीं, सरन राखि भगवान ॥२२॥

॥ इति गृहस्थ-धर्म पुस्तकम् समाप्तम् ॥